इकाई–1

समाज कल्याण प्रशासन :एक परिचय

Social Welfare Administration:an Introduction

इकाई का रूपरेखा

1.0 उददेश्य

1.1 परिचय

1.2 समाज कल्याण प्रशासन की परिभाषा

1.3 समाज कल्याण प्रशासन के प्रमुख क्षेत्र

1.4 समाज कल्याण प्रशासन का वर्गीकरण

1.5 समाज कल्याण प्रशासन की प्रक्रिया

1.6 समाज कल्याण प्रशासन का इतिहास

1.7 सार संक्षेप

1.8 अभ्यास प्रश्न

1.9 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :–

1. समाज कल्याण प्रशासन की अवधारणा एवं परिभाषा को जान सकेंगे।
2. समाज कल्याण प्रशासन के क्षेत्र तथा प्रक्रिया की व्याख्या कर सकेंगे।
3. समाज कल्याण प्रशासन का वर्गीकरण कर सकेंगे।

1.1 परिचय

सामाजिक सेवाओं से सम्बन्धित विभिन्न समान अर्थी शब्दों जैसे सामाजिक प्रशासन, समाज सेवा प्रशासन, सामाजिक सुरक्षा प्रशासन, कल्याण प्रशासन, लोक

कल्याण प्रशासन, सामाजिक संस्था प्रशासन के कारण समाज कल्याण प्रशासन के वास्तविक अर्थ के सम्बन्ध भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है, परन्तु वास्तव में समाज कल्याण प्रशासन उस क्रियाविधि को कहते हैं, जिसके द्वारा सामाजिक संस्था अपनी निर्धारित नीति और उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु समाज कल्याण कार्यक्रमों के आयोजनों के लिए व्यावसायिक कुशलता और सामर्थ्य का उपयोग करती है। समुदाय को प्रभावशाली और सुदृढ़ सेवाएँ प्रदान करने के लिए सामाजिक संस्था को कुछ प्रशासनिक, वित्तीय और विधि सम्बन्धी नियमों का पालन करना पड़ता है। इन्ही तीनों के सम्मिश्रण को 'समाज कल्याण प्रशासन' का नाम दिया गया है।

समाज कल्याण प्रशासन के अन्तर्गत उन दुर्बल वर्गो के लिए आयोजित सेवाएँ आती है, जो किसी सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक, या मानसिक बाधा के कारण उपलब्ध सामाजिक सेवाओं का उपयोग करने में असमर्थ हो अथवा परंपरागत धारणाओं और विश्वासों के कारण उनको इन सेवाओं से वांछित रखा जाता है। समाज कल्याण के कार्यक्षेत्र में बालकों, महिलाओं, वृद्धों, अशक्तों, बाधित व्यक्तियों, पिछड़ी हुई जातियों, आदिवासियों आदि के लिए सामाजिक सेवाओं और समाज कल्याण उपायों की व्यवस्था आती है।

1.2 समाज कल्याण प्रशासन की परिभाषा

समाज कल्याण प्रशासन की प्रमुख परिभाषाएं निम्नवत् है :

1.जॉन किडनाई (1957)

समाज कल्याण प्रशासन सामाजिक नीति को समाज सेवाओं में बदलने की एक प्रक्रिया है।

2.राजा राम शास्त्री (1970)

सामाजिक अभिकरण तथा सरकारी कल्याण कार्यक्रमों से संबंधित प्रशासन को समाज कल्याण प्रशासन कहते है। यद्यपि इसकी विधियाँ, प्रविधियाँ, तौर–तरीके, इत्यादि भी लोक प्रशासन या व्यापार प्रशासन की ही भाँति होते है। किन्तु इसमें एक बुनियादी भेद यह होता है कि इसमें सभी स्तरों पर मान्यताओं और जनतंत्र का अधिक से अधिक ध्यान रखते हुए ऐसे व्यक्तियों या वर्ग से सम्बन्धित प्रशासन किया जाता है जो बाधित होते है।

3.डनहम (1949)

समाज कल्याण प्रशासन को उन क्रिया कलापों में सहायता प्रदान करने तथा आगे बढाने में योगदान देने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो किसी सामाजिक संस्था द्वारा प्रत्यक्ष सेवा करने के लिए अनिवार्य है।

1.3 कल्याण प्रशासन के प्रमुख क्षेत्र

- **महिला कल्याण**:केन्द्र और प्रान्तिय सरकारों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों ने महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए अनेक कार्यक्रम आरम्भ किये और महिला दशक में उनकी सातत्यता को बनाये रखने के लिए, उनकी प्रगति और प्रसार के प्रयासों को तेज किया। बहुत सी प्रदेश की सरकारों ने आरम्भिक बाल सेवाओं के समेकित प्रदान की भूमिका को पहचानते हुए अपने प्रदेश ों में केन्द्र द्वारा समर्थित समेकित शिशु विकास सेवाओं को उनके क्रियान्वयन के लिए लिया। इनका प्रभाव शिशु ओं और मताओं इन सब के जीवन पर पड़ा है जिसका प्रमाण जन्म के समय शिशु का भार बढ़ना, अपोषक अहार की घटनाओं में कमी उतना, टीकाकरण में वृद्धि होना, शिशु मृत्यु दर का घटना तथा जन्म और मृत्यु दरों में घटाव है।

बाल कल्याण:प्रत्येक वर्ष श्री जवाहरलाल नेहरू का जन्म दिन 14 नवम्बर को प्रत्येक वर्ष बाल दिवस के रूप में मनाया जाता हैं। बाल कल्याण बच्चों के प्रति राष्ट्रीय चिन्ता बच्चों के अधिकारों एवं उनके प्रति सरकार, समाज एवं परिवार के दायित्वों से सम्बन्धित एवं विधायी प्रावधानों से परिलक्षित हैं। संविधान के अनुच्छेद 15 में अंकित है कि 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को किसी कारखाने अथवा खान अथवा किसी अन्य खतरनाक रोजगार में नही लगाया जायेगा। राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों की धारा 39 में इस बात को सुनिश्चितकिया गया है कि आर्थिक आवश्यकता से बाध्य होकर बच्चों को उनकी आयु एवं शक्ति के आयोग किसी व्यवसाय में कार्य न करना पड़े। इसमें यह भी वर्णित है कि बच्चों को स्वतंत्रता की स्थितियों में स्वस्थ्य ढ़ग से विकसित होने के अवसर एवं सुविधायें दी जाएँ तथा बचपन एवं यौवन की शोषण एवं नैतिक एवं भौतिक परित्याग से रक्षा की जाए। धारा 45 के अंतर्गत राज्यों से 14 वर्ष के आयु के सभी बच्चों के लिए निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए कहा गया है।

- **राष्ट्रीय बाल नीति**:विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं की विषय वस्तु बच्चों के प्रति सरकार की नीति का महत्वपूर्ण दर्पण है। प्रथम चार पंचवर्षिय योजनाओं से प्राप्त अनुभव, स्वतंत्रता उपरांत अनेक विभिन्न समितियों यथा भारत सरकार के द्वारा 1959 में नियुक्ति स्वास्थ्य सर्वे एवं नियोजन समिति, केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा 1960 में स्थापित समाज कल्याण एवं पिछड़े वर्गो के कल्याण पर अध्ययन दल, समाज कल्याण विभाग द्वारा 1967 में नियुक्ति बाल कार्यक्रम–निर्माण समिति, शिक्षा आयोग 1964, शिक्षा मंत्रालय के द्वारा स्थापित पूर्व स्कूली बच्चों के बारे में अध्ययन समूह, की सिफारिशों, विकालांग बच्चों से सम्बन्धित स्वयं सेवी अभिकरणों

एवं राष्ट्रीय समितियों की भूमिका, बाल अधिकारों की घोषणा (1959), अंतर्राष्ट्रीय एजेन्सियों यथा यूनिसेफ एवं डब्ल्यू0 एच0 ओ0 सभी ने राष्ट्रीय बाल नीति का आवश्यकता में योगदान दिया है। बाल कार्यक्रम निर्माण समिति की सिफारिषों (1968) तथा भारतीय बाम कल्याण परिषद द्वारा 1973 में बाल कल्याण के बारे में आठ सूत्री मसौदे की तैयारी ने इन प्रयासों को अधिक प्रोत्साहन प्रदान किया जिससे अन्ततः 1974 में राष्ट्रीय बाल नीति को अंगीकृत किया गया। नीति की प्रस्तावना में बच्चों को सबसे महत्वपूर्ण सम्पत्ति तथा उनके पालन एवं उनकी चिंता को हमारा दायित्व बतलाया गया है। बाल विकास कार्यक्रमों को राष्ट्रीय योजनाओं में प्रमुख स्थान दिया जाना चाहिए ताकि हमारे बच्चे हष्ठ–पुष्ठ शारीरिक रूप से स्वस्थ्य मानसिक तौर पर सचेत एवं नैतिक तौर पर स्वस्थ तथा समाज द्वारा आवश्यक कौशल से भरपूर नागरिक बन सके। इस नीति के अंतर्गत बच्चों का सम्पूर्ण शारीरिक मानसिक और सामाजिक विकास सुनिश्चित करने के लिए तथा जन्म से पहले और बाद विकास की अवधि के दौरान बच्चों को पर्याप्त सेवाएँ प्रदान करने की जिम्मेदारी प्रदेश की है।

- **समेकित बाल विकास परियोजना**ःसमेकित बाल विकास सेवा परियोजना को देशमें 2 अक्टूबर 1975 को आरम्भ किया गया। इसके उद्देश्य है। 0–6 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों के पोषाहार तथा स्वास्थ्य में सुधार लाना, बच्चे के उचित मानसिक शारीरिक और सामाजिक विकास के लिए आधार तैयार करना, बाल–मृत्यु दर, रूग्णता, कुपोषण एवं स्कूल से हट जाने की घटनाओं को कम करना, बाल विकास को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न विभागों के बीच नीति और कार्यान्वयन का प्रभावी समन्वय स्थापित करना, और बच्चे की सामान्य स्वास्थ्य और पोषाहार सम्बन्धि जरूरतों की देखभाल के लिए उचित पोषाहार एवं स्वास्थ्य शिक्षा के माध्यम से माताओं की क्षमता बढ़ाना।

समेकित बाल विकास सेवा योजना सम्बन्धी सेवाएँ प्रदान करने के लिए केन्द्र बिन्दु, प्रत्येक ग्राम में अथवा शहर के गन्दे क्षेत्रों के वार्ड में एक आंगनवाडी होती है। सामान्यता, ग्रामीण क्षेत्रों और शहरी गन्दी बस्तियों में 1000 की जनसंख्या के लिए एक आंगतवाड़ी और आदिवासी, पर्वतीय और छितरी–बिखरी जनसंख्या वाले क्षेत्रों में 700 की जनसंख्या के लिए एक आंगनवाड़ी होती है। परन्तु गाँवों की संख्या, परियोजना क्षेत्रों की जनसंख्या, स्थालाकृति आदि के आधार पर स्थानीय आवष्यकताओं के अनुसार आंगनवाड़ियों की संख्या बढ़ायी जा सकती है। आंगनवाड़ी एक आंगनवाड़ी कार्यकर्ता के द्वारा चलाई जाती है जो उस समुदाय की अवैतनिक स्वैच्छिक महिला कार्यकर्ता होती है। उसके कार्य की देखभाल मुख्य

सेविका/पर्यवेक्षक करती है। समेकित बाल विकास सेवा योजना की प्रशासनिकइकाई ग्रामीण/आदिवासी क्षेत्रों में ब्लाक। तालुका और शहरी क्षेत्रों में वार्डो गन्दी बस्तियों का समूह होती है।

सयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय बाल आपात निधि (यूनिसेफ) परामर्श सेवा, प्रशिक्षण, संचार, आपूर्ति, उपकरण, प्रबोधन, अनुसंधान और मूल्यांकन के क्षेत्र में समेकित बाल विकास सेवा कार्यक्रम को सहायता प्रदान कर रहा है। नोराड (नार्वे एजेन्सी फार डिवलपमेंट) उ0 प्र0 के तीन जिलों अर्थात् लखनऊ, मिर्जापुर और रायबरेली में 31 समेकित बाल विकास परियोजनाओं को सहायता दे रहा है। यू0 एस0 ए0 आई0 डी0 गुजरात के पंचमहल जिले में 11 समेंकित बाल विकास सेवा परियोजनाओं और महाराष्ट्र के चन्द्रपुर जिले में 10 समेकित बाल विकास सेवा परियोजनाओं को सहायता दे रहा है। कुछ समेकित बाल विकास सेवा परियोजनाओं को पूरक पोषाहार के लिए ''केयर'' और विश्व खाद्य कार्यक्रम की सहायता का भी उपयोग किया जा रहा है।

- **वृद्धों के कल्याण की आवश्यकता** : संयुक्त राष्ट्र संघ ने वृद्धों कें प्रति अपनी चिंता को व्यक्त करते हुए 1982 के दौरान वियना में आयोजित विष्व युद्ध महासभा में वृद्धो के लिए अंतर्राष्ट्रीय कार्य योजना अंगीकृत की थी। सयुक्त राष्ट्र के अनुमानों के अनुसार, वर्ष 2.25 में विष्व में वृद्धों की जनसंख्या 1.2 विलियन हो जायेगी, जिनमें से लगभग 71 प्रतिशतविकासषील प्रदेश ों में होगी। 1950 एवं 2025 के मध्य विकासषील एवं विकसित प्रदेश ों में 80 वर्ष के ऊपर के वृद्धों की संख्या से दोगुनी हो जायेगी। क्योंकि महिलाओं की आयु पुरूषों से अधिक होती है, अतैव वृद्धो में महिलाओं का बाहुल्य होगा। यह सभी प्रवृत्तियों राष्ट्रीय सराकरों से मुख्य नीति संशोधन की माँग करती है।

- **पेंशन न्यास कोष** :चतुर्थ वेतन आयोग को पेंशन की नयी विचारणा का एक सुझाव 'कॉमन को' द्वारा दिया गया था। इस विचारणा में एक पेंशन न्यास कोष को विकसित करने का विचार निहित है। इस कोष में सरकार कर्मचारी की सेवा अवधि के अनुपात में पेंशन का अनुवर्ती भुगतान अथवा सेवा निवृत्ति पर उसकी कुल पेंशन का भुगतान करेगी। यह न्यास कम से कम 10 प्रतिशत ब्याज की गारण्टी देगा, जो पेंशन भोगी को मासिक भुगतान के रूप में मिलेगी। जब कभी महँगाई भत्ते की नयी किशत दी जायेगी तो पेंशन भोगी के खाते में जमा कर दी जायेगी। कोष का प्रबन्ध न्याय मंडल द्वारा किया जायेगा जिसमें ख्यााति प्राप्त एवं निवेश अनुभवी लोग होंगे।

पेंशन न्यास निधि के अनेक लाभ है। सर्वप्रथम एवं सर्व महत्वपूर्ण यह पेंशन भोगी को अथवा उसकी विधवा को पेंशन पाने के लिए विभिन्न प्रक्रियाओं को पूरा करने के लिए चक्कर नही काटने पड़ेगे। इससें पेंशन निर्धारण भुगतान एवं लेखा रखने हेतु विविध स्थापनों पर हुये विशाल व्यय की बचत होगी। न्यास के क्रियान्वन की प्रक्रिया इतना सरलीकृत किया जा सकता है जिससें सारा कार्य थोड़े से स्टाफ द्वारा पूरा किया जा सके। इसके अतिरिक्त, सरकार न्यास निधि को लाभदायक विकासीय उद्देश्यों हेतु प्रयोग कर सकती है।

- **हैल्पेज इंडिया** : हैल्पेज इंडिया वृद्धों को देखभाल प्रदान करने के कार्यक्रमों में संलग्न प्रादेशिक स्वयं सेवी संगठनों के व्यक्तियों को प्रशिक्षण भी प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त यह वृद्ध देखभाल परियोजनाओं हेतु तकनीकि विशेश ज्ञता भी प्रदान करती है। अपने प्रारम्भ में इसने लगभग 10 करोड़ की लागत से 700 ऐसी परियोजनाओं को प्रयोजित किया है। हैल्पेज स्वयं ऐसी परियोजनाओं को परिचालित नही करता, यह प्रादेशिक वृद्धायु स्वयंसेवी संगठनों को तकनीकि एवं वित्तिय सहायता के द्वारा ऐसी परियोजनाओं के द्वारा एवं कार्यक्रमों के संचालन में सहायता करता है। हैल्पेज के द्वारा प्रबंधित केवल चलती फिरती मैडीकेयर युनिट का संचालन है जो नई दिल्ली की झुग्गी झोपड़ियों में 150 से 200 रोगियों को प्रतिदिन मैडीकेयर सुविधाएँ प्रदान करती है।

भारत में हेल्पेज इंडिया की स्थापना 1980 में की गई थी जिसके लक्ष्य एवं उद्देश्य थे – 50 वर्ष से ऊपर के आयु के पुरूषों एवं स्त्रियों को निवासिय, आवासीय एवं संस्थागत सुविधाओं के माध्यम से शैक्षिक, मनोरंजनात्मक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक सेवाएँ प्रदान करना, मेडिकल सेवाओं, अर्द्धकालिक रोजगार आय वृद्धि हेतु, भ्रमणों एवं यात्राओं की व्यवस्था, करों, सम्पत्ति, पेंषनी एवं अन्य आर्थिक तथा वित्तिय आवश्यकताओं हेतु व्यवसायिक परामर्शीय सेवाओ की व्यवस्था करना, वृद्धों की समस्या के बारे में अध्ययन एवं अनुसंधान कराना, एवं अध्ययन केन्द्रों, गोष्टियों, मनोरंजनात्मक समारोहों, रैलियों आदि की व्यवस्था करना तथा एवं युवा पीढ़ियों के मध्य बेहतर सामाजिक एकीकरण एवं सद्भावना हेतु उचित वातावरण तैयार करना।

- **वृद्धायु आवास गृह** : केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों, नगरपालिकाओं, परोपकारी समितियों, स्वयंसेवी संगठनों एवं अन्य वरिष्ठ नागरिक कल्याण समितियों ने वृद्ध एवं बुजुर्ग नागरिकों के लिए आवासीय सुविधाओं एवं अन्य सम्बद्ध आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए गृहों, शारीरिक एवं मानसिक गतिविधियों तथा अकेले पन को दूर करने एवं अन्य लोगों के साथ अन्तक्रिया करने एवं सम्पर्क बनाने हेतु मनोरंजन

स्थलों की व्यवस्था की है। इस समय देशमें अधिकांशतया नगरीय क्षेत्रों में लगभग 300 ऐसे गृह है। इनसे कुछ एक का जिन्होने प्रशंसनीय कार्य किया है का वर्णन निम्नलिखित है–

- **अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों का कल्याण** : हरिजनों की अधिकांश संख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। कुछ समय पूर्व तक हरिजन अपनी बस्ती से बाहर निकलने का साहस नही कर पाता था परन्तु देशके कुछ एक भागों में कृषि विकास (विशेष तया हरित क्रान्ति), कुछेक प्रदेशों में औद्योगिक प्रगति, तेजी से बढ़ते हुए नगरीय करण एवं जनमानी प्रणाली के विघटन के कारण हरिजन गतिशील वर्ग बन गये है सभी अनुसूचित जाति श्रमिको का लगभग 52 प्रतिशत कृषिगत श्रमिक है तथा 28 प्रतिशतलघु एवं सीमान्त कृषक है एवं फसल सहभागी हैं। देशके पश्चिम भाग में लगभग सभी बुनकर अनुसूचित जातियों से है एवं पूर्वी भाग में सभी मछुवारे अनुसूचित जाति के है। कुछ गंदे व्यवसाय यथा झाडू लगाना, चमड़ा उतारना, तथा परिशोधन तथा चमड़ी उतारना पूर्णतया अनुसूचित जातियों के लिए है। नगरीय क्षेत्रों में रिक्शा चालको, ठेला चालको, निर्माण श्रमिकों, बीड़ी क्रमिकों एवं अन्य असंगठित गैर–कृषि श्रमिकों तथा नगरीय सफाई कर्मिकों, की पर्याप्त संख्या अनुसूचित जातियों से सम्बद्ध रखती है। वे उन निर्धनों में जो गरीबी रेखा से नीचे रहते है, में सबसे निर्धन है।यद्यपि जनसंख्या के अन्य वर्गो में भी निर्धन एवं दलित है तदपि घोर निर्धनता, असामान्य अज्ञानता एवं गठन अन्धविश्वास में डूबी हुई जनसंख्या की अधिक भाग अनुसूचित जातियों में से है। वंचित लोगों में भी हरिजन ही शताब्दियों तक दासत, अपमान एवं नितांत विवशता का जीवन व्यतीत करते रहै है।
- **अनुसूचित जाति विकास निगम** : अनुसूचित जाति विकास निगम के सम्मेलन में समाज कल्याण/अनुसूचित जाति कल्याण विभागों के सचिवों, अनुसूचित जाति विकास निगमों के वरिष्ठ अधिकारियों एवं प्रबन्धक निदेशकों, भारतीय रिजर्व बैंक, भारतीय स्टेट, नाबार्ड, जमा बीमा एवं ऋण गारण्टी निगम एवं बैकिंग संस्थानों, कल्याण मंत्रालय एवं ग्रामीण विकास विभाग, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग के प्रतिनिधित्व तथा अनुसूचित जनजाति आयुक्त ने भाग लिया। इस सम्मेलन का विषय था, अनुसूचित जाति विकास निगम के माध्यम से अनुसूचित जातियों के परिवारों के आर्थिक विकास हेतु सहायता की नयी प्रणाली जिसे सीमान्त धन ऋण कार्यक्रम के विकल्प रूप में विकसित किया गया था।
- **संवैधानिक सुरक्षा** : संविधान में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों एवं अन्य कमजोर वर्गो के लिए विशेष तौर पर अथवा नागरिक रूप से उनके अधिकारों को

मान्यता देकर उनके शैक्षिक एवं आर्थिक हितो का विकास करने एवं उनकी सामाजिक आयोग्यताओं को दूर करने हेतु सुरक्षाएँ प्रदान की गई है। मुख्य सुरक्षाएँ है–

1. अस्पृश्यता उन्मूलन एवं किसी भी रूप मे इसके अभ्यास पर प्रतिबन्ध, (धारा 17)
2. उनके शैक्षिक एवं आर्थिक हितों की उन्नति एवं सामाजिक अन्याय एवं शोषण के सभी रूपों से उनकी सुरक्षा, (धारा 46)
3. सार्वजनिक स्वरूप की हिंदू धार्मिक संस्थाओं को सभी वर्गो एवं श्रेणियों के लिये खोल देना (25 बी)
4. दुकानों, जन भोजनालयों, रेस्टोंरेन्टों एवं सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों, कुओं, तलाबों, स्नानघाटों, सड़कों एवं सार्वजनिक विश्राम स्थानों जो पूर्णतया अथवा आंशिक रूप में राज्य कोष से सहायता प्राप्त करते है अथवा जन प्रयोग के लिए समर्पित कर दियें है, के प्रयोग के बारे में किसी अयोग्यता, बाधा अथवा शर्त की समाप्ति (धारा 15 (2)),
5. अनुसूचित जातियों के हित में सभी नागरिकों को स्वतन्त्रापूर्वक घूमने, बसने अथवा सम्पत्ति प्राप्त करने के सामान्य अधिकार पर कानून के द्वारा प्रतिबन्ध (19 (5),

संविधान में अनुसूचित जनजातियों के हितों के संरक्षण एवं वर्द्धन हेतु विभिन्न सुरक्षाओं की व्यवस्था है। अनुच्छेद 19, 46, 164, 244, 330, 332, 334, 338, 349, 342, तथा संविधान की पाँचवी एवं छठी अनुसूचियाँ इस विषय पर प्रासंगिक है। भारत सरकार कर दायित्व इस मामले में केवल उनके विकास के लिए वित्तिय व्यवस्था करने से ही समाप्त नही हो जाता अपितु यह राज्य सरकारों के सहयोग एवं परामर्ष से उनके शीघ्र एवं समन्वित विकास हेतु नीतियों एवं कार्यक्रमों का भी निर्णय करती है।

- **अन्य पिछडें वर्गो का कल्याण :** अन्य पिछडे वर्गो से अर्थ है ऐसे वर्गो से जो सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछडे हैं ! इन वर्गो के लिए संवैधारिक एवं विधिक संरक्षण व्यवस्था राज्य को पिछडे है । इन वर्गो के लिए संवैधानिक एवं विधिक संरक्षण व्यवस्था निम्नलिखित है :

(अ) संवैधानिक व्यवस्था

संविधान के अनुच्छेद की कोई व्यवस्था राज्य को पिछडे हुए नागरिकों के कियी वर्ग के पक्ष में निका राज्य की राय में राज्य की सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है, नियुक्तियों या पदो के आरक्षण के लिए प्रावधान करने से नहीं रोकेगी !

(ब) विधिक व्यवस्था

विकलांगों का कल्याण राष्ट्रीय सर्वेक्षण संगठन क्षरा किये गये सर्वेक्षण के अनुसार भारत में बारह मिलियन कुल जनसंख्या का 18 प्रतिशत तक अथवा अधिक विकलांगता से पीड़ित है। इन व्यक्तियों में से लगभग 10 प्रतिशत को एक से अधिक शारीरिक विकलांगता है। प्रत्येक प्रकार की विंकलागता को अलग लेते हुए गत्यात्मक विकंलागता सबसे अधिक (5.43 मिलियन) है, दृष्टिगत विकलांगता (3.47 मिलियन) श्रवण विकलांगता (3.02 मिलियन) एवं विकलांगता (1.75 मिलियन) है। इस सर्वेक्षण में केवल दृष्टिहीनों, पंगुओं एंव गूँगे व्यक्तियों को ही सम्मिलित किया गया है। अन्य विकलांगतों यथा मानसिक मदांधता को सम्मिलित नही किया गया है।

- **राष्ट्रीय विकलांग संस्थान** : कल्याण मंत्री के आधीन विकलांगता के प्रत्येक प्रमुख क्षेत्र के चार राष्ट्रीय संस्थान है। ये है– राष्ट्रीय अस्थि विकलांग संस्थान कलकत्ता, राष्ट्रीय दृष्टि विकलांग संस्थान, देहरादून, राष्ट्रीय विकलांग संस्थान सिकन्दराबाद, तथा अली यावर जंग राष्ट्रीय श्रवण विकलांग संस्थान बम्बई। ये संस्थाएँ व्यवासायिकों को प्रशिक्षण, विकलांगों के लिए शिक्षण सामग्री एवं अन्य सहायकों के उत्पादन, पुर्नवास में अनुसंधान करने तथा विकलांगों के लिए उपर्युक्त प्रतिरूप सेवाओं का विकास करने के लिए शीर्ष संगठन है। यह संस्थान एक दूसरे एवं देशके अन्य प्रशिक्षण केन्द्रों, स्वयं सेवी संगठनों, राज्य सरकारों, अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरणों के साथ मिलकर विभिन्न विकलांग संस्थाओं में आधारिक प्रतिमानों को क्रियान्वित कराने एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों को उच्चस्तरीय बनाने के लिए कार्य करते है।विकलांगों के लिए समेकित शिक्षा कार्यक्रम का राज्यों द्वारा क्रियान्वन न किये जाने के प्रमुख कारण है। प्रथम राज्य स्तर पर विकलांगों की विभिन्न समस्याओं से निपटने के लिए कोई समन्वयक निकाय नही है। द्वितीय, स्कूल स्तर पर इस कार्यक्रम के अधीन अतिरिक्त कार्य सुपुर्द किये जाने का स्वागत नही किया गया। तृतीय, अध्यापकों में विकलांग व्यक्तियों, बच्चों का प्रबन्ध करने के लिए योग्यता एवं प्रशिक्षण का अभाव हैं। चतुर्थ, माता–पिता समझते है कि विकलांगता ईश्वर की देन है एवं इसके लिए कुछ नही किया जा सकता है। वे इन बच्चों को स्कूल भी भेजना पंसद नही करते है इस आशंका से कि दूसरे बच्चे उनका उपहास करेगे। पाँचवें, विशेषज्ञों का विचार है कि विभिन्न रियायतों गहन सेवाओं, आरक्षण, यात्रा रियायतें, टेलीफोन स्वीकृत में वरीयता आदि का विकलांगों को जीवन की मुख्य धारा में विलिन करने में अधिक प्रभाव नही हुआ है। समस्या का मूल कारण अवसरों की उपलब्धता की समस्या में निहित है। विकलांगों के लिए शैक्षिक सुविधाएँ सीमित है,

जिसके कारण रोजगार एवं प्रशिक्षण के अवसर सीमित हो जाते है। इस समय, इस कार्यक्रम के क्रियान्वय में केरल अग्रणी है।

- **श्रम कल्याण**

भारतीय संविधान की धारा 23 में मानव व्यापार, बेगार एवं जबरदस्ती श्रम के अन्य सभी रूपों की मनाही की गई है। इस धारा को उल्लघंन दंडनीय अपराध है। धारा 24 में चौदह वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखानों में लगाने पर प्रतिबन्ध लगाया गया है। राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों में विभिन्न कल्याणकारी उपायों का उल्लेख किया गया है परन्तु यह सिद्धान्त न्याय कोष नही है। इसका परिपालन राज्य की इच्छा एवं उसके संसधानों पर निर्भर करता है।

39, 41, 42, एवं 43 श्रम नीति से सम्बन्धित है। धारा 39 में उल्लिखित है कि राज्य अपनी नीति का निर्माण इस प्रकार करेगा जिससे नागरिकों, पुरूषों एवं महिलाओं को समान रूप से आजीविका के समुचित साधन प्राप्त हों, समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व एवं नियंत्रण इस प्रकार विभाजित किया जाये जिसमें सामान्य हित की पूर्ति हों आर्थिक व्यवस्था के क्रियान्वन के उत्पादन के साधनों एवं सम्पत्ति का केन्द्रीयकरण न हो जिससे सामान्य हित की हानि हो, पुरूषों और महिलाओं को समान कार्य के लिए समान वेतन मिले, श्रमिको–पुरूषों एवं महिलाओं तथा अल्प आयु के बच्चों के स्वास्थ्य एवं बल का दुरूपयोग न हो एवं नागरिकों को आर्थिक आवश्यकता से बाधित होकर उनकी आयु एवं शक्ति के अनुपयुक्त व्यवसाय का करने के लिए विवश न होना पड़े, बच्चों एवं युवा को शोषण एवं नैतिक तथा भौतिक परित्याण के विरूद्ध संरक्षण प्रदान किया जाए।

संविधान के निर्देशों के परिपालन में केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों ने स्वातंत्रता प्राप्ति के बाद निम्नलिखित अधिनियम पारित किये है–

प्रशासनिक संगठन : श्रम मंत्रालय

श्रमनीति एवं श्रम कल्याण से सम्बन्धित अधिनियमों को श्रम मंत्रालय, भारत सरकार एवं राज्य सरकारों के श्रम विभागों द्वारा क्रियान्वित किया जाता है। श्रम मंत्रालय कैबिनेट मंत्री/राज्य मंत्री/स्वतंत्र प्रभार के अधीन कार्य करता है। भारत सरकार का कोई एक सचिव प्रषासकीय अध्यक्ष होता है जिसकी सहायतार्थ एवं अतिरिक्त सचिव, चार संयुक्त सचिव, एक महानिदेशक तथा अन्य वरिष्ट एवं कनिष्ट अधिकार होते है।

- **श्रम मंत्रालय के कार्य :** मंत्रालय श्रम मामलों यथा औद्योगिक सम्बन्धो, श्रम एवं प्रबन्ध के मध्य सहयोग, वेतन एवं सेवा की अन्य शर्तो को नियमन, सुरक्षा, श्रम कल्याण, सामाजिक सुरक्षा आदि से सम्बन्धित नीति का निर्माण करने के लिए

उततरदायी है। श्रम नीति का क्रियान्वन केन्द्रीय सरकार के द्वारा निर्देशन एवं नियंत्रण के अधीन राज्य सरकारों का दायित्व है। रेलवे, खानों, तेल क्षेत्रों, प्रमुख बन्दरगाहों, बैकों, बीमा कम्पनियों तथा अन्य जो संघ सूची में वर्णित है, राज्य सरकार के क्षेत्र में नही आते है। मंत्रालय कर्मचारी राज्य बीमा कानून, 1948 कर्मचारी भविष्य निधि कोष एवं विधि व्यवस्थाओं कानून, 1952 के अधीन सामाजिक सुरक्षा स्कीमों के क्रियान्वयन तथा बीड़ी उद्योग एवं खान (कोयला खानों को छोड़कर) श्रमिकों के कल्याण कोषों के प्रबन्ध के लिए सीधा उत्तरदायी है। यह राज्य सरकारों की श्रम मामलों के बारे में गतिविधियों को समन्वित करता है तथा आवश्यकता के समय परामर्श देता है। यह व्यक्तियों को उनकी रोजगार क्षमता बढ़ाने हेतु प्रशिक्षण सुविधाएँ भी प्रदान करता है। यह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा संगठन के सम्बन्धित सभी गतिविधियों के लिए आदर्श संगठन के रूप में कार्य करता है। यह सम्मेलनों एवं बैठकों में सहभागिता को समन्वित करता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय एवं इन संस्थाओं की सिफारिषों को क्रियान्वित करने के लिए उत्तरदायी है।

1.4 समाज कल्याण प्रशासन का वर्गीकरण

भारत में समाज कल्याण का कार्य प्राचीन काल से ही शैक्षिक आधार पर ही होता आया है। मध्य काल में कतिपय शासकों द्वारा जनहित में कुछ कार्य किये जाते थे। स्वतंत्रता के पष्चात् भारत ने कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को स्वीकार किया तथा जनहित को शासन का दायित्व स्वीकार किया गया। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र व अन्य संगठनों तथा प्रजातांत्रिक देशों ने समाज कल्याण हेतु अनेक कार्यक्रम चलाये। वर्तमान में भारत में विभिन्न समाज कल्याण योजनाओं को उनके प्रशासनिकवर्गीकरण के आधार पर निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. अंतर्राष्ट्रीय समाज कल्याण प्रशासन
2. केन्द्रीय समाज कल्याण प्रशासन
3. राज्य स्तरीय समाज कल्याण प्रशासन
4. शासन द्वारा सहायता प्राप्त अनुदान द्वारा समाज कल्याण करने वाली पंजीकृत गैर सरकारी संस्थाओं का प्रशासन
5. अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा सहायता प्राप्त अनुदान द्वारा समाज कल्याण करने वाली पंजीकृत गैर सरकारी संस्थाओं का प्रशासन
6. निजी संस्थाओं के द्वारा किये जाने वाले समाज कल्याण का प्रशासन

7. स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा किये जाने वाले समाज कल्याण का प्रशासन

1.5 समाज कल्याण प्रशासन की प्रक्रिया

समाज कल्याण प्रशासन प्रक्रिया में प्रक्रिया समान उद्देश्य प्राप्ति के लिए समूह के पारस्परिक प्रयत्नों को सुविधाजनक बनाती है। प्रशासन प्रक्रिया निम्नाकिंत प्रकार के कार्यो के लिए प्रयोग में लाई जाती है।

1. प्रशासनिक विधि, प्रक्रिया, कार्य की प्रगति और फल–प्राप्ति का समय–समय पर मूल्यांकन होना चाहिए।
2. संस्था के उद्देश्यों और कार्यक्रमों संबंधी आँकड़े इकट्ठे करके निर्णय लेने में सहायता करना।
3. उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर आवश्यकताओं का विश्लेषण करना।
4. पूर्वानुमान के आधार पर संस्था के कार्य के लिए बहुत सी वैकल्पिक तकनीकों या प्रक्रियाओं में से एक का चुनाव करना।
5. वैकल्पिक प्रक्रिया के प्रयोग के द्वारा संस्था की परियोजनाओं को क्रियान्वित करने की व्यवस्था करना।
6. संस्था के कार्य के आधार के अनुरूप आवश्यक कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, पर्यवेक्षण, कार्य–बँटवारा आदि की व्यवस्था करना।
7. संस्था की उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए समुचित उपायों, क्रिया विधियों और तकनीकों के निरंतर प्रयोग की व्यवस्था करना।
8. कार्य–विधि के दौरान कार्य को सुदृढ़ बनाने के लिए आकड़ों का संग्रह, अभिलेखन और विश्लेषण करना।
9. सार्वजनिक धनराशि के सदुपयोग के हेतु वित्तिय क्रियाविधियों का निर्धारण करना और उनको क्रियान्वित करना।
10. संचार और प्रभावशाली जन–सम्पर्क की व्यवस्था करना।
11. समय–समय में कार्य और प्रयोग में लाई जाने वाली विधियों का मूल्यांकन करवाना।

- **वित्तीय प्रक्रिया** : यद्यपि संस्था के वित्तीय मामलों का दायित्व प्रबंध–समिति पर होता है, जो कोषाध्यक्ष के माध्यम सें इसे कार्यान्वित करती है, तथापि बजट बनाने में संस्था के मुख्य कार्यपालक को पहल करना चाहिए। यदि संस्था के अनेक अनुभाग अथावा शाखायें हो तो उन सब के अनुमानित व्यय का ब्यौरा प्राप्त करना चाहिए और फिर उसका इकट्ठा विवरण तैयार करना चाहिए। कर्मचारी वर्ग और कार्यकत्ताओं की चाहिए वे कार्यालय में अगामी वर्ष के कार्यक्रमों संबंधी वित्तिय

आवष्यकताओं के विषय में संपूर्ण टिप्पणी रखते जायँ। ऐसा करते समय, संस्था के वित्तिय स्त्रोतों की क्षमता और कार्यक्रमों के विस्तार और सुधार के प्रस्तावों को ध्यान में रखना चाहिए।

उपलब्ध सामग्री के आधार पर बजट के मसविदे पर कर्मचारियों की बैठक में विचार करने के बाद उसे अंतिम रूप देकर कोषाध्यक्ष के द्वारा प्रबंध समिति के सामने पेष किया जाना चाहिए। प्रबंध समिति के द्वारा अनुमोदित बजट की सामान्य सभा से स्वीकृति प्राप्त की जानी चाहिए। प्रबंध समिति के द्वारा बजट उप समिति बनाई जानी चाहिए, जिसमें वित्तिय मामलों के विशेश ज्ञ, लेखा निरीक्षण, लेखाकार तथा मूल्यांकन पद्धति का ज्ञान रखने वाले व्यक्ति होने चाहिए। कोषाध्यक्ष इस समिति का प्रधान और मंत्री इसका मंत्री होना चाहिए।

बजट बनाने से पहले संस्था के आय व्यय का ब्यौरा मदों के अनुसार बनाना चाहिए। बजट के दो भाग होते है आय और व्यय। बजट निम्नलिखित खण्डों में बनाया जाना चाहिए :–

1. पिछले वर्ष का अनुमानित आय–व्यय।
2. पिछले वर्ष का वास्तविक आय–व्यय।
3. चालू वर्ष का वास्तविक आय–व्यय।
4. अगामी वर्ष का अनुमानित आय–व्यय।

बजट के साथ व्याखात्मक टिप्पणी तैयार करनी चाहिए, जिसमें पिछले वर्ष से अधिक और कम अनुमानों के कारा दिये जाने चाहिए और यह भी बताया जाना चाहिए कि मदों पर अतिरिक्त व्यय के लिए धन कहाँ से प्राप्त किया जाये। यदि कोई नया कार्यक्रम चालू करना हो अथवा वर्तमान कार्यक्रम में सुधार अथवा विस्तार करना हो, तो उसके लिए अनुमानित व्यय के सबंध में व्याख्यात्मक टिप्पणी देना चाहिए।

1.6 समाज कल्याण प्रशासन का इतिहास

प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता, कुशलता तथा सामाजिक परिस्थितियों के कारण एक दूसरे से भिन्न अस्तित्व रखता है। वह अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता है। उसे अन्य व्यक्तियों की सहायता लेनी ही पड़ती है जिसके परिणामस्वरूप सामूहिक आवश्यकताओं का जन्म होता है। व्यक्ति की ये आवश्यकतायें एक दूसरे को सहायता प्रदान करने के सिद्धान्त पर संगठित करती हैं तथा उनमें एकमतता, सामूहिकता तथा सहयोग की भावना का विकास करती हैं जो एक सभ्य समाज की आधारशिला है।

प्रारम्भ में समाज कल्याण के विकास में धर्म के नाम पर दिए जाने वाले दान की संगठित व्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसके बाद आवश्यकताग्रस्त सदस्यों की सहायता के लिए व्यावसायिक संघों की पारस्परिक सहायता समितियों की प्रमुख भूमिका रही है। इसके बाद शहरों का विकास होने पर नगरपालिकाओं द्वारा आवश्यकताग्रस्त लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाने लगी जो बाद में राज्य के दातव्य संगठनों के रूप में परिवर्तित हो गई। इसके अतिरिकत जॉन हावर्ड, एलिजावेथ फ्राई, जोसफीन ब्टलर, फ्लोरेन्स नाइटिंगेल जैसे समाज सुधारकों के प्रयासों के कारण सामाजिक सहायता के समाधान का विकास हुआ। अंग्रेजी निर्धन कानून का निर्माण समाज के निर्बल वर्गों की समस्याओ के समाधान में राज्य के उत्तरदायित्व की चेतना के विकास का प्रतिनिधित्व करता है और साथ–साथ इस बात को भी सामने लाता है कि केवल सहायता मात्र से कल्याण के लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हों सकती। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में चलाए गए दान संगठन आन्दोलन का उद्देश्य निर्धनों की स्थिति में सुधार और इस कार्य में लगे हुए संगठनों में समन्वय स्थापित करना था।

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही व्यक्तियों को सहायता प्रदान करने अथवा सेवा की भावना के महत्व का अनुभव किया गया था। गीता के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा ने त्याग के साथ मनुष्य की रचना करने के बाद कहा कि पारस्परिक बलिदान तथा पारस्परिक सहायता से उनका विकास तथा उनकी समृद्धि एवं वृद्धि होगी। यह त्याग कामधेनु के समान है जो सभी इच्छित वस्तुओं को प्रदान करेगा (बनर्जी, 1967:150)। भारतीय दर्शन में यज्ञ को बहुत महत्व दिया गया है जिसका अर्थ ऐसी किसी भी सामाजिक, राष्ट्रीय अथवा व्यक्तिगत क्रिया से है जिसमें व्यक्ति सेवा की भावना से अपने को पूर्ण रूप से लगाने के लिए तैयार है। समाज कल्याण में सेवा की भावना का सर्वोपरि स्थान है। पंचतन्त्र में यह ठीक ही कहा गया है, 'सेवा धर्म परम गहनो योगिनाम् प्रिय गम्यः' और इसीलिए जो व्यक्ति सेवा की भावना से, लाभ की भावना से नहीं, तथा आत्मसन्तोष की भावना से, सफलता की भावना से नहीं, कार्य करता है, वही समाज कल्याण में वास्तविक योगदान दे सकता है। कठोपनिषद् में व्यक्तियों द्वारा सम्पन्न किए जाने वाले सभी कार्यों को प्रेय एवं श्रेय की श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। समाज कल्याण की दृष्टि से इस बात पर बल दिया गया कि व्यक्ति को अपने लिए प्रेय न होने के बावजूद भी श्रेय कार्यों को करना चाहिए।

प्राचीन भारतीय विचारधारा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को धर्म अर्थात् समाज के प्रति अपने निर्धारित कर्तव्यों का पालन करने के लिए कहा गया है जो एक

लम्बी अवधि के दौरान व्यक्ति में आत्मविश्वास और शुद्धीकरण को लाते हुए उसका भी कल्याण करता है। इसके साथ ही साथ प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव में अच्छाईयाँ तथा बुराईयाँ दोनों ही पायी जाती हैं और इन दोनों ही प्रकार की शक्तियों में अन्तर्द्वन्द होता रहता है। अपनी तार्किक शक्ति का उपयोग करते हुए व्यक्ति बुराईयों पर काबू पाने का प्रयास करता है तथा अपने प्रयासों से समाज कल्याण में अपना योगदान देता है।

हिन्दू समाज में जीवन के लक्ष्यों के रूप में चार पुरुषार्थों–धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का वर्णन किया गया है। इनमें से इहलौकिक अर्थ तथा काम की पूर्ति भी धर्म द्वारा निर्धारित होती है और अन्तिम उद्देश्य मोक्ष को चरम उत्कर्ष वाला माना जाता था और पहले तीनों लक्ष्यों का उद्देश्य चौथे लक्ष्य अर्थात् मोक्ष को प्रापत करना होता था। हमारे मनीषियों द्वारा कर्तव्यों के संपादन पर अधिक बल दिया गया है और पंच महायज्ञों का प्रावधान करते हुए विभिन्न प्रकार के ऋणों से छुटकारा पाने की बात कही गयी है। भारतवर्ष में सामाजिक न्याय की विचारधारा कभी भी व्यक्ति के अधिकारों पर केन्द्रित नहीं रही है बल्कि यह अन्य व्यक्तियों के प्रति अपने कर्तव्यों के प्रतिपादन पर आश्रित रही है।

इस प्रकार भारतवर्ष में त्याग की भावना पर हमेशा बल दिया गया है किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं था कि व्यक्ति अकर्मण्य बन जाए। निष्काम कर्म का उपदेश इसीलिए दिया गया था ताकि व्यक्ति धर्म द्वारा निर्धारित सीमाओं के अधीन कार्य करते हुए इहलौकिक लक्ष्यों–अर्थ एवं काम की प्राप्ति कर सके। बुद्धिमान व्यक्तियों को निष्काम कर्म करने की सलाह सम्पूर्ण विश्व का हित करने के लिए दी गई थी।

भारतवर्ष में प्राचीन काल में कलयाण की अवधारणा केवल आवश्यकताग्रस्त वर्गों तक ही सीमित नहीं थी बल्कि इसके विस्तार क्षेत्र में सभी वर्ग सम्मिलित थे। इसके साथ ही साथ कल्याण की अवधारणा शारीरिक अथवा भौतिक कल्याण तक ही सीमित नहीं थी और इसीलिए अनेकों ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें व्यक्ति अथवा समूह अपने साथियें की विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति नाना प्रकार के कार्य करते हुए करते थे जैसे कि कूँएं अथवा तालाब खुदवाना, विद्यालय खोलना, धर्मशालायें बनवाना, अस्पताल स्थापित करना, दार्शनिक विचार–विमर्श के लिए मठों की स्थापना करना, इत्यादि।समाज कल्याण की आवधारणा अत्यन्त प्राचीन है। निर्धनता, बीमारी, कष्ट आदि मानव जीवन में सदैव विद्यमान रहे है। प्रारम्भ में गिरोह तथा कबीलों के रूप में जीवन व्यतीत करता था। किन्तु यह जीवन आरक्षित एवं अव्यवस्थित था। फलस्वरूप समुदाय, समाज तथा राज्य के रूप में

मनुष्य ने समष्टिगत व्यवस्था को जन्म दिया। इस व्यवस्था के परिणामस्वरूप समाज मेंविषेशीकरण का विकास हुआ और श्रम विभाजन ने जन्म लिया। इस श्रम–विभाजन के कारण समाज में उत्पादन के साधन एक दूसरे से पृथक हो गये। श्रम और पूँजी दो पृथक व्यक्तियों के हाथ में चली गई। इससे समाज में शोषण, उत्पीड़न तथा सम्पत्ति व शक्ति का असमान वितरण प्रारम्भ हुआ। असमान वितरण के कारण ही अनेक सामाजिक समस्याओं का जन्म हुआ और इन समस्याओं को हल करने के लिए समाज कल्याण का विकास हुआ।

इस प्रकार भारतीय परम्परा के अनुसार व्यक्ति का उद्देश्य स्वार्थ, लालच, तृष्णा जैसी पाशविक प्रवृत्तियों से नियन्त्रित सीमित व्यक्तिवाद को सम्पूर्ण मानव–मात्र की भलाई के लिए कार्यरत आत्मबोध कराने वाली सार्वभौमिकता में परिवर्तित करना था जो कि समाज कल्याण प्रशासन की प्रारम्भिक स्थिति कही जा सकती है।

समाज कल्याण प्रशासन समाज के प्रत्येक समाज कल्याण अभिकरण के सुचारू रूप से कार्य करने से सम्बन्धित है। इसका मुख्य उद्देश्य सामाजिक, आर्थि, सांस्कृतिक तथा नैतिक विकास के लिए लोकतांत्रिक नियोजन के द्वारा कल्याणकारी समाज की स्थापना करना है। समाज कल्याण प्रशासन विकास नीति के प्रतिपादन में सहायता करता है। इसके साथ ही अनेक प्रमुख समाज कल्याण सेवाओं को समन्वित ढ़ग से नियोजित, व्यस्थित एवं कार्यान्वित करने में सहायता करता है। इन सेवाओं में राजकीय तथा स्वयंसेवी अभिकरणों का मिलकर कार्य करना भी शामिल है, यद्यपि विविध समाज कल्याण सेवाओं में इन दोनों का अनुपात भिन्न–भिन्न हो सकता है। इन सेवाओं को निम्न क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता हैः–

1. **समाज सेवायें**

(क) शिक्षा

इसके अन्तर्गत प्राथमिक, माध्यमिक, विष्वविद्यालय स्तरीय, तकनीकि व्यावसायिक, श्रमिक तथा सामाजिक शिक्षा सम्मिलित हैं। शिक्षा का समन्वय जनशक्ति नियोजन द्वारा होना चाहिए। शिक्षा मानव संसाधन के विकास में निवेष मानी जाने लगी है। यह एक प्रषंसनीय प्रगति है, परन्तु शिक्षा में सामाजिक मूल्यों तथा नैतिक विकास पर विशेश ध्यान देन की आवष्यकता है।

(ख) स्वास्थ्य सेवायें एवं परिवार नियोजन

स्वास्थ्य सेवाओं में चिकित्सकीय, निरोधात्मक तथा स्वस्थ्य वर्धक सेवायें आती है। जन्म दर में वृद्धि में विशेश कमी करने के लिउ परिवार नियोजन आवश्यक है। इस कार्य में स्वयंसेवी संस्थाओं का सहयोग निन्तात आवश्यक है।

कृत्रिम साधनों के प्रयोग के साथ साथ संयम तथा नैतिक जीवन पर भी ध्यान देना चाहिए ताकि वह प्रयास पाष्चात्य देषों का अनुकरण मात्र ही बनकर न रह सके।

(ग) आवास

निम्न आय वाले वर्ग के लिए ऋणमुक्त अनुदान की व्यवस्था की जाती है क्योकि साधनों के अभाव के कारण आवास स्थिति में विशेश सुधार की आषा नही की जा सकती है। राज्य की और से भी कम मूल्य के आवास बड़ी संस्था में बनाये जा सकते है।

2. सामाजिक सुरक्षा

सामाजिक सुरक्षा को सुदढ़ बनाने के लिए सामाजिक बीमा का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। इन योजनाओं को एकीकृत करते हुए अधिक व्यापक बनाया जा सकता है। इससे निम्न आय वर्ग से प्राप्त धनराषि से योजना के साधनों में वृद्धि की जा सकती है।

सामाजिक सहायता द्वारा वृद्धों, अबलाओं आदि को राज्य की ओर से आर्थिक सहायता दी जाती है। धन के आभाव के कारण इन सेवाओं को और अधिक व्यापक बनाने में अभी भी कठिनाई है। स्वयंसेवी संस्थायें इस ओर ध्यान दे तो अधिक साधन जुटाये जा सकते है।

3. सामुदायिक विकास

सामुदायिक विकास ग्रामीण तथा नगरीय दोनों स्तर पर होता है। इन दोनों स्तरों का एकीकृत कर एक व्यापक सामुदायिक विकास योजना के चलाये जाने की आवष्यकता है जिससे संतुलित विकास सम्भव हो सके।

4. श्रम सम्बन्ध

श्रमिक संघों की नियोजन की प्रक्रिया में सहभागिता आवश्यक है। राजकीय तथा निजी क्षेत्रों में प्रबंधकों और श्रमिकों के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित करते हुए उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है।

5. समाज कल्याण

अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा पिछड़ी जातियों की कल्याण योजनाओं का विस्तार किया जाना चाहिए जिससे इस वर्ग में भी एकीकरण हो सकें। शारीरिक रूप से बाधित जैसे अंधे, बधिर, अपाहिज, आदि के लिए कल्याणकारी योजनाओं का निर्माण होना चाहिए। समाज में इनके पुनर्स्थापन को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। मानसिक रोगियों के लिए मानवता वादी समाज की व्यवस्था की जानी चाहिए तथा एक राष्ट्रवादी तथा एक राष्ट्रव्यापी मानव आरोग्य शास्त्र का विधिवत

प्रचार किया जाना चाहिए। सामाजिक चेतना के रचनात्मक कार्यो से मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि हो सकती है।

6. सामाजिक रक्षा

वयस्क, युवा तथा बाल अपराधियों के लिए सुधार सम्बन्धी सेवाओं की व्यवस्था की जानी चाहिये। इसमें बन्दीगृह, प्रोबेषन, पुनर्वास आदि सेवायें आती है। अनैतिक व्यापार से पीड़ित लड़कियों तथा स्त्रियों के लिए नारी निकेतन तथा भिक्षुओं के लिए गृह स्थापित किये जाने चाहिए।

1.7 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में समाज कल्याण प्रशासन का परिचय, परिभाषा, वर्गीकरण के बारे में विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। इसी इकाई में समाज कल्याण प्रशासन की प्रक्रिया के बारे में लिखा गया है तथा समाज कल्याण प्रशासन के इतिहास के बारे में भी लिख गया है। जिसमें समाज कल्याण प्रशासन के विभिन्न अवयवों का विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

1.8 अभ्यास प्रश्न

1. समाज कल्याण प्रशासन का परिचय दीजिये ?
2. समाज कल्याण प्रशासन का वर्गीकरण कीजिये ?
3. समाज कल्याण प्रशासन के प्रमुख क्षेत्र की व्याख्या कीजिये ?
4. समाज कल्याण प्रशासन की प्रक्रिया को समझाइये ?
5. समाज कल्याण प्रशासन का इतिहास की विस्तृत व्याख्या कीजिये ?

1.9 पारिभाषिक शब्दावली

Social administration	सामाजिक प्रशासन
Social service administration	समाज सेवा प्रशासन
Social defence administration	सामाजिक सुरक्षा प्रशासन
Welfare administration	कल्याण प्रशासन
Professional skill	व्यावसायिक कुशलता
Social Welfare administration	समाज कल्याण प्रशासन
Social policy	सामाजिक नीति
Women decade	महिला दशक

Women & child development association	महिला और शिशु विकास निगमो
Women Resistance House	महिला आवास गृहों
Child Home	शिशु गृह
Special Live Benefit	विशेष अवकाश लाभ
Welfare Mandal	कल्याण मण्डल

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, डी० के०, भारत में समाज कल्याण प्रशासन : अवधारणा एवं विषय क्षेत्र, रॉयल बुक डिपो लखनऊ, वर्ष 2011.
2. सिंह, सुरेन्द्र, मिश्र, पी० डी०, समाज कार्य– इतिहास, दर्षन एवं प्रणालियाँ, रॉयल बुक कम्पनी लखनऊ, वर्ष 2006.
3. सिंह, सुरेन्द्र, वर्मा, आर० बी० एस०, भारत में समाज कार्य का क्षेत्र, रॉयल बुक कम्पनी लखनऊ, वर्ष 2009.

इकाई—2

समाज कल्याण प्रशासन : अवधारणा एवं प्रकृति

Social Welfare Administration:Nature & Concept

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 परिचय
2.2 समाज कल्याण प्रशासन की अवधारणा
2.3 समाज कल्याण प्रशासन की प्रकृति
2.4 समाज कल्याण प्रशासन के कार्य
2.5 समाज कल्याण प्रशासन के सिद्धांत
2.6 समाज कल्याण प्रशासन में अनुश्रवण व मूल्यांकन
2.7 कार्मिक प्रबंध
2.8 सार संक्षेप
2.9 परिभाषिक शब्दावली
2.10 अभ्यास प्रश्न
संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

1. समाज कल्याण प्रशासन की अवधारणा एवं प्रकृति के बारे में जान सकेंगे।
2. समाज कल्याण प्रशासन के कार्य के बारे में लिख सकेंगे।
3. समाज कल्याण प्रशासन के सिद्धान्त जान सकेंगे।
4. समाज कल्याण प्रशासन का अनुश्रवण व मूल्यांकन कर सकेंगे।

2.1 परिचय

समाज के प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति उचित ढ़ग से करना, जिससे कि वह सुखी और सन्तोषजनक जीवन व्यतीत कर सके, कल्याणकारी राज्य का प्रमुख उदेद्श्य है। प्रभावकारी सेवाओं को विस्तृत स्तर पर लागू करने के लिए, योजना, निर्देशन, समन्वय और नियंत्रण का सामूहिक प्रयास किया जाता है। समाज कार्य की सेवाओं को व्यवसायिक स्वरूप प्रदान करने के लिए भी यह आवश्यक है कि समाज कार्यकर्ताओं को आवश्यक ज्ञान और कौशल प्रदान किया जाये। समाज कार्य सेवाओं को प्रदान करने में आवश्यक प्रशासनिक एवं नेतृत्व दक्षता के लिए कार्यकर्ता को इस ज्ञान और कौशल का प्रयोग करके सेवाओं को और प्रभावकारी बनाया जा सकता है। अतः यह आवश्यक है कि समाज कार्यकर्ताओं को एक व्यवस्थित ज्ञान एवं तकनीकी कौशल प्रदान किया जाये।

2.2 समाज कल्याण प्रशासन की अवधारणा

समाज कल्याण प्रशासन समाज कार्य की एक प्रणाली के रूप में कार्यकताओं को प्रभावकारी सेवाओं हेतु ज्ञान एवं कौशल प्रदान करता है। यद्यपि समाज कल्याण प्रशासन , समाज कार्य की द्वितीयक प्रणाली मानी जाती है परन्तु प्रथम तीनों प्राथमिक प्रणालियों, वैयक्तिक सेवा कार्य, सामूहिक सेवा कार्य, तथा सामुदायिक संगठन की सेवाओं में सेवार्थी को सेवा प्रदान करने हेतु समाज कल्याण प्रशासन की आवश्यकता पड़ती है। समाज कल्याण प्रशासन का आशय जन सामान्य के लिए बनायी गयी एवं सामुदायिक सेवाओं जैसे स्वास्थ्य, आवास शिक्षा और मंनोरजन के प्रशासन से है। इसे समाज सेवा प्रशासन के पर्यायवाची शब्द के रूप मे समझा जाता है।

2.3 समाज कल्याण प्रशासन की प्रकृति

समाज कल्याण प्रशासन विज्ञान तथा कला दोनों हैं। एक विज्ञान के रूप में इसके क्रमबद्ध ज्ञान होता है जिसका उपयोग सेवाओं को अधिक प्रभावी बना देता है। विज्ञान के रूप में इसके निम्न तत्व प्रमुख है नियोजन, संगठन, कार्मियों की भर्ती, निर्देशन, समन्वय, प्रतिवेदन, बजट तथा मूल्यांकन। कला के रूप में समाज कल्याण प्रशासन में अनेक निपुणताओं तथा प्रविधियों का उपयोग होता है जिसके परिणाम स्वरूप उपयुक्त सेवाओं को प्रदान सम्भव होता है।

समाज कल्याण प्रशासन की निम्न प्रमुख विशेषतायें हैः—

1. प्रशासन कार्यो को पूरा करने के लिए की जाने वाली एक प्रक्रिया है। समाज कल्याण प्रशासन में स्वास्थ्य, शिक्षा आवागमन, आवास, स्वच्छता, चिकित्सा, आदि सेवाओं को प्रभावकारी बनाया जाता है।

2. समाज कल्याण प्रशासन की संरचना में एक उच्च–निम्न की संस्तरणात्मक व्यवस्था होती है। कर्मचारियों की स्थिति के अनुसार उनके कार्य तथा शक्तियाँ निर्धारित होती है।

3. नेतृत्व निर्णय लेने की क्षमता, शक्ति, संचार आदि प्रषासकीय प्रक्रिया के प्रमुख अंग है।

समाज कल्याण प्रशासन मूलरूप से निम्न क्रियाओं से सम्बन्धित हैः–

1. राज्य के सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करन के लिए ऐसी नीति निर्धारित करना जिससे संगठनल में कार्यरत जनषक्ति एकीकृत रूप से कार्य कर सके।

2. सेवाओं के प्रभावपूर्ण प्रावधान के लिए संगठनात्मक संरचना की रूपरेखा तैयार करना।

3. संसाधनों, कर्मचारीगण तथा आवश्यक प्रविधियों का प्रबन्ध करना।

4. आवश्यक ज्ञान एवं निपुणताओं से युक्त मानव संसाधन का प्रबन्ध करना।

5. उन क्रिया–कलापों को सम्पादित करवाना जिनसे अधिकतम संतोषजनक ढ़ग से लक्ष्य की प्राप्ति हो सके।

6. ऐसा वातावरण तैयार करना जहाँ आपसी मेल–मिलाप तथा प्रगाढ़ता बढ़े एवं कर्मचारी कार्य करने की प्रक्रिया के दौरान में सुख अनुभव करें।

7. किये जाने वाले कार्यो को निरन्तर मूल्यांकन करना।

2.4 समाज कल्याण प्रशासन के कार्य

समाज कल्याण प्रशासन न केवल संस्था के कार्यो को सम्पादित करता है बल्कि वह संस्थओं को निरन्तर उन्नति की दिशा में बढ़ाने का प्रयास भी करता है। वारहम के विचार से समाज कल्याण प्रशासन के निम्न कार्य हैः–

1. संस्था के उद्देश्य को पूरा करना

समाज कल्याण प्रशासन संस्था की नीतियों को कार्यान्वित करता है। नीतियों को केवल प्रशासनिकप्रक्रिया द्वारा ही कार्यरूप प्रदान किया जा सकता है। वह नीतियों के निर्धारण में भी भाग लेता है जिससे संस्था के उद्देश्यों तथा नीतियों में एकरूपता बनी रहे।

2. संस्था की औपचारिक संरचना का निर्माण करना

समाज कल्याण प्रशासन का दूसरा कार्य सम्प्रेषण व्यवस्था को अधिक प्रभावी बनाने के लिए औपचारिक संरचना का निर्माण करना होता है, कर्मचारियों के लिए मानदण्ड निर्धारित करना होता है, तथा उन्ही के अनुसार कार्य सम्बन्ध विकसित करना होता है।

3. सहयोगात्मक प्रयत्नों को प्रोत्साहन प्रदान करना

प्रशासन का कार्य संस्था में ऐसा वातावरण तैयार करना होता है जिससे कर्मचारीगण पारस्परिक सहयोग से अपने उत्तरदायित्वों को पूरा कर सकें। यदि कहीं भी संघर्ष के बीज पनपने लगें तो उनकों तुरन्त नष्ट कर देना आवश्यक होता है। कर्मचारियों के मनोबल को ऊँचा बनाये रखने के हर सम्भव प्रयत्न किये जाने आवश्यक होते है।

4. संसाधनों की खोज तथा उपयोग करना

किसी भी संस्था के लिए अर्थ शक्ति तथा मानव शक्ति दोनों आवश्यक होती है। संस्था तभी अपने उत्तरदायित्वों को पूरा कर सकती है जब उसके पास पर्याप्त धन हो तथा दक्ष कर्मचारी हों। आर्थिक स्त्रोतों का पता लगाकर उनके समुचित उपयोग करने की व्यवस्था का कार्य प्रशासन हो होता है। वित्त पर नियंत्रण रखने का कार्य भी उसी का होता है। वह अपनी शक्तियों को हस्तांतरित भी करता है जिससे दूसरे अधिकारी इस शक्ति का उपयोग कर सके।

5. अधीक्षण का मूल्यांकन

प्रशासन संस्था के कार्यो के लिए उत्तरदायी होता है। अतः वह इसकी सभी गतिविधियों पर दृष्टि रखता है। वह संस्था के कर्मचारियों की आवश्यक तानुसार सहायता करता है तथा दिशा निर्देश देता है। वह सदैव कार्य प्रगति का लेखा–जोख रखता है। वह कार्यो का मूल्यांकन निरन्तर करता रहता है।

लूथर गलिक ने समाज प्रशासन के कार्यो का वर्णन करने के लिए जादुई सूत्र 'पोस्डकार्ब' (POSDCORB) प्रस्तुत किया है जिसका तात्पर्य है नियोजन करना, संगठन करना, कर्मचारी नियुक्ति, निर्देशित करना, समन्वय करना, प्रतिवेदन प्रस्तुत करना तथा बजट तैयार करना।

- **नियोजन[Planning]**:

नियोजन का अर्थ है भावी लक्षित कार्य की रचना। इसमें वर्तमान दषाओं का मूल्यांकन, समाज की समस्याओं एवं आवश्यक ताओं का पहचान, लधु अथवा दीर्घ अवधि के आधार पर प्राप्त किये जाने वाले उद्देष्य एवं लक्ष्य तथा वाछित साध्यों की प्राप्ति के लिए क्रियान्वित किय जाने वाले कार्यक्रम का चित्रण निहित है।

भारत में योजना आयोग की स्थापना काल से तथा 1951 में नियोजन प्रक्रिया के आरम्भ से समाज कल्याण नीतियों, कार्यक्रमों एवं प्रशासकीय संयत्र पर यघपि आरम्भ में अधिक बल नही दिया गया, परन्तु उसके बाद क्रमिक पंचवर्षिय योजनाओं में उन्हें उचित वाछित स्थान दिया गया है। नियोजित विकास के गत चार दषकों के दौरान समाज कल्याण को योजना के एक घटक के रूप में महत्व प्राप्त हुआ हैए जैसा योजनाओं में परिलक्षित है। उदाहरणातया प्रथम योजना में राज्यों से लोगों के कल्याण हेतु सेवाएँ प्रदान करने के लिए बढ़ती हुई योजना का आह्वान किया गया है। दूसरी पंचवर्षिय योजना में समाज के पीड़ित वर्गो को समाज सेवा प्रदान करने की धीमी गति के कारणों पर ध्यान दिया गया। तीसरी योजना में महिला एवं बाल देखभाल, सामाजिक सुरक्षा, विकलांग सहायता तथा स्वयंसेवी संगठनों को सहायता अनुदान पर बल दिया गया। चतुर्थ योजना में निराश्रित बच्चों की आवश्यक ताओं को बल मिला। पाँचवी योजना में कल्याण एवं विकास सेवाओं के उचित समेकन को लक्ष्य बनाया गया। छठी योजना में समाज कल्याण के आकारचित्र के अन्दर बाल कल्याण को उच्च प्राथमिकता दी गई सातवीं योजना में समाज कल्याण कार्यक्रमों को इस प्रकार से आकार दिया गया ताकि वे मानव संचालन विकास की दिशा में निर्देशित कार्यक्रमों के पूरक बने। आठवी पंचवर्षीय योजना में, प्रत्याषा है, वर्तमान कल्याण कार्यक्रमों का विस्तार तथा नये कार्यक्रमों को सम्मिलित किया जायेगा।

नियोजन एक बौद्धिक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य कार्यो को व्यवस्थित ढ़ग से सम्पादित करने की रूपरेखा तैयार करना होता है। यह रूप रेखा पूर्व उपलब्ध तथ्यों के आधार पर भविष्य के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर तैयार की जाती है। बिना विस्तृत नियोजन के कार्यो को ठीक प्रकार के पूरा करने में कठिनाई आती है। नियोजन का प्रमुख कार्य उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से पारिभाषित करना होता है। इसके पश्चात् इन लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नीति निर्धारित करनी होती है। तीसरा कदम इन तरीकों तथा साधनों की व्यवस्था करनी होती है। तदुंपरान्त उन ढ़गों तथा साधनों की व्यवस्था करनी होती है जिनके द्वारा नीतियों को कार्यान्वित कर लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। कार्य का निरन्तर मूल्यांकन भी करना होता है।

2. संगठन[Organisation]

संगठन से तात्पर्य किसी निष्चित उदेद्ष्यों हेतु मानवी कार्यक्रमों का सचेतन समेकन है। इसमें अन्तनिर्भर अंगों को क्रमबद्ध तौर पर इकट्ठा करके एक एकत्रित समष्टि का रूप दिया जाता है। भूतकाल में समाज कल्याण न्यूनाधिक एक

छितरायी एवं तदर्थ राहत क्रिया थी जिसका प्रशासन किसी व्यापक संगठनात्मक संरचनाओं के बिना किया जाता था। जो कुछ भी कार्य किया जाना होता था, उसका प्रबन्ध सरल, तदर्थ, अनौपचिरिक माध्यम से सामुदायिक एवं लाभ भोक्ताओं के स्तर पर ही हो जाता था। एक अन्य तत्व जो समाज कल्याण की अनौपचारिक एवं असंगठित प्रकृति का कारण बना, वह अशासकीय एवं स्वयंसेवी कार्य पर निर्भरता था। सरकारी प्रक्रियाएँ जो विषाल संगठनात्मक संरचना तथा भारी नौकरषाही का रूप ले लेती है, से भिन्न अशासकीय क्रिया समाज कल्याण का मुख्य आधार रही जो अपनी प्राकृति के कारण अत्याधिक औपचारिक संगठित संयत्र पर कम आश्रित थी। परन्तु समाज कल्याण कार्यक्रमों के विस्तार तथा प्रभावित व्यक्तियों की संख्या एवं व्यथित धनराशि की मात्रा के कारण संगठन अपरिहार्य हो गया है।

संगठन औपचारिक एवं अनौपचारिक हो सकता है। औपचारिक संगठन में सहकारी प्रयासों की नियोजित प्रणाली है जिसमें प्रत्येक भागीदार की निश्चित भूमिका, कर्तव्य एवं कार्य होते है। परन्तु कार्यरत व्यक्तियों में सद्‌भावना एवं पारस्परिक विश्वास की भावनाएँ विकसित करने हेतु अनौपचारिक सम्बन्ध समाज कल्याण कार्यक्रमों के सुचारू संचालन के लिए आवश्यक है।

संगठन के अन्तर्गत इसकी प्रभावी क्रियाशीलता के लिए कुछ सिद्धान्तों पर बल दिया जाता है। यह अपने सदस्यों के मध्य कार्य विभाजन करता है। यह विस्तृत प्रक्रियाओं के द्वारा मापक कार्यक्रमों की संस्थापना करता है, यह संचार प्रणाली की व्यवस्था करता है। इसकी पदोसोपानीय प्रक्रियायँ होती है जिससे सत्ता एवं दायित्व की रेखाएँ विभिन्न स्तरों के मध्य से शीर्ष तथा नीचे की ओर आती जाती है तथा आधार चौड़ा एवं शीर्ष पर एक अकेला अध्यक्ष होता है। इसमें आदेश की एकता होती है जिसका अर्थ है कि कोई भी व्यक्ति कर्मचारी एक से अधिक तात्कालिक वरिष्ठ से आदेश प्राप्त नही करेगा, ताकि दायित्व स्पष्ट रहे और भ्राँति उत्पन्न न हो।

समाज कल्याण का स्वरूप संगठन कल्याण मंत्रालय के संगठन में देखा जा सकता है। इसमें मंत्री इसका राजनीतिक अध्यक्ष तथा सचिव प्रशासकीय मुख्य अधिकारी है। विभिन्न स्कीमों के लिए विभिन्न प्रभाग है, केन्द्रिय स्तर पर अधीनस्थ संगठन तथा राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा संस्थान विकंलागों के लिए राष्ट्रीय आयोग एवं अल्पसंख्यक आयोग है। राज्यों एवं संघ क्षेत्रों के स्तरो पर समाज कल्याण विभाग का संगठन किया गया है। तथा केन्द्रीय एवं राज्य दोनों स्तरो पर समाज के विभिन्न वर्गो, यथा महिला, बालक, अनुसूचित जातियाँ एवं जनजातियाँ, भूतपूर्व सैनिकों के कल्याण हेतु निगमों की स्थापना की जाती है, स्वयंसेवी संगठनों में

भारतीय बाल कल्याण परिषद मुख्य संस्था है। कल्याण मंत्रालय कल्याणकारी क्रियाकलापों में मूल एवं मुख्य रूप संलग्न स्वयं सेवी संगठनों को संगठनात्मक सहायता देती है जिनका क्रियाक्षेत्र उनकी विभिन्न गतिविधियों के समन्वय हेतु केन्द्रीय कार्यालय की माँग करता है। स्थानीय स्तर पर कल्याणकारी सेवाओं का संगठन विदेषों में उनके प्रतिभागों की तुलना में कमजोर है। संगठन का कार्य बहुत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि संस्था के कार्यो का सम्पादन संगठन पर ही निर्भर होता है। भूमिकाओं तथा परिस्थितियों का निर्धारण किया जाता है। घटकों के बीच सम्बन्धों को पारिभाषित किया जाता है तथा इसी के साथ उत्तरदायित्वों को भी स्पष्ट किया जाता है। संस्था के लक्ष्यों को ध्यान में रखकर संगठन की रूपरेखा तैयार की जाती है

3.कर्मचारियों का चयन[Selection]

अच्छे संगठन की स्थानपा के बाद, प्रशासन की दक्षता एवं गुणवत्ता प्रशासन में सुप्रस्थापित कार्मिको की उपर्युक्तता से प्रभावित होती है। दुर्बल तौर पर संगठित प्रशासन को भी चलाया जा सकता है यदि इसका स्टाफ सुप्रशिक्षित बुद्धिमान कल्पनाशील एवं लगनशील हो। दूसरी ओर, एक सुनियोजित संगठन का कार्य असंतोष जनक हो सकता है। इस प्रकार स्टाफ शासकीय एवं अशासकीय दोनों प्रकार के संगठनों का अनिवार्य अंगभूत आधार है। भर्ती, चयन, नियुक्ति, वर्गीकरण, प्रशिक्षण, वेतनमान एवं अन्य सेवा शर्तो का निर्धारण, उत्प्रेरणा एवं मनोबल, पदोन्नति आधार एवं अनुशासन, सेवानिवृत्ति, संघ एवं समिति बनाने का अधिकार इन सब समस्याओं की उचित देख भाल आवश्यक है। जिससे कि कर्मचारी अपने कार्यो को सच्ची लगन से निष्पादन एवं संगठन का अच्छा चित्र प्रस्तुत कर सके। संस्था के कर्मचारियों का चयन प्रषासक का एक आवश्यक कार्य होता है क्योंकि इसी विशेशता पर संस्था के कार्यो का lEiknu निर्भर होता है। जिस प्रकार के कर्मचारी होते है उसी के अनुसार संस्था सेवायें प्रदान करती है। इस कार्य में निम्नलिखित बिन्दु महत्वपूर्ण होते है।

1. कर्मचारी चयन, पदोन्नति आदि से सम्बन्धित नीति स्पष्ट होनी चाहिए।
2. कर्मचारियों की षिकायतों का निपटारा शीघ्र किया जाना चाहिए।
3. निर्णय पर बल दिया जाना चाहिए तथा दबाव के प्रभाव से उसे बदला नही जाना चाहिए।
4. सभी कर्मचारियों के स्पष्ट कार्य होने चाहिए तथा उसका उत्तरदायित्व निष्चित होना चाहिए।

5. कर्मचारियों में सहयोग की भावना विकसित करने के निरन्तर प्रयत्न किये जाने चाहिए।

6. सम्प्रेषण द्विमुखी होना चाहिए अर्थात् प्रशासन तथा कर्मचारियों की और से विचारों का परस्पर आदान–प्रदान होना चाहिए।

4.निर्देशन [Direction]

निर्देशन से तात्पर्य है –संगठनों के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु आवश्यक निर्देश एवं दिशा निर्देश जारी करना तथा बाधाओं को दूर करना। कार्यक्रम के क्रियान्वन से सम्बन्ध निर्देशों में क्रियाविधि नियमों का भी उल्लेख होता है ताकि निर्धारित उदेद्ष्य की उपलब्धि संक्षम एवं सुगम ढ़ग से हो सके। क्रियाविधि नियमों में यह भी वर्णित किया जाता है कि अभिकरण की किसी विषिष्ट गतिविधि से सम्बन्धित किसी प्रार्थना अथवा जाँच–पड़ताल पर किस प्रकार कार्यवाही की जाए। समाज कल्याण प्रशासन में निर्देश अपरिधर्म है। क्योंकि ये लाभभोक्ताओं को कल्याण सेवाएँ प्रदान करने में संलग्न अधिकारियों को दिशा निर्देश तथा योग्य प्रार्थियों को कोई लाभ दिये जाने से पूर्व अनुपालित क्रियाविधि के बारे में जानकारी प्रदान करते है। परन्तु क्रियाविधि की कठोरता से अनुपालन लालफिता शाही को जन्म दे सकता है जिसमें जरूरतमंद व्यक्तियों को वाछिंत लाभ प्रदान करने में अनावश्यक देरी तथा परेशानी हो जाती है। समाज कल्याण प्रशासन के कार्मिकों द्वारा अपने दायित्व पर कोई निर्णय लेने से बचना तथा दायित्व दूसरे पर थोपना व्यक्तियों एवं समुदायों की प्रभावी सेवा को बाधित करने वाला दोष है जिसके विरूद्ध सुरक्षा की जानी आवश्यक है। संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कर्मचारियों को दिशा–निर्देश देना आवश्यक होता है। निर्देशन के निम्नलिखित उद्द्ेष्य हैः–

1. यह देखना कि कार्य नियमों तथा निर्देशों के अनुरूप हो रहा है।
2. कर्मचारियों की कार्य सम्पादन में सहायता प्रदान करना।
3. कर्मचरियों में हीन भावना एवं सहयोग की भावना बनाये रखना।
4. कार्य का स्तर बनाये रखना।
5. कार्यक्रम की कमियों से परिचित होना तथा उसको दूर करने का प्रयास करना।

5. समन्वय[Coopiration]

समन्वय का तात्पर्य एक सामान्य क्रिया, आन्दोलन या दषा को प्राप्त करने के लिए भिन्न–भिन्न अंगों में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना होता है। संस्था में समन्वय के दो महत्वपूर्ण कार्य है : उद्देश्यों तथा क्रियाओं में एक रूपता

स्थापित करना तथा किये जाने वाले कार्यो में एकता लाना लेकिन यह तभी सम्भव है जब संस्था का प्रत्येक सदस्य सामान्य दृष्टिकोण रखता हो।

प्रत्येक संगठन में कार्य विभाजन एवं विशिष्टिकरण होता है। इससे कर्मियों के विभिन्न कर्तव्य नियत कर दिए जाते है तथा उनसे प्रत्याषा की जाती है कि वे अपने सहकर्मियों के कार्य में कोई हस्तक्षेप न करे। इस प्रकार प्रत्येक संगठन में कर्मिकों के मध्य समूह भावना से कार्य करने तथा कार्यो के टकराव एवं दोहरेपन को दूर करने का प्रयास किया जाता है। कर्मचारियों में सहयोग एवं टीम वर्क को विश्वस्त करने के इस प्रबन्ध को समन्वय कहते है। इसका उद्देश्य सांमजस्य, कार्य की एकता एवं संघर्ष से बचाव को प्राप्त करना है। इसके उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए, मूने एवं रेले समन्वय को संगठन का प्रथम सिद्धान्त तथा अन्य सब सिद्धान्तों को इसके अधीन समझते है। क्योकि यह संगठन के सिद्धान्तों का यौगिक तौर पर प्रकटीकरण करता है। चार्ल्सवर्थ के अनुसार ''समन्वय का अर्थ है उपक्रम के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कई भागों को एक सुव्यवस्थित समग्रता में समेकन।

न्यूमैन के अनुसार ''समन्वय का अर्थ है प्रयासों का व्यवस्थित ढ़ग से मिलाना ताकि निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निशपदन कार्य की मात्रा तथा समय को ठीक ढ़ग से निर्देशित किया जा सके। समाज कल्याण में समन्वय का केन्द्रीय महत्व है क्योंकि समाज कल्याण कार्यक्रमों में अनेक मंत्रालय, विभाग एवं अभिकरण कार्यरत है जिनमें कार्य के टकराव एवं दोहरेपन के दोष पाये जाते है जिससे मानव प्रयास एवं संसाधनों का अपव्यय होता है। इस समय केन्द्रीय स्तर पर कल्याण सेवाओं में कार्यरत 6 मंत्रालय है तथा कल्याण प्रशासन के क्रियान्वन में विषयों की छिन्न भिन्नता, अनुदान देने वाले निकायों की बहुलता, संचार में देरी तथा सहयोगी प्रयासों के प्रति विमुखता अधिक दिखाई देती है। इसी प्रकार, राज्य स्तर पर विभिन्न राज्यों में सात में सत्रह तक विभाग कल्याणकारी मामलों में सम्बद्ध है एवं कल्याणकारी सेवाओं के कार्यक्रमों में उपागम की एकता, संगठन में समरूपता एवं क्रियान्विति में समन्वय का अभाव पाया जाता है। स्वयंसेवी संगठन भी कल्याणकारी सेवाओं में कार्यरत है। उनके मध्य तथा उनके एवं सरकारी विभागों के मध्य समन्वय की समस्याएँ जटिल से जटिलतर होती जा रही है, जैसे–जैसे सहायता अनुदानों में उदारता आने के कारण उनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही हैं।

विभिन्न मंत्रालयों, विभागों एवं स्वयंसेवी संगठनों के मध्य समन्वय को अर्न्तविभागीय एवं विभागांतर्गत सम्मेलनों, विभिन्न हित समूहों के गैर–सरकारी

प्रतिनिधियों को परामर्श हेतु सम्मिलित करके द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। अतः कल्याण मंत्रालय राज्य सरकारों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों के समाज कल्याण मंत्रियों तथा विभाग सचिवों का वार्षिक सम्मेलन समाज कल्याण के विविध मामलों एवं कार्यक्रमों पर विचार विमर्श एवं उनके प्रभावी क्रियान्वयन को आश्वस्त करने तथा दोहरेपन से बचने हेतु बुलाता है। संस्थागत अथवा संगठनात्मक विधियों, यथा अन्तर्विभागीय समितियों एवं समन्वय अधिकारियों, प्रक्रियाओं एवं विधियों के मानकीकरण, कार्यकलापों के विकेन्द्रीकरण आदि के द्वारा भी समन्वय प्राप्त किया जा सकता है। 1953 में स्थापित केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड जिसमें सरकारी अधिकारी तथा गैर–सरकारी समाजिक कार्यकर्ता सम्मिलित है, को समाज कल्याण कार्यक्रमों में कार्यरत सरकारी संगठनों एवं स्वयंसेवी संगठनों के मध्य उचित समन्वय प्राप्त करने का एक माध्यम बनाया गया है। राज्यीय समाज कल्याण परामर्शदात्री बोर्डो को भी राज्य सरकार एवं केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड के कार्यकलापों के मध्य अन्य कार्या सहित समन्वय लाने तथा दोहरेपन को दूर करने का कार्य सुर्पुद किया गया। परन्तु समन्वय हेतु इन संस्थागत प्रबन्धों के बावजूद भी सरकारी एवं स्वयंसेवी संगठनों के क्षेत्राधिकारों मे कल्याण कार्यक्रमों में टकराव एवं दोहराव के दोष पाये जाते है। सरकारी एवं स्वयंसेवी संगठनों के कार्यकलापों के क्षेत्रों का सुस्पष्ट सीमांकन, कल्याण सेवाओं की समेकित विकास नीति एवं प्रेरक नेतृत्व कल्याण सम्बन्धी उद्‌देश्यों की अधिकतम प्राप्ति हेतु उचित समन्वय विश्वस्त करने में काफी सहायक होगे।

6. प्रतिवेदन[Report Writing]

प्रतिवेदन का अर्थ है, वरिष्ट एवं अधिनस्थ अधिकारियों को गतिविधियों से सूचित रखना तथा निरीक्षण, अनुसंधान एवं अभिलेखों के माध्यम से तत्सम्बधी सूचना एकत्रित करना। प्रत्येक समाज कल्याण कार्यक्रम के कुछ लक्ष्य एवं उद्‌देश्य होते है। संगठन की सोपानात्मक प्रणाली में मुख्य कार्यकारी निचले स्तरों पर कार्य कर रहे कर्मचारियों की नीति, वित्तिय परिव्यय एवं निर्धारित उद्‌देश्य की प्राप्ति हेतु समय सीमा से अवगत कराता है अधीनस्थ कर्मचारी उच्च अधिकारियों को समय–समय पर मासिक, त्रैमासिक एवं वार्षिक, लक्ष्यों के सापेक्ष में प्राप्त उपलब्धि, व्ययित राशि, एवं सामने आयी समस्याओं, यदि कोई है, तथा इन समस्याओं के समाधान हेतु उनका मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए रिपोट भेजते है। विभिन्न मामलों के समाधान हेतु अभिकरण एवं अन्तर्भिकरण स्तर पर आयोजित सम्मलनों एवं विचार विमर्षो की सूचना भी भेजी जाती है। उच्च अधिकारी अधीनस्थ कार्यालयों का निरीक्षण उनके कार्यकलापों की जानकारी प्राप्त करने एवं अनियमितताओं को

पकड़ने तथा इनको भविष्य में दूर करने हेतु सुझाव देने के लिए समय–समय पर करते है। कभी–कभी किसी शिकायत की प्राप्ति पर समाज कल्याण अभिकरणों की गतिविधियों की जाँच पड़ताल करनी होती है जिसके निष्कर्षो से सम्बन्धित अधिकारियों को सूचित किया जाता है। कुछ कल्याण संगठन शोधकार्य भी करते हैं जिसके निष्कर्षो एवं सुझावों को नीतियों एवं कार्यक्रमों में संशोधन अथवा अन्य नयें कार्यक्रमों के निर्माण में प्रयोग हेतु प्रतिवेदन कर दिया जाता है।

7.रिपोटिंग [Reporting]: सभी समाज कल्याण एजेंन्सिया, बिना किसी अपवाद के सम्बन्धित मंत्रालय विभाग को अपना वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करते है जो राज्य के अध्यक्ष को विधानमंडल की सूचना हेतु अन्ततः भेज दी जाती है। विभिन्न प्रकार की रिपोर्टो के द्वारा जनता को कल्याण एजेन्सियों के क्रियाकलापों की सूचना मिल जाती है। इस प्रकार रिपोटिंग किसी भी समाज कल्याण प्रशासन का एक महत्वपूर्ण घटक है।प्रतिवेदन के माध्यम से तथ्यों को प्रस्तुत किया जाता है। इसमें एक निष्चित अवधि में किये गये कार्यो का सारांष लिखा जाता है एक निष्चित अवधि के आधार पर प्रतिवेदन तैयार किया जाता है। संस्था के कार्यो की प्रगति का मूल्यांकन करने की दृष्टि से प्रतिवेदन का विशेश महत्व है। संस्था में उपलब्ध आलेखों के आधार पर प्रतिवेदन तैयार किया जाता है।

8. वित्तीय प्रबन्ध[Budgeting]

वित्तीय प्रबन्ध बजट से अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा सार्वजनिक अभिकरण की वित्तिय नीति कर निर्माण, विधिकरण एवं क्रियान्वन किया जाता है। व्यक्तिवाद के युग में, बजट अनुमानित आय एवं व्यय का सधारण विवरण मात्र था। परन्तु आधुनिक कल्याण राज्य में सरकार के क्रियाकलापों में तेजी से वृद्धि हो रही है जो सामाजिक जीवन के सभी पक्षों को आवंटित करती है। सरकार अब सकारात्मक कार्यो के द्वारा नागरिकों के सामान्य कल्याण को उत्पन्न करने का एक अभिकरण है। अतएव बजट को अब एक प्रमुख प्रक्रिया समझा जाता है जिसके द्वारा जनसंसाधनों के प्रयोग को नियोजित एवं नियंत्रित किया जाता है। बजट निर्माण वित्तिय प्रबन्ध का एक प्रमुख घटक है जिसमें विनियोग अधिनियम, व्यव का कार्यकारिणी द्वारा निरीक्षण, लेखा एवं रिपोटिंग प्रणाली का नियंत्रण, कोष प्रबन्ध एवं लेखा परीक्षण सम्मिलित है। प्रशासक का कार्य प्रतिवर्ष वार्षिक बजट तैयार करना तथा उसे अनुमोदित करना होता है। संस्था के लक्ष्यों के अनुरूप ही बजट तैयार किया जाता है यह संस्था कि आय तथा व्यय का कथन होता है।

2.5 समाज कल्याण प्रशासन के सिद्धान्त

यद्यपि समाज कल्याण प्रशासन में किसी आधिकारिक अथवा सरकारी तौर पर संस्थापित प्रषासकीय मापदण्डों का अभाव है, तदापि निम्नलिखित सिद्धान्तों को समाज कल्याण व्यवहार एवं अनुभव होने के कारण सामान्य मान्यता दी गई है एवं जिनका पालन सुप्रषासित सामाजिक अभिकरणों द्वारा किया जाता है–

(i) समाज कल्याण अभिकरण के उद्देश्यों कार्यो का स्पष्ट रूप से वर्णन होना चाहिए।

(ii) इसका कार्यक्रम वास्तविक आवश्यक ताओं पर आधारित होना चाहिए, इसका कार्यक्षेत्र एवं भू–क्षेत्र उस सीमा तक जिसमें यह प्रभारी तौर पर कार्य कर सकती है सीमित होना चाहिए, यह समुदाय के संसाधनों, प्रतिरूपों एवं समाज कल्याण अवाश्यकताओं से सम्बन्धित होना चाहिए, यह स्थिर होने की अपेक्षा गतिमान होना चाहिए तथा इसे बदलती हुई आवश्यक ताओं को पूरा करने के लिए बदलते रहना चाहिए।

(iii) अभिकरण सुसंगठित होना चााहिए, नीति निर्माण एवं क्रियान्वन में स्पष्ट अन्तर होना चाहिए, आदेश की एकता, अर्थात् एक ही कार्यकारी अध्यक्ष द्वारा प्रशासकीय निदेशन, प्रशासन की सामान्य योजना अनुसार कार्यो का तर्कयुक्त विभाजन, सत्ता एवं दायित्व का स्पष्ट एवं निष्चित सममनुदेशन, तथा संगठन की भी इकाइयों एवं स्टाफ सदस्यों का प्रभारी समन्वय।

(iv) अभिकरण को उचित कार्मिक, नीतियों एवं अच्छी कार्यदषाओं के आधार पर कार्य करना चाहिए। कर्मचारियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर होनी चाहिए तथा उन्हें समुचित वेतन दिया जाना चाहिए। कर्मचारियों वर्ग अभिकरण की आवश्यक ताओं को पूरा करने के लिए मात्रा एवं गुण में पर्याप्त होना चाहिए।

(v) भिकरण मानक सेवा की भावना से ओतप्रोत होकर कार्य करे, इसे उन व्यक्तियों एवं उनकी आवश्यक ताओं की समुचित जानकारी होनी चाहिए जिनकी यह सेवा करना चाहता है। इसमें स्वतंत्रता, एकता एवं प्रजातंत्र की भावना भी होनी चाहिए।

(vi) अभिकरण से सम्बन्धित सभी में कार्य की ऐसी विधियों एवं मनोवृत्तियों विकसित होनी चाहिए जिससे उचित जन सम्पर्क का निमाण हो।

(vii) अभिकरण का वार्षिक बजट होना चाहिए। लेखा रखने की प्रणाली ठीक होनी चाहिए। एवं इसके लेखों का सुयोगय व्यावसायिक एजेंसी द्वारा जिसका अपना कोई हित नही है, परीक्षण होना चाहिए।

(viii) यह अपने रिकार्ड को ठीक प्रकार से सरल एवं विस्तार से रखे जो आवश्यक ता के समय सुगमता ये उपलब्ध हो सके।

(ix) इसकी लिपिकिय एवं अनुरक्षण सेवाएँ भी मात्रा एवं गुण में पर्याप्त तथा क्रियान्वयन में दक्ष होनी चाहिए।

(x) अभिकरण उपयुक्त अन्तराल पर स्वमृल्यांकन करे। गत वर्ष की अपनी सफलताओं एव असफलताओं का अपनी वर्तमान प्रस्थिति एवं कार्यक्रमों का, उद्देश्यों एवं संस्थापित मानदण्डों के अनुसार मापित अपने निष्पादन का, अपनी शक्ति एवं कमजोरियों का अपनी वर्तमान समस्याओं का तथा अपनी सेवा को बेहतर बनाने के लिए अगले उपायों का लेखा–जोखा लेने के लिए।

2.6 समाज कल्याण प्रशासन में अनुश्रवण व मूल्यांकन

समाज कल्याण प्रशासन के अनुश्रवण व मूल्यांकन से हमारा अभिप्राय है संस्था द्वारा अपने उद्देष्यों की पूर्ति के लिए अपनाई गई क्रियाविधियों की उपयोगिता और प्रभाविता की जाँच मूल्योकन मुख्यतः किसी संस्था के विगत अनुभवों का अध्ययन और आलोचना है। इसके अंतर्गत अनेक समूहों के बीच विकसित परस्पर सबंधों का का आलोचनात्मक विष्लेषण आता हैं। इसका उद्देश्य है परिणामों को मापना और संग्रहीत प्रतिमानों के आधार पर लक्ष्यों और पद्धतियों में परिवर्तन लाना। अनुश्रवण व मूल्यांकन संस्था में कार्य काने वाले व्यक्तियों और समूहों में निरंतर दृढ़ता उत्पन्न करने का साधन बनता है।

मूल्यांकन के कुछ कार्य निम्नलिखित है–

1. संस्था की प्रगति को मापना।
2. आयोजन और नीति निर्धारण के लिए आवश्यक आँकड़ों का संग्रहण,
3. सामजिक परिवर्त्तनों के संदर्भ में संस्था के कार्यक्रमों की प्रभावित की जाँच करना,
4. भावी गलतियों और कमजोरियों से बचने के लिए उपलब्धियों का मूल्यांकन करना।
5. इसका अध्ययन करना कि संस्था की नीति और उद्देष्य की पूर्ति किस सीमा तक हो रही है।
6. संस्था के कार्य में प्रयोग मे लाई जाने वाली तकनीकों और कुषलताओं में सुधार लाने के लिए उनका अध्ययन करना।
7. एक संस्था का दूसरी संस्थाओं के साथ संबंध को समझना और समाज कल्याण कार्यो में जन–सहयोग की माख का पता चलाना ताकि सेवाओं के

दोहराव को रोका जा सके,

8. यह देखना कि संस्था के कार्यक्रम का लाभ सेवार्थियों को पहुँच रहा है या नही।
9. संगृहीत आँकड़ों के आधार पर संस्था के आगामी कार्यक्रम का आयोजन करने के लिए मूल्यांकन उपयोगी है।
10. संस्था के कार्यक्रम में सुधार लाने के लिए उसके उद्देश्यों और कार्यक्रमों का व्यापक अध्ययन करना।

2.7 कार्मिक प्रबंध

स्वैच्छिक संस्थाओं में कार्मिक प्रबंध की स्थिति बहुत असंतोषजनक है। कार्यकर्त्ताओं में से केवल 18 प्रतिशतसमाज कार्य पर्यवेक्षक के कार्य में संलग्न है। शेष 82 प्रतिशतसमाज कार्य के अतिरिक्त कर्मचारी है– जैसे दफ्तर में कार्य करने वाले लिपिक तथा निम्नवर्गीय कर्मचारी। उपर्युक्त 82 प्रतिशतमें से 20 प्रतिशतस्नातकोत्तर और और 7 प्रतिशतस्नातक है। तीन–चौथाई के लगभग कार्मिक माध्यमिक स्तर तक भी शिक्षा प्राप्त नही है।

कर्मवारी वर्ग श्रेष्ठ प्रशासन का महत्वपूर्ण और आधुनिक उपकरण माना जाता है। समाज कार्य के क्षेत्र में भी, जो व्यवसायों की तरह एक व्यवसाय है, उसका महत्व कम नही है। समाज कार्य में प्रषिक्षित कार्यकत्ताओं की उतनी ही आवश्यक ता है जितनी की दूसरे व्यवसायों में। प्रत्येक समाज कार्य संस्था में सेवा के स्तर को ऊँचा रखने के लिए प्रशिक्षित और अनुभवी कार्यकत्ताओं को नियुक्ति करना आवश्यक ही नही, अनिवार्य है।

2.7.1 कार्मिक नीतिः

प्रत्येक संस्था की प्रबंध–समिति द्वारा कार्मिक–संबंधी सुदृढ़ और स्पष्ट बनाई जानी चाहिए। पश्चिमी देशों में संस्थाओं की कार्मिक–संबंधी नीति का विवरण संस्था की नियम–पुस्तिका में दिया जाता है। भारत में संस्थाओं को ऐसी नियम पुस्तिका बनानी चाहिए, जिसमें कार्मिक प्रबंध के नियम, पद्धति कर्मचारियों के प्रकार, नियुक्ति, वेतन, प्रशिक्षण, परस्पर संबंध आदि के विषय में विस्तृत ब्यौरा हो। इस पुस्तिका में कर्मचारियों के कार्य, उनके मूल्यांकन, परियोग्यताओं, कार्मिक के सहयोग आदि के विषय में चर्चा होनी चाहिए।

2.7.2 कार्मिकों की नियुक्ति

संस्था में आवश्यक कर्मचारियों की नियुक्ति संस्था की नीति के अनुसार करनी चाहिए। प्रत्येक कार्य के लिए न्यूनतम शिक्षा, प्रशिक्षण तथा व्यावहारिक अनुभव आदि

की शर्ते निर्धारित करनी चाहिए। योग्य कर्मचारियों के चुनाव के लिए समाचार पत्रों में पदों का विज्ञापन देना चाहिए। समाज कार्य विद्यालय तथा दूसरी सामाजिक संस्थाओं को भी खाली पदों के विषय में सूचित करके प्रार्थना पत्र मगँवाये जा सकते है। संस्था में कार्य करने वाले कर्मचारियों को भी इस खाली पदों के लिए आवेदन करने के लिए अनुमति होनी चाहिए।

समाज कार्य के पदों के लिए समाज कार्य में प्रशिक्षण एक आवश्यक शर्त होनी चाहिए। पदों के लिए प्रार्थियों का लिखित प्रार्थना–पत्र संस्था को भेजने चाहिए, जिसमें उनकी शिक्षा, प्रशिक्षण, पिछले अनुभवों, आयु आदि के विषय में विस्तृत विवरण हो। इन प्रार्थना पत्रों को जाँच के बाद चुने हुए योग्य प्रार्थियों को संस्था के द्वारा बनाई कार्मिक समिति के समक्ष साक्षात्कार के लिए बुलाना चाहिए। इस समिति में संस्था के अध्यक्ष, मंत्री तथा मुख्य कार्यपालक के अतिरिक्त समाज–कार्य के विशेश ज्ञ होने चाहिए। यदि प्राथमिक चुनाव कार्यपालक अथवा उप–समिति के द्वारा किया गया हो तो दो तीन चुने हुए प्रार्थियों के प्रार्थना पत्र उप–समिति को सिफारिष सहित संस्था की प्रबंध/कार्यकारी समिति के सामने अंतिम नियुक्ति के लिए रखने चाहिए। औपचारिक तौर पर, उन प्रार्थियों को, जिनकी नियुक्ति समिति के द्वारा नही की गई हैं इस विषय में सूचित कर देना चाहिए।

2.7.3 प्रशिक्षण, अभिनवीकरण तथा पुनश्चर्या

प्रत्येक नवनियुक्ति कर्मचारी को बातचीत द्वारा और संस्था की प्रकाशितपुस्तिकाओं और प्रतिवेदनों द्वारा संस्था के संगठनात्मक ढ़ाँचे और कार्यक्र के विषय में जानकारी देनी चाहिए। नए कार्यकर्त्ता को उस भवन में ले जाकर, जहाँ कार्यक्रम चल रहा हो, कार्यक्रम, कार्यकर्त्ताओं के दायित्व, काम के समय आदि के विषय में बताना चाहिए और दूसरे कार्यकत्ताओं से उनकी भेंट करवानी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक नवनियुक्ति कार्यकर्त्ता का, संस्था और उसको सौंपे गए काम के बारे में परिचय करवाकर अभिनवीकरण करवाना लाभदायक होगा। यह जानकारी, उसके लिए संस्था में अपना दायित्व भलीभाँति निभाने में सहायक सिद्ध होगी। संस्था के मुख्य अधिकारी के साथ बातचीत और दूसरे संबद्ध कार्यकत्ताओं के साथ बैंठके अभिनवीकरण के कार्य को सरल बनाएँगी। यही नही, संस्था के विभिन्न अनुभागों और दूसरी संस्थाओं के साथ मेलजोल और बैठकें करने से कर्मचारियों के व्यावसायिक विकास में सहायता मिलेगी।

2.7.4 प्रशिक्षण

पुराने जमाने में जरूरतमंदों की समस्याओं का समाधान स्वैच्छिक कार्यकत्ताओं द्वारा चलाई जोन वाली संस्थाएँ करती थी। अब यह तान लिया गया है कि

सामाजिक संस्थाओं में सेवार्थियों तक सेवाएँ पहुँचाने का कार्य केवल प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता को ही करना चाहिए। इसलिए यह कहा जा सकता है कि हमारे देया में समाज कार्य के व्यावसायिक प्रशिक्षण की आवश्यकता के प्रति जागरूकता हाल ही में उत्पन्न हुई है। अब यह विश्वास पुराना हो चुका है कि समाज कार्य के केवल समय, सद्‌भावना और त्याग की ही जरूरत है। अब स्वैच्छिक कार्यकर्त्ता भी इस बात को स्वीकार करने लगे है कि समाज कार्यो के लिए प्रशिक्षित कार्यत्ताओं होने चाहिए। संस्थाओं में प्रशिक्षित कार्यकत्ताओं की नियुक्ति की आवश्यक ता के प्रति जन–जाग्रति के साथ–साथ बदलती हुई परिस्थितियों के कारण ऐसे कार्यकत्ताओं की माँग बढ़ी है। तेजी से हुई सामजिक समस्याओं और सामाजिक विज्ञान की प्रगति के कारण समस्याओं का अध्ययन, विष्लेषण और समाधान वैज्ञानिक तरीके से करना अब आवश्यक हो गया है। इसलिए प्रषिक्षित कार्यकत्ताओं की माँग पैदा हो रही है।

भारत में समाज–कार्य का पहला महाविद्यालय सन् 1936 ई0 में बंबई में स्थापित हुआ। वर्तमान में बहुत से प्रदेशों में स्वैच्छिक संस्थाओं अथवा विश्वविद्यालयों द्वारा ऐसे महाविद्यालय स्थापित किये गये है। प्रत्येक वर्ष 500 के लगभग स्नातक इन प्रशिक्षण–संस्थाओं में तैयार किये जाते है। कई कारणों से स्वैच्छिक संस्थाएँ ऐसे प्रषिक्षित कार्यकत्ताओं की नियुक्ति नही कर पाई है। समाज कार्य के क्षेत्र में कार्यकत्ताओं की माँग को दृष्टिगत रखते हुए कई स्वैच्छिक संस्थाओं के अवर–स्नातक–स्तरपर समाज कार्य का प्रशिक्षण आरंभ किया है। दिल्ली, नागपुर, पूना और शांति–निकेतन ऐसी संस्थाएँ काम कर रही है।

इसके अतिरिक्त केन्द्रीय समाज–कल्याण बोर्ड द्वारा स्थापित किये गये प्रशिक्षण केन्द्रों में बाल सेविकाओं और मुख्य सेविकाओं को प्रशिक्षण दिया जा रहा है। भारतीय बाल कल्याण परिषद केन्द्रीय समाज कल्याण विभाग के अनुदान के द्वारा कई स्थानों पर बाल सेंविका प्रशिक्षण–केन्द्र चला रही है। नन्ही दुनिया, देहरादून, बालकन–जी–बारी, बंबई, बाल निकेतन संघ, इन्दौर, नूतन बाल षिक्षण–संघ, कोसबाद, दक्षिणामूर्ति, भावनगर आदि कई संस्थाओं में बालबाड़ी–कार्यकत्ताओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था है। लखनऊ और हैदराबाद में साक्षरता निकेतन ने प्रौढ़–साक्षरता की व्यवस्था की है। इस प्रकार, समाज कल्याण के अनेक कार्यकत्ताओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था स्वैच्छिक संस्थाओं ने ही की है।

संस्था को किस प्रकार के कार्यकत्ताओं की आवश्यक ता हैं, यह संस्था के कार्यो पर निर्भर है। यहाँ सभी प्रकार के प्रशिक्षणों के विषय में पूरा विवरण देना सम्भव नही है। अखिल भारतीस स्वैच्छिक, समाज कल्याण विभागों, केन्द्रीय समाज कल्याण

बोर्ड, जन सहयोग में प्रशिक्षण और अनुसंधान के केन्द्रीय संस्थान आदि संस्थाओं में प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता के विषय में जानकारी मिल सकती है। समाज कार्य के कार्यकत्ताओं के अतिरिक्त दूसरे कई कार्यकर्त्ता, जैसे दाई, मिडवाइफ, शिल्प–शिक्षक, नर्स परिवार नियोजन कार्यकर्त्ता आदि, संस्थाओं के लिए आवश्यक है। इन कार्यकत्ताओं के समाज की पद्धतियों में अभीनवीनीकरण की आवश्यक ता है।

2.7.5 सेवांतर्गत प्रशिक्षण

यद्यपि संस्थाओं की कार्य–पद्धतियों को सुधारने के लिए उनके कार्यकत्ताओं को सेवांतर्गत प्रशिक्षण देना एक आवश्यक कदम था, तथापि केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड ने, जिस पर इसकी जिम्मेदारी थी, ऐसा कोई कार्य आरम्भ नही किया। केन्द्रीय समाज कल्याण विभाग ने स्वैच्छिक संस्थाओं के कार्यकत्ताओं को समाज–कार्य में अभिनवीनीकरण प्रशिक्षण देने के लिए समाज–महाविद्यालयों और संस्थाओं को अनुदान देकर गोष्ठियों का आयोजन किया था।

जन सहयोग में अनुसंधान और प्रशिक्षण के केन्द्रीय संस्थान की स्थापना के पश्चात् कर्मचारियों के प्रशिक्षण का कार्य इस संस्थान को सौंपा गया है। संस्थान स्वैच्छिक संस्थाओं के कार्यकत्ताओं के लिए गोष्ठियाँ तथा सेवांतर्गत प्रशिक्षण का आयोजन करता है। संस्थाओं के कार्यपालको के लिए संस्थान के पाठ्यक्रमों का आयोजन किया। बाल–कल्याण संस्थाओं के पर्यवेक्षकों के भी लगभग चार प्रशिक्षण कार्यक्रम पूरे हो चुके है। स्वैच्छिक नेताओं के लिए भी गोष्ठियों का आयोजन किया गया है। युवा नेताओं के प्रशिक्षण–पाठ्यक्रमों की भी व्यवस्था संस्थान करता है। ऐसे प्रशिक्षण प्रत्येक प्रकार के कार्यकत्ताओं की आवश्यक ताओं को पूरा करने के लिए आयोजित किये जाते है। समाज कार्य महाविद्यालयों की सहायता से संस्थान की स्थानीय भाषाओं के माध्यम से क्षेत्रीय स्तर पर ऐसे ही पाठ्यक्रमों का आयोजन किया गया था। संस्थान स्वैच्छिक कार्य संस्थाओं के कार्यकत्ताओं के प्रशिक्षण के क्षेत्र में विद्यमान बहुत बड़ी को पाटने की दिशा में प्रयत्नशील है।

2.7.6 सेवा की शर्तेः

स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा अपने कार्यकत्ताओं के विकास के लिए संभवतः कोई योजना नही बनाई गई है। समान्यतया संस्थाओं में सेवा की शर्ते बहुत ही असंतोषजनक हैं, विशेश कर वेतनमान इतने अधिक नही है कि अच्छे कार्यकर्त्ता इन संस्थाओं में सेवा के लिए आगे आएँ। जो व्यक्ति इन संस्थाओं में भर्ती भी होते है, वे शीघ्र ही सेवामुक्त होने का प्रयत्न करते है। संस्थाओं में योग्य और अनुभवी कर्मचारियों के अभाव का मुख्य कारण उनकी सेवा की असंतोषजनक शर्ते है। इसके अतिरिक्त चूँकि स्वैच्छिक संस्थाओं में पर्यवेक्षक का कार्य स्वैच्छिक कार्यकर्त्ता करते

है, इसलिए भी बहुत से प्रशिक्षित स्वैच्छिक संस्थाओं में नौकरी के लिए प्रार्थी नही होते है।

इसलिए यह आवश्यक है कि स्वैच्छिक संस्थाओं में कार्मिक नीति के अंतर्गत कर्मचारियों की सेवा की शर्तो का विवरण होना चाहिए। इन शर्तो में वेतनमान तथा भत्ता, नियुक्ति, प्रोन्नति, काम का समय, अवकाश की शर्ते, सेवा–विमुक्ति दंड, परीविक्षा काल आदि सम्मिलित होने चाहिए। वे शर्ते संस्था की नियम पुस्तिका में दर्ज होनी चाहिए।

2.7.7 उपस्थिति एवं कार्यकाल

कई बार देखा गया है कि स्वैच्छिक संस्थाओं के कर्मचारियों के लिए काम की कोई अनिश्चित अवधि नही है। कही–कहीं तो वे 10–12 घंटे तक कार्य करते है और कहीं–कहीं 6 घंटे से भी कम। कर्मचारियों के काम के समय का निर्धारण कर देना चाहिए ताकि वे लगभग 8 घंटे तक कार्य कर सके, जिसमें एक घंटे का विश्राम भी सम्मिलित हो। क्षेत्रीय कार्यकत्ताओं के कार्य का समय उनके काम के स्वरूप पर निर्भर करता है। प्रत्येक अनुभाग अथवा शाखा में यदि आवश्यक हो तो संस्था के कर्मचारियों के लिए एक हाजिरी रजिस्टर भी रखना चाहिए, जिसमें काम पर पहुँचने के निर्धारित समय के अधिक से अधिक 10 मिनट पश्चात् तक कर्मचारी अपने हस्ताक्षर कर दे। यदि कोई कर्मचारी समय पर नही पहुँचता है तो उसके नाम के समाने अनुपस्थिति का चिह्न लगा देना चाहिए। तीन बार से अधिक समय पर न पहुँचने पर एक दिन की छुट्टी काट लेनी चाहिए। अनुपस्थिति का ब्यौरा रखने कि लिए और इस बात पर ध्यान रखने के लिए कि कर्मचारी काम पर निर्धारित समय पर पहुँचते है, संस्था के पर्यवेक्षक को हाजिरी रजिस्टर निर्धारित समय के 15 मिनट के बाद देख लेना चाहिए। जो कर्मचारी आदतन देर से आते हों, उन पर नजर रखनी चाहिए और उनकी कठिनाईयों को दूर करने में सहायता करनी चाहिए। कार्यकर्त्ता को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि उनका काम निर्धारित समय से आरंभ हो जाना चाहिए। हाजिरी–रजिस्टर एक आवश्यक अभिलेख है। इसके आधार पर ही कर्मचारियों के वेतन बिल बनते है। इसलिए इसके अनुरक्षण के लिए पर्यवेक्षक को विशेश ध्यान देना चाहिए।

2.7.8 मध्याह्न–अवकाशः

तीन–चार घंटे कार्य करने के पश्चात् कमचारियों को आधे घंटे के लगभग मध्याह्–अवकाश मिलना चाहिए तीन घंटे लगातार कार्य करने के उपरांत यह विश्राम अत्यावाष्यक है। इससे कार्यकर्त्ता की दक्षता बढ़ती है। पर्यवेक्षक को इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि सभी कर्मचारी इस समय का सदुपयोग करे।

2.7.9 अवकाश नियमः

संस्था को अवकाश नियम बनाने चाहिए, जिनकी जानकारी कर्मचारियों को होंनी चाहिए। यह कोई जरूरी नही है कि प्रत्येक संस्था सरकारी अवकाश–नियमों का पालन करे। किन्तु संस्था को कुछ सरल नियम बना ही लेने चाहिए, जिसमें अल्प और दीर्घकालीन अवकाश की व्यवस्था होनी चाहिए। कर्मचारियों के अवकाश की व्यवस्था के लिए निम्नलिखित मोटी–मोटी बातों का ध्यान रखना चाहिएः–

क) अवकाश

स्थानीय सरकार के द्वारा स्वीकृत अवकाश–सूची संस्थाओं को अपनानी चाहिए। इसके अतिरिक्त सप्ताह में किसी एक दिन संस्था को पूर्ण अवकाश रखना चाहिए और उससे एक दिन पहले अर्द्ध–अवकाश की व्यवस्था करनी चाहिए।

ख) आकस्मिक छुट्टी

अल्पावधि की बीमारी, निजी आवश्यक कार्य आदि के लिए प्रत्येक कर्मचारी को दस से पन्द्रह दिन तक की आकस्मिक छुट्टी मिलनी चाहिए। यह छुट्टी कर्मचारी की प्रार्थना पर स्वीकृत की जानी चाहिए ।

ग) अर्जित छुट्टी

आकस्मिक छुट्टी के अतिरिक्त, कर्मचारियों की लम्बी बीमारी, निजी काम, विश्राम और मंनोरजन के लिए प्रत्येक मास की सेवा पश्चात् एक दिन और वर्ष पूरा होने के बाद 20 दिनों की अर्जित छुट्टी मिलनी चाहिए। प्रायः तीन मास से अधिक छुट्टी जमा करने की अनुमति नही होनी चाहिए।

घ) विशेष अवकाश

कई संस्थाओं में एक मास के अनिवार्य वार्षिक अवकाश की व्यवस्था होती है। इन संस्थाओं में आकस्मिक तथा अर्जित अवकाश की दर कम कर दी जाती है। कई संस्थाओं में आकस्मिक अवकाश तथा अर्जित अवकाश के एवज में वेतन दिया जाता है। यदि कर्मचारी अपनी अर्जित अवकाश का उयोग नही करते है तो उसे उसके सामान्य दर के वेतन से उतने दिनों का वेतन दे दिया जाता है। कई संस्थाओं में विशेष अवकाश, बीमारी की छुट्टी, अध्ययन अवकाश अथवा अर्ध–वेतन अवकाश की व्यवस्था भी है।

यह देखा गया है कि हमारी सामाजिक संस्थाओं ने कर्मचारियों के अवकाश की ओर कोई विशेष ध्यान नही दिया है। यदि संस्था लंबे चौड़े अवकाश न बनाना चहाती हो तो मोटे तौर पर उसे वर्ष में कम से कम कुल मिलाकर एक मास के अवकाश की व्यवस्था तो कर ही देनी चाहिए। जिस कर्मचारी को अवकाश की सुविधा मिलेगी, उसकी दक्षता बढ़ेगी और वह अधिक कार्य करेगा।

2.7.10 कार्य की परिस्थितियाँ

कार्य की परिस्थितियों का प्रभाव कर्मचारियों के स्वास्थ्य, दक्षता और निष्पादन पर पड़ता है। प्रत्येक ऐसी संस्था को, जो कि वैतनिक कार्यकत्ताओं को नियुक्ति करती है अपने कर्मचारियों के लिए कार्य की समुचित परिस्थितियों की व्यवस्था करनी चाहिए। कार्य की परिस्थितियों में शामिल है– कार्य स्थल का पर्यावरण, जैसे प्रकाश, उचित तापमान, पानी, सफाई, शौचालय, आग से बचाव का प्रबंध, कैंटीन, विश्राम की सुविधा आदि। सेवाार्थियों के साथ भेंट करने और गुप्त वार्त्तालाप के लिए संस्था में व्यवस्था होनी चाहिए।

परिवीक्षा कालःनियुक्ति के बाद कर्मचारियों के लिए परिवीक्षा काल को संतोषजनक ढ़ग से पूरा करना अनिवार्य होता है। इस व्यवस्था ये कर्मचारी तथा दोनों को एक दूसरे के विषय में समुचित ज्ञान हो जाता है। यदि कोई कर्मचारी परिवीक्षा–अवधि में संतोषजनक कार्य करता है तो उसकी नौकरी पक्की कर दी जाती है। किन्तु, परिवीक्षा संबंधी नियम विभिन्न संस्थाओं में विभिन्न पदों के लिए विभिन्न है। संस्थाओं को चाहिए कि नौकरी की शर्ते निर्धारित करते समय वे निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखेः–

1. किन पदों के लिए परिवीक्षा काल की शर्त हो।
2. परिवीक्षा की अवधि कितनी हो।
3. इस अवधि को बढ़ाने की विधि।
4. परिवीक्षा काल में कर्मचारी के कार्य का मूल्यांकन और उसके पक्का करने की पद्धति।

नौकरी के स्वरूप और प्रकारों को ध्यान में रखकर परिवीक्षा काल तीन मास से दो वर्ष तक होता है। यह शर्त संस्था के उन कर्मचारियों पर भी लागू होनी, चाहिए जिनकों प्रोन्नति दी गई हो।

प्रोन्नति तथा पद पर पुष्टि :संस्था को प्रोन्नति तथा पुष्टि की शर्तो और विधि के विषय में नियम बनाने चाहिए, जिनकी जानकारी सब कर्मचारियों को हो। प्रोन्नति और पद पर पुष्टि शिक्षा स्तर, कार्य के अनुभव, कार्य निष्पादन के मूल्यांकन और अधिक दायित्व उठाने की क्षमता आदि के आधार पर होनी चाहिए। नये पदों को भरने के लिए संस्था में कार्य कर रहें कर्मचारी को प्रोन्नति के अवसर भी दिये जाने चाहिए।

वेतन तथा भत्तेःपदों के वेतनमान, उनके लिए निर्धारित शिक्षा स्तर कार्य के अनुभव की अवधि, दायित्व के स्वरूप आदि बातों को ध्यान में रखकर नियत करने चाहिए। प्रत्येक पद के लिए वेतनमान की न्यूनतम और अधिकतम सीमा होनी

चाहिए, जिसमें अच्छे निष्पादन अथवा कार्य के फलस्वरूप वेतन–वृद्धि की व्यवस्था हो। कर्मचारियों के संतोषजनक कार्य के फलस्वरूप उनकी नियुक्ति बनाये रखने और उसके वेतन में वृद्धि के लिए व्यवस्था होनी चाहिए। किसी पद के लिए वेतनमान निर्धारित करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

1. कर्मचारी के दायित्व की मात्रा
2. सेवा को समुदाय का लाभ
3. दायित्व निभाने के लिए कुशलता की मात्रा।
4. सरकारी तथा स्वैच्छिक संस्थाओं में ऐसे तुलनात्मक पदों के लिए नियत वेतनमान,
5. पद के लिए निर्धारित शिक्षा, प्रशिक्षण तथा पिछले अनुभव की शर्ते।

सरकारी संस्थाओं में कर्मचारियों को दिये जाने वाले महँगाई भत्ते, मकान किराया, प्रतिपूरक भत्ते आदि की दरों के अनुसार स्वैच्छिक संस्थाओं में भी भत्ते देने का प्रयत्न करना चाहिए। वेतन और भत्ते का भुगतान मास के समाप्त होने के एक सप्ताह के भीतर कर्मचारियों को कर देना चाहिए। कई संस्थाएँ कर्मचारियों को वेतन और भत्ता देने में विलम्ब कर देती है। जहाँ तक सम्भव हो वेतन और भत्तें के भुगतान में विलम्ब नही करना चाहिए। इसके अतिरिक्त भविष्य निधि और सेवा निवृत्ति उपदान की व्यवस्था करने का यत्न भी संस्था को करना चाहिए। ऐसी सुविधाएँ देने से कर्मचारियों मे कार्य के प्रति रूचि बनी रहेगी और वे संस्था संस्था की सेवा में टिके रहेगें।

दण्ड, सेवा–निवृत्ति तथा छँटनी :प्रायः यह देखने में आया है कि स्वैच्छिक संस्थाओं में कार्यकर्त्ता इसलिए काम नही करना चाहते है कि वहाँ सेवा सुरक्षा नही है। संस्था के लिए सुनिश्चितकार्यकत्ताओं की नियुक्ति के लिए यह जरूरी है कि संस्था में दंड़ देने, सेवा निवृत्ति, छटनी और त्याग पत्र देने के लिए नियम बनाये जायें। इन नियमों में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए:–

1. किस कर्मचारी को कौन अधिकारी, कब, कैसे और कितना दंड दे सकता है,
2. अपनी सेवा की शर्तो के विषय में वह किस अधिकारी से अपील कर सकता है।
3. उसे त्याग–पत्र किसको देना चाहिए और उसकी सूचना अवधि कितनी होनी चाहिए।
4. कर्मचारियों की छँटनी किन परिस्थितियों में हो सकती है और उसे मुआवजा किस दर से मिलना चाहिए,

5. कर्मचारी की किस आयु में सेवा–निवृत्ति होनी चाहिए और उसे क्या–क्या सुविधाएँ दी जानी चाहिए।

इन शर्तो का उल्लेख संस्था की नियम पुस्तिका में होना चाहिए ताकि प्रत्येक कर्मचारी को इसकी जानकारी प्राप्त हो सके।

मूल्यांकन और पर्यवेक्षण :कर्मचारियों के निष्पादन और उनके विकास के विषय में मूल्यांकन की व्यवस्था प्रत्येक संस्था को करनी चाहिए। कर्मचारियों को इस मूल्यांकन में भागीदार होना चाहिए। मूल्यांकन अभिलेख गुप्त रखना चाहिए। यदि कार्यकर्त्ता में कुछ भी कमी का अनुभव हो तो उसके विषय में उसे बता देना चाहिए। मूल्यांकन का अधिकार एक से अधिक व्यक्ति को होना चाहिए। मूल्यांकन और पर्यवेंक्षण, कार्यकर्त्ता के विकास और दायित्व को बेहतर तरीके से निभाने में उसके लिए सहायक सिद्ध होते है।

कार्मिक विधि :स्वैच्छिक संस्थाओं के नेताओं के विषय में प्रायः यह षिकायत की जाती है कि वे कार्मिको के काम की शर्तो के विषय में कोई कायदा–कानून प्रयोग में नही लाते और अपने व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों तथा पक्षपात के अनुसार कार्मिकों के विषय में सोंचते है। अब यह सम्भव नही है, क्योकि कार्मिकों के कार्य की शर्ते, वेतनमान, सेवा निवृत्ति, मुआवजा आदि के विषय में सरकार ने कानून बना दिये है। अब कार्मिकों के लिए श्रम–न्यायालयों के दरवाजे खुले है और वे संस्था से संतुष्ट न होने पर अपनी व्यथा निवारण के लिए कानून का सहारा ले सकते है। इसलिए यह आवश्यक है कि संस्थाओं को इन श्रम विधियों की जानकारी होनी चाहिए।

कार्मिक अभिलेख :संस्थाओं के लिए श्रम–विधियों का पालन करना अनिवार्य है। इसलिए उनकों चाहिए कि प्रत्येक कर्मचारी के विषय में कानून के अनुसार अभिलेख तैयार करे। कार्यकर्त्ता की व्यक्तिगत फाइल में उसका प्रार्थना पत्र, नियुक्ति पत्र, उसकी शिक्षा और पिछले अनुभवों के विषय में प्रमाण–पत्रों की प्रमाणित प्रतिलिपियाँ, उसका अवकाश अभिलेख और सम्बन्धित पत्र व्यवहार, कर्मचारियों के मूल्यांकन का प्रतिवेदन आदि सम्मिलित होने चाहिए। कार्मिक अभिलेख कर्मचारी के साथ विवाद की हालत में बहुत उपयोगी सिद्ध होगे।

सुनिश्चित और अनुभवी कर्मचारी प्राप्त करने के लिए प्रत्येक संस्था को कार्मिक नीति निर्धारण करनी चाहिए, जिसमें काम काज की ऐसी शर्ते सम्मिलित हो, जो कार्यकत्ताओं को आकर्षित करे। वेतन, भत्ते, काम का समय, नियुक्ति, दंड देने आदि की शर्ते उस क्षेत्र में कार्य करने वाली दूसरी संस्थाओं की नीति और शर्तो से कम नही होनी चाहिए ताकि संस्था के कर्मचारी दूसरी संस्थाओं के कर्मचारियों से तुलना करके हीन भावना का अनुभव न करे।

2.8 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में समाज कल्याण प्रशासन की अवधारणा, प्रकृति एवं कार्य के बारे में विस्तृत वर्णन किया गया है। इसी इकाई में समाज कल्याण प्रशासन के सिद्धांतो एवं समाज कल्याण प्रशासन में अनुश्रवण व मूल्यांकन के बारे में भी लिखा गया है।

2.9 अभ्यास प्रश्न

1. समाज कल्याण प्रशासन की अवधारणा एवं प्रकृति लिखिये ?
2. समाज कल्याण प्रशासन के कार्यों का विस्तृत वर्णन करिये ?
3. समाज कल्याण प्रशासन के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिये ?
4. समाज कल्याण प्रशासन में अनुश्रवण एवं मूल्यांकन पर निबंध लिखिये ?

2.10 पारिभाषिक शब्दावली

Planning	नियोजन
Organisation	संगठन
Evaluation	मूल्यांकन
Resources	संसाधन
Control	नियन्त्रण
Social Welfare behavior and Experience	समाज कल्याण व्यवहार एवं अनुभव
Self-evaluation	स्वमूल्यांकन
Monitoring	अनुश्रवण
Management Committee	प्रबन्धन समिति
Central Welfare Board	केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, डी० के०, भारत में समाज कल्याण प्रशासन : अवधारणा एवं विषय क्षेत्र, रॉयल बुक डिपो लखनऊ, वर्ष 2011.
2. सिंह, सुरेन्द्र, मिश्र, पी० डी०, समाज कार्य– इतिहास, दर्षन एवं प्रणालियाँ, रॉयल बुक कम्पनी लखनऊ, वर्ष 2006.
3. सिंह, सुरेन्द्र, वर्मा, आर० बी० एस०, भारत में समाज कार्य का क्षेत्र, रॉयल बुक कम्पनी लखनऊ, वर्ष 2009.

इकाई–3

समाज कल्याण प्रशासन का प्रबंधन

Management of Social Welfare Administration

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 परिचय
3.2 शासन स्तर पर समाज कल्याण प्रशासन
3.3 प्रशासनिक संगठन
3.4 समाज कल्याण प्रशासन एवं गैर सरकारी संस्थाऐं
3.5 सामुदायिक संगठन
3.6 सार संक्षेप
3.7 परिभाषिक शब्दावली
3.8 अभ्यास प्रश्न
संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

1. शासन स्तर पर समाज कल्याण प्रशासन के बारे में जान सकेंगे।
2. प्रशासनिक संगठन के बारे में लिख सकेंगे।
3. समाज कल्याण प्रशासन एवं गैर सरकारी संस्थाओं के बारे में जान सकेंगे।
4. सामुदायिक संगठन के बारे में जान सकेंगे।

3.1 परिचय

एक सभ्य समाज का यह दायित्व होता है कि वह प्रत्येक व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करे। यदि किसी प्रकार की कमी के कारण कोई व्यक्ति या समूह अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता तो उसके लिए समाज को आगे बढ़कर आना पड़ता है और उसके लिए आवश्यक सेवाओं की व्यवस्था

करनी पड़ती है। सामूहिक रूप से प्रदान की जाने वाली सभी सेवायें समाज की एक सावयवी पूर्णता के रूप में जीवित रहने की इच्छा को व्यक्त करती हैं और ये सभी लोगों द्वारा व्यक्त की गई इस इच्छा का भी प्रतिनिधित्व करती हैं कि कुछ व्यक्तियों को जीवित रहने में उनकी सहायता की जाए। इस प्रकार आवश्यकताओं को सामाजिक तथा वैयक्तिक रूप से समझा जा सकता है जो एक दूसरे पर निर्भर है तथा समाज के विभिन्न अंगों और उसकी सम्पूर्णता के पारस्परिक रूप से संबंधित स्वरूप में आवश्यक है।

3.2 शासन स्तर पर समाज कल्याण प्रशासन

प्रारम्भ से ही सरकारी संगठन में समाज कल्याण प्रशासन के दायित्व के रूप में समाज कल्याण विभाग केन्द्रीय सरकार में एक स्वतंत्र विभाग के रूप में या किसी संयुक्त विभाग के भाग के रूप में काम करता रहा है। कल्याणकारी ढाँचे के सृजन की दृष्टि से किए गए आरम्भिक प्रयासों में जून, 1964 में समाज प्रतिरक्षा के विभाग की स्थापना हुई ताकि शिक्षा, गृहकार्यो, स्वास्थ्य, श्रम, वाणिज्य और उद्योग मंत्रालयों में समाज कल्याण से सम्बन्धित विषयों की देख रेख की जा सके। जनवरी 1966 में समाज प्रतिरक्षाा विभाग को समाज कल्याण विभाग का नाम दियाा गया और अगस्त, 1979 में इसे स्वतंत्र मंत्रालय कर दर्जा दिया गया। इसका नाम शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय रखा गया। सन् 1984 में इस मंत्रालय का नाम समाज और महिला कल्याण रखा गया। 25 सितम्बर, 1985 से कल्याण मंत्रालय बना जिसके साथ अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन जातियों से सम्बन्धित विषय को जोड़ दिया गया। ये विषय गृह मंत्रालय तथा समाज और महिला कल्याण मंत्रालय से लिए गए थे। 6 जनवरी, 1986 से कल्याण मंत्रालय के साथ वक्फ का कार्य भी जोड़ दिया गया। महिला और बाल विकास को मानव संसाधन विकास के 29 मंत्रालय के अन्तर्गत गठित किया गया।

समय–समय पर अनेक समितियों, अध्ययन दलों, और अधिवेषनों के द्वारा केन्द्र में एक अलग विभाग या मंत्रालय की आवश्यकता पर बल दिया गया। उदाहरण के रूप में, भारतीय समाज कार्य अधिवेशन ने 1956 में तत्कालीन प्रधान मंत्री को समाज कल्याण के केन्द्रीय मंत्रालय की स्थापना के लिए ज्ञापन दिया था। उसमें कारण ये थे कि लोगों में समाज कल्याण विषयक आवश्यकताओं का समाधान समेंकित ढ़ग से होना चाहिए। उसमें एक प्रगतिशील सामाजिक दृष्टिकोण तथा दर्षन चाहिए। देशके सीमित संसाधनों का अधिकाधिक उपयोग करके मनुष्यों

को प्रशिक्षण दिया जाए, उन्हें वैज्ञानिक सामग्री दी जाए। योजना आयोग ने भी इस तरह के मंत्रालय की आवष्यकता पर जोर दिया था।

मैदानी परियोजना, योजना आयोग पर समिति के द्वारा 1958 में समाज कल्याण और पिछड़ी जातियों के कल्याण पर अध्ययन दल जो रेणुका राय समिति के रूप में था, उसने कहा था कि अनेक समाज कल्याण विषयों पर विविध मंत्रालयों ने विचार किया था। समाज कल्याण की योजनाओं और नीतियों को समेकित दृष्टि और दिशा का लाभ नही था। अतः इसके समाज कल्याण विभाग की स्थापना का अनुमोदन किया। इसने यह भी सुझाव दिया की जो कार्य युवा कल्याण से सम्बन्धित है, जो मनोरंजनात्मक सेवाएँ है, जो विकलागों की शिक्षा और उनका कल्याण है, शिक्षा मंत्रालय के द्वारा जो समाज कार्य शोध और प्रशिक्षण होता है, वह सब तथा वह जिसका सम्बन्ध भिक्षा और आवारागर्दी, युवा अपराध और सुरक्षा, सामाजिक और नैतिक स्वास्थ्य से है तथा गृह मंत्रालय के साथ सम्बन्धित संस्थाओं के सुधार गृहों से मुक्त किए गए लोगों के पुर्नवास के जो कार्य है—उन सब को समाज कल्याण के नये विभाग में स्थान्तरित कर देना चाहिए। अध्ययन दल ने यह भी सुढाव दिया था कि राष्ट्रीय समाज कल्याण नीति कर प्रषासन, प्रान्तीय सरकारों के द्वारा समाज कल्याण योजनाओं को सुधारना, सामाजिक विषयों पर शोध को बढ़ावा देना, कल्याण प्रशासकों के एक केन्द्रीय बल का गठन और प्रषासन।

भारत सरकार का प्रशासनिकतंत्र और उसके कार्य की प्रविधि का निरीक्षण करने के लिए प्रशासनिक सुधार समिति के द्वारा नियुक्त किये गये अध्ययन दल ने 1967 में अपने प्रतिवेदन में सुझाव दिया था के पुनर्वास के द्वारा कल्याण एक ही विभाग के अन्तर्गत रखा जाए और इस विभाग को पुनः श्रम और रोजगार विभाग के साथ जोड़ा जाए, रोजगार और समाज कल्याण मंत्रालय का गठन किया जा सके। इसने यह भी अनुमोदन किया था कि दानशील तथा धार्मिक संस्थाओं की विधि मंत्रालय से निकाल कर सूचित नये विभाग में स्थानान्तरित किया जाए जिससे इस क्षेत्र में जनभावना को विकसित करने में तथा सरकार के समाज कल्याण कार्यक्रमों पर अधिक प्रभाव डाला जा सकें। इस दल का यह भी विचार था कि समाज कल्याण को स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन से सम्बन्धित होने के कारण समाज कल्याण विभाग से निकलकर स्वास्थ्य परिनियोजन और क्षेत्रीय नियोजन के सुझाए गये मंत्रालय में जोड़ा जाए।

3.3 प्रशासनिक संगठन

कल्याण मंत्रालय में एक मंत्री और उपमंत्री रहता है। विभाग दो हिस्सों में बाँटा जाता है। एक में कल्याण सचिव मुख्य रहता हैं और दूसरे में महिला और शिशु कल्याण सचिव। कल्याण सचिव के साथ एक सहायक सचिव रहता हैं। कल्याण के विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखते हुए कल्याण विभाग सात खण्डो में विभक्त है। उनमें पाँच खण्डों के अध्यक्ष महासचिव है और दूसरे दो वित्तिय सलहाकार और एक निदेषक की अध्यक्षता में कार्य करते है। इन खण्डों का व्यापक विभाजन इस तरह– (1) वित्तिय खण्ड (2) विकलांग कल्याण खण्ड, (3) अल्पसंख्यक खण्ड, (4) अनुसूचित जाति विकास खण्ड, (5) समाज प्रति रक्षा और शिशु कल्याण खण्ड, (6) कबीला विकास खण्ड और (7) वक्फ खण्ड।

महिला और शिशु कल्याण विभाग के सचिव के साथ सहायक सचिव रहते है। प्रत्येक खण्ड में निदेशक, उपसचिव, अधिसचिव, सयुक्त निदेशक तथा अन्य अधिकारी रहते है ताकि मंत्रालय के विशिष्ट खण्डों से सम्बन्धित कार्यो को सँभाल सके। मंत्रालय के लोक सभा सदस्यों की एक परामर्श समिति भी होती है जो मंत्रालय से सम्बन्धित विषयों का पुनरीक्षण करते है। वे मंत्रालय को सामान्य कल्याण तथा वर्गगत दलों से सम्बन्धित विषयों पर परामर्श देते है।

मंत्रालयों को अपने कार्यो में कई अधीनस्थ संगठनों, राष्ट्रीय समितियों और राष्ट्रीय संस्थाओं में सहायता मिलती है जिन पर इसका प्रशासनिक नियन्त्रण होता है। ये राष्ट्रीय संस्थाएँ है : केन्द्रीय समाज कल्याण मण्डल, अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए राष्ट्रीय समिति, अल्पसंख्यक आयोग, समाज प्रतिरक्षा की राष्ट्रीय संस्था, जनसहयोग और शिशु विकास राष्ट्रीय संस्थान, विकलागों के लिए राष्ट्रीय संस्थान, पुनर्वास, प्रशिक्षण और शोध का राष्ट्रीय संस्थान, बहिरों के लिए अली यावर जंग जैसी राष्ट्रीय संस्थान, मनोरोगियों के लिए राष्ट्रीय संस्थान, अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनताजियों के लिए कमिश्नर, भाषाई अल्पसंख्यक कमिश्नर, कृत्रिम अंग निर्माण निगम ऑफ इण्डिया लिमिटेड, राष्ट्रीय अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों का वित्तिय निगम और जनजाति सहयोग, मार्केटिंग विकास संघ ऑफ इण्डिया लिमिटेड।

3.3.1 मंत्रालय के कार्यकलाप–

इस मंत्रालय को बहुत से विषय दिये गये है और तदनुसार समाज के विभिन्न वर्गो के कल्याण से जुड़े इसके कार्य भी विविधमुखी है, वे कार्य इस तरह से है–

1. **समाज के अनेक वर्गो का कल्याण**

मंत्रालय ने अनेक वर्षो से समाज के विभिन्न वर्गो के कल्याण के लिए अपना ध्यान केन्द्रित किया है तथा इसने अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अल्पसंख्यों, विकंलागों, स्त्रियों और बच्चों, युवको, वृद्धों, नशाखोरों के कल्याण कार्यो को हाथ में लिया है तथा और भी विषयों जैसे समाज प्रतिरक्षा, समाज सुरक्षा और समाज कल्याण को अपनाया है।

2. कार्यक्रमों की नीति, योजना और क्रियान्वयन

विकासात्मक कार्यो की अपेक्षा रखने वाले अनेक वर्गो के विकास कार्यक्रमों की नीति, योजना और उनका क्रियान्वयन करना–ये सब कार्य इस कल्याण मंत्रालय के द्वारा किये जाते है।

3. केन्द्रीय और केन्द्र द्वारा अपनायी योजनाओं का संचालन–

मंत्रालय केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा अपनाये कल्याण कार्यक्रमों का संचालन करता है। केन्द्रीय योजनाओं में ये शमिल है–महिलाओं के लिए क्रियात्मक साक्षरता, प्रौढ़ महिलाओं के शिक्षा षिविर, सामाजिक आर्थिक कार्यक्रम, कामकाजी महिलाओं के आवास गृह, अन्धों बहरों, मनोरोगियों और शरीर से विकलांगों के लिए राष्ट्रीय संस्थान, अपांगों के लिए स्वैच्छिक संगठनों को छात्रवृत्तियों, शोध, प्रशिक्षण, अनुदान राषि, कृत्रिम अंग निर्माण निगम, समाज प्रतिरक्षा राष्ट्रीय संस्थान, जन–सहयोग और शिशु विकास का राष्ट्रीय संस्थान, समाज शिक्षा कार्य तथा प्रशिक्षण, योजना शोध, पुनरीक्षण, शोध–कार्यक्रम, केन्द्रीय समाज कल्याण मण्डल के द्वारा स्वैच्छिक संस्थाओं को दी गई अनुदान राशि और इनकी क्षेत्रीय इकाइयों को मजबूत करना, अखिल भारतीय स्वैच्छिक संस्थाओं को अनुदान राशि, कामकाजी महिलाओं के बच्चों के लिए शिशु गृह देख रेख केन्द्र और नशाबन्दी के लिए शिक्षा और नशाखोरी की रोकथाम।

केन्द्र द्वारा संचालित योजनाओं में देखरेख और सुरक्षा की अपेक्षा रखने वाले बच्चों के लिए सेवाएँ, समेकित शिशु विकास सेवाएँ, निराश्रित महिलाओं और शिशु ओं का कलयाण, शारीरिक विकलांगों की समेकित शिक्षा, विकलागों की विशेष रोजगार दफ्तरों के माध्यम से नियुक्तियाँ, रोजगार के सामान्य कार्याकलापों में विशेष अधिकारियों की नियुक्तियाँ।

छठी योजना में (1980–85) केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा अनुमोदित योजना के लिए 150 करोड़ की धनराषि रखी गई जबकि प्रदेश /केन्द्रशासित प्रदेशों के लिए यह राशि, 122 करोड़ थी । मंत्रालय का कुल योजना बजट छठी योजना के 1396 करोड़ रूपये की अपेक्षा सातवीं (1985–90) में 2029.57 करोड़ रूपये हो गया था।

4 प्रदेश को मार्गदर्शन तथा निर्देश

समाज कल्याण के राट्रीय लक्ष्यों जैसे निर्धनता को कम करना, असमानता को कम करना, आत्मनिर्भरता को बढावा देना–की पूर्ति के लिए कल्याण मंत्रालय प्रदेशों को नीति निर्देश और मार्गदर्शन देता है।

5. योजना आयोग के साथ मेल

मंत्रालय योजना आयोग से मिलकर अपनी योजनाओं और राशि के आवंटन के विषय में बातचीत करता है, ताकि योजनाओं के लिए और प्रदेशों के लिए धनराषि पंचवर्षीय और वार्षिक योजनाओं के लिए तय की जाती है। साथ ही अवसर पाकर प्रान्तों में क्रियान्वित किये जा रहे कार्यक्रमोंा का पुनरीक्षण भी किया जाता है।

3.3.2 प्रदेश मंत्रियों/समाज कल्याण सचिवों के अधिवेषन बुलाना

मंत्रालय प्रदेश समाज कल्याण मंत्रियों तथा समाज कल्याण सचिवों के वार्षिक अधिवेषन बुलाता है ताकि देशके विभिन्न भागों में चल रहे कल्याण कार्यक्रमों की जानकारी मिल सके, उनकी जरूरतों एवं समस्याओं से परिचित हो सके, ताकि उनमें परिवर्तन तथा सुधार लाया जा सके जिससे सारे देशके लोगों का संतुलित विकास और कल्याण हो सके।

- **आयोगों, समितियों/अध्ययन दलों का गठन**

मंत्रालय समय–समय पर समितियों, अध्ययन दलों, कार्यकारी वर्गो इत्यादि, जिनमें शैक्षणिक तथा तकनीकि क्षेत्रों से गैर अधिकारी भी शामिल किये जाते है, गठन करते है, ताकि वे सामायिक नीतियों और कार्यक्रमों का पुनरीक्षण कर सके, उभरती हुई प्रवृत्तियों का अध्ययन कर सके और अनुमोदन कर सके। विगत वर्षो में इनमें से कुछ समितियाँ और कार्यशीलवर्ग पंचचर्षीय योजना (1980–85) में इस तरह थे–समाज कल्याण के कार्यशील वर्ग, शिशु श्रम के रोजगार पर कार्यशील वर्ग, भारत में महिलाओं पर राष्ट्रीय आयोग, स्वरोजगारी महिलाओं पर राष्ट्रीय आयोग, गैर–औनचारिक सैक्टर में महिलाओं पर राष्ट्रीय आयोग, नशा बन्दी और नषाखोरी पर केन्द्रीय समिति, अन्तमंत्रालयीय समिति जिसने बढे–बूढों के कल्याण के लिए अनेक पग उठाने की सिफारिश की और वृद्धों के लिए एक राष्ट्रीय नीति के मसौदे पर विचार करने का प्रस्ताव रखा। इस मंत्रालय ने कुछ और समितियों का गठन किया है–जैसे राट्रीय शिशु मण्डल, महिलाओं पर राट्रीय समिति, समाज कल्याण पर परामर्श समिति, पोषक आहार कार्यक्रमों पर केन्द्रीय क्रियान्वयन समिति तथा सहायता–प्राप्त कार्यक्रमों के लिए क्रियान्वयन समिति।

- **स्वैच्छिक संस्थाओं को सहायता**

भारत में कल्याण सेवाओं के विकास में स्वैच्छिक संस्थाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। उनके महत्वपूर्ण योगदान के कारण कल्याण मंत्रालय उन स्वैच्छिक संस्थाओं को जो कम लाभ पाने वाले वर्गो को सहायता देने में लगी हैं । 1987–1988 में स्वैच्छिक संस्थाओं को प्रदान की गई कुल आर्थिक सहायता 1186. 70 लाख रूपयें थी। मंत्रालय स्वैच्छिक संगठनों को संगठनात्मक सहायता देता है जिससे उन संगठनों को अनुदान राशि देकार स्वैच्छिक प्रयास को बढ़ाया जाए जो संगठन मुख्यता कल्याण कार्यो में लगे हुए हैं और जिनके विविध कार्यो में समन्वय लाने के लिए एक केन्द्रीय कार्यालस को खोलने की जरूरत है।

- **सूचना और सर्वजन शिक्षा कार्य**

मंत्रालय ने सूचना और एक सर्वजन शिक्षा सैल की स्थापना की है ताकि इसकी अनेक समाज कल्याण योजनाओं और कार्यक्रमों के प्रति जागृति पैदा की जा सके। जन जागरण पैदा की जाए और सामाजिक कुरीतियों जैसे, शराब, नशाखोरी, भीख, इत्यादि के प्रति स्वैच्छिक कार्य को उत्साहित किया जाए, विकलागों, बूढ़ों और कुष्ट रोगियों के प्रति सकारात्मक सामाजिक दृष्टिकोण को बढ़ाया जाय और समाज में उनकी उचित भूमिका को पहचाना जाय। इस सैल ने रेडियों कार्यक्रम करवायें है और मंत्रालयों के कार्यो **इनर इन्स्टिंक्ट** के प्रचार के लिए कई वृत्तचित्र निर्मित किये गये हैं। एक फिल्म जिसका शीर्षक वह बाल अपराधी पर बनी थी और मंत्रालय को 34 वे राष्ट्र फिल्मोत्सव पर उस पर ईनाम मिला था। वह पुरस्कार रजत कमल पुस्कार था, क्योंकि समाज चेतना पर सर्वोकृष्ट वृत्तचित्र था ।

- **प्रकाशन**

मंत्रालय ने समाज कल्याण आकड़ों पर 1974 से एक हस्त पुस्तिका छपवानी आरम्भ की थी जो समाज कल्याण कार्यक्रमों और नीतियों के आकड़ें प्रदान करती है। प्रकाशन का 1986 का संस्करण इस श्रृखला में चौथा प्रकाशन है जिसका शीर्षक **कम्पाइलेशन ऑफ वेलफेयर स्टैस्टिक्स** है यह एक संक्षिप्त रूप में मंत्रालय के कार्यक्रमों और उपलब्धियों को समेकित चित्र प्रदान करता है, मंत्रालय का एक और शानदार प्रकाशन है **इन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल वर्क इन इण्डिया** जिसका द्वितीय संस्करण 1987 में चार भागों में प्रकाशित हुआ था। यह व्यापक रूप में विविध विषयों का स्पर्श करता है जैसे नीति और विकास, जैसे नीति और विकास, समाज सेवाएँ, सामान्य समाज कल्याण, शिशु कल्याण महिला, वृद्धों और विकंलागों का कल्याण, पिछड़ी जातियों का कल्याण स्वैच्छिक प्रयास शोध और मूल्यांकन, योजनाओं और नीतियों, समाज कार्य शिक्षा और प्रशिक्षण, समाज प्रतिरक्षा, समाज कार्य पद्धतियाँ, समाज कल्याण प्रशासन, अन्तराष्ट्रीय समाज कल्याण इत्यादि। यह

पुस्तक एक संदर्भ–ग्रंथ के रूप में समाज कल्याण में रूचि रखने वाले सभी व्यक्तियों के लिए मूल्यावान् है।

- **शोध, मूल्यांकन और प्रमापीकरण**

मंत्रालय अपने क्षेत्रों में शोध और मूल्यांकन अध्ययन को हाथ में लेता है। इसमें सामाजिक समस्याओं को जानने में पर्याप्त सहायता मिलती है जिससे प्रभावी योजना, नीति निर्माण और समाज के कमजोर वर्गो के लिए कार्यक्रमों को लागू करने में सुविधा रहती है। इस तरह इकट्ठी की गई सूचना व्यापक प्रयोग के लिए दस्तावेजी हो जाती है।

केन्द्र के द्वारा अनुमोदित शोध एवं प्रशिक्षण की योजना के द्वारा मंत्रालय विष्वविद्यालयों, संगठनों और समाज विज्ञान शोध संस्थाओं को वित्तिय सहायता देता है, ताकि अनुसूचित जातियों के विकास के लिए कार्योन्मुखी शोध और मूल्यांकन अध्ययन की जा सके। प्राप्त सुझावों को मंत्रालय के द्वारा गठित शोध परामर्शन समिति के द्वारा जाँचा और पारित किया जाता है। इसी तरह जनजाति शोध संस्थाएँ भरपूर मात्रा में विकास प्रयास में शोध, मूल्यांकन, आँकड़ा संग्रह, प्रशिक्षण आदि के द्वारा सहायता देती है। ये संस्थाएँ जनजातियों के लिए उपयोजना दस्तावेज तैयार करके उनके काम धन्धों में उन्हें सहायता देती है। एक केन्द्रीय जनजाति शोध परामर्शन समिति इन संस्थाओं का पथप्रदर्शन करती है तथा इनके क्रियाकलापों का समन्वय करती है।

- **द्विपक्षीय समझौते का संचालन**

मंत्रालय राहत सहायता के लिए भारत सरकार के साथ जर्मनी, स्वीडन, स्विटजरलैण्ड, इग्लैण्ड और अमेरिका के सरकारों के साथ उपहार या अनुग्रह सामग्री पर द्विपक्षीय समझौतों का संचालन करता है ताकि निर्धन और जरूरतमंद लोगों को अनुग्रह सामग्री कनजल मिम की प्राप्ति हो सके। वे चीजे है अन्न, दूध का पाउडर, मक्खन से बने खाद्य, बहुबिधि खाद्य औषधियाँ, दवाईयाँ, अनेक विटामिन वाली गोलियाँ, अस्पताल की सामग्री जैसे एम्बुलेंस, सचल औषधालय कृषि सामग्री इत्यादि। मंत्रालय इन वस्तुओं के उचित स्थानों पर पहुँचाने के लिए देशके भीतर परिवहन व अन्य सम्बन्धित व्ययों को भी वहन करता है ।

अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशनों, सम्मेलनों और कार्यशलाओं में भाग लेना

मंत्रालय क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेषनों, सम्मेलनों, कार्यषालाओं और प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए अपने प्रतिनिधि भेजता है जैसा कि इसने वियाना में नशाखोरी और नशीली दवाईयों के विषय में हुए अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेषनों में, मनीला में नशाखोरी के रोकथाम के लिए सामुदायिक संसाधनों के उपयोग पर यू0 एन0

कार्यषाला में, वाशिंगटन संयुक्त राज्य अमेरिका में विकलंगता तथा पुनर्वास शोध के राष्ट्रीय संस्थान में, जो संयुक्त राज्य सहायता डी.एम.टी. परियोजना के अन्तर्गत तथा जापान में हुए पाँचवे समाज कल्याण एक्सपर्ट्स अध्ययन कार्यक्रमों में प्रतिनिधि भेजकर 1987–88 इत्यादि में किया था। कल्याण मंत्रालय की ऊपर बताई गई गतिविधियाँ समाज कल्याण के विभिन्न क्षेत्रों में इसकी व्यस्त सहभागिताा का पूर्णतया प्रतिनिधित्व नही करती। पिछले वर्षो में ये क्रियाएँ बढी है, क्योंकि मंत्रालय का समाज के विभिन्न मन्त्रालय की गतिविधियों में और अधिक वृद्धि होने की सम्भावना है, क्योंकि जनसंख्या बढ़ रही है, निर्धनता घट नही रही है, अपराध बढ़ रहे है, समाज की दुर्बल श्रेणियों पर आत्याचार बड़ रहे है, आतंकवाद बढ़ रहा है जिससे लोगों का एक स्थान में चले जाने की स्थितियाँ देश में बढी है।

3.4 समाज कल्याण प्रशासन एवं गैर सरकारी संस्थाएँ

वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर की लगभग समस्त अनुदान देने वाली संस्थायें शासकीय अविकरण के अतिरिक्त गैर–सरकारी अथवा स्वयंसेवी संस्थाओं के माध्यम से समाज कल्याण की योजनायें लागू किये जाने को प्राथमिकता प्रदान कर रही है। इससे स्वयं सेवी संस्थाओं का महत्व बढ़ गया है। स्वंय सेवी संस्था का सीधा संबंध समुदाय के साथ रहता है। और समुदाय के लिए संस्था के प्रत्येक सदस्य के साथ अलग–अलग संपर्क और लेन देन कठिन हो जाता है। इसलिए संस्था के साथ संपर्क और लेन–देन के कार्य को सरल और सहज बनाने के लिए यह जरूरी है कि संस्था को एक ईकाई माना जाय और संस्था की ओर से एक व्यक्ति ही संस्था का प्रतिनिधित्व करे। ऐसा तभी संभव होता है जब संस्था को वैधानिक व्यक्तित्व प्राप्त हो। इसके लिए संस्था को समुचित अधिनियम के अन्तर्गतप पंजीकृत कराना आवाष्यक होता है। वैधानिक आधार मिलने पर संस्था में व्यक्तित्व दायित्व का स्थान सामूहिक दायित्व ले लेता है। इस प्रकार संस्था के उद्देश्यों के अनुसार समुचित कानून के अन्तर्गत पंजीकृत संस्था को निगमित दर्जा मिल जाता है।

- **संस्थाओं के पंजीकरण से लाभ**

स्वैच्छिक कार्यकर्ता अपनी संस्था को पंजीकृत क्यों करवायें इससे उनके समुदाय को तथा दूसरे समुदाय को क्या लाभ है इसका ब्यौरा नीचे दिया जा रहा है।

1. पंजीकरण हो जाने पर संस्था के कार्यो के लिए कोर्द एक सदस्य उत्तरदायी नही होता, अपितु सब सदस्य संयुक्त रूप से उत्तरदायी होते है। समुदाय

के सदस्यों के लिए केवल एक ही व्यक्ति के साथ, जिसकी संस्था के विधान द्वारा जिम्मेदारी सौंपी जाती है, संपर्क और लेन–देन करना संभव हो जाता है।

2. संस्था (जो कि व्यक्तियों का समूह है) का स्थायी दर्जा मिल जाता है।

3. समाज कल्याण प्रशासन के विशेषज्ञ श्री एलवुड स्ट्रीट के अनुसार ''एक पूर्त्त अथवा मानवीय संस्था अपने बोर्ड के सदस्यों, वैतनिक कर्मचारियों, निर्वाचन–क्षेत्र आदि के संयुक्त चिंतन तथा सामूहिक कार्यवाही का लाभा उठा सकती है। संस्था के सदस्यों में कार्य का बँटवारा संभव हो जाता है और प्रत्येक सदस्य अपनी सामर्थ्य तथा योग्यता के अनुसार सेवा में अपना विशेष योग दे सकता है।

4. पंजीकरण द्वारा सेवाओं में दोहराव को रोककर प्रभावकारी तथा विशिष्ट सेवा की व्यवस्था संभंव हो जाती है। पंजीकरण संगठन आज की पेचीदा समस्याओं का समाधान करने में समर्थ होता है, जबकि एक व्यक्ति के लिए ऐसा संम्भव नही है।

5. किसी व्यक्ति विशेश के जीवन–मरण से सबद्ध न होने के कारण पंजीकृत संस्था विशेष सेवाओं का आयोजन उन्नत मनको की व्यवस्था और अविच्छिन्न तथा प्रगतिशील नीतियों का संचालन कर सकती है।

6. संस्था अपने पंजीकृत नाम किसी व्यक्ति के खिलाफ मुकदमा कर सकती है और कई व्यक्ति उस पर मुकदमा कर सकता है।

7. संस्था का पंजीकरण सदस्यों को वित्तिय और वैधानिक जिम्मेंदारियाँ से बचाता है।

8. पंजीकृत संस्था को जन सहयोग असानी से मिल सकता है और धन संग्रह में आसानी होती है, जो किसी एक व्यक्ति के लिए संभव नही है।

9. इससे संयुक्त रूप से कार्यवाही करना संभव हो जाता है। और सभी सदस्यों का कार्य में सहयोग कमल सकता है।

10. संस्थाओं के पंजीकरण द्वारा दानी समुदाय की दान राशि का सदुपयोग संभव हो जाता है।

- **पंजीकरण के प्रकार और विधियाँ**

संस्था किस अधिनियम की धाराओं के अंतर्गत पंजीकृत हो, इस बात का निर्णय, संस्था के उद्देश्य और कार्यक्रमों पर निर्भर है। वैसे तो पंजीकरण के अनेक अधिनियम है। प्रायः समाज कल्याण संस्थाएँ सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट के अंतर्गत पंजीकृत है। पंजीकरण संबंधी अधिनियमों को ब्यौरा आगे दिया जा रहा है।

क) संस्थाओं/सोसाइटियों के लिए : सोसाइटी रजिस्ट्रेशन ऐक्ट, 1980.

ख) सहकारी समितियों के लिए : कोआपरेटिव सोसाइटी रजिस्ट्रेशन ऐक्ट

ग) न्यासों (ट्रस्टों) के लिए : इण्डिया ट्रस्ट ऐक्ट, कंपनी ऐक्ट 1956,

ड) धमार्थ या दानार्थ न्यासों के लिए : बाम्बे चैरिटेबल के पंजीकरण की विधियों की चर्चा करे।

अब हम ऊपर दिये गये अधिनियमों के अन्तर्गत संस्थाओं के पंजीकरण की विधियों की चर्चा करे।

- **सोसाइटी का पंजीकरण–**

सोसाइटी रजिस्ट्रेशन ऐक्ट, 1860 के अंतर्गत निम्नलिखित संस्थाओं का पंजीकरण हो सकता है। जो कि मुख्यतः धमार्थ या दानार्थ/पूर्त्त तथा विज्ञान साहित्य और कला संबंधी कार्य करती है। धमार्थ या दानार्थ या पूर्त्त सोसाइटियाँ भारत की विभिन्न प्रेसडेंसियों में स्थापित सैनिक अनाथ निधियाँ या सोसाइटियाँ, विज्ञान साहित्य कलाओं की उन्नति के लिए स्थापित सोसाइटियाँ और शिक्षण, उपयोगी जानकारी के प्रसार, राजनीतिज्ञ शिक्षा के प्रसार, सदस्यों के उपयोग या संस्था के लिए संचालित पुस्तकालयों या वाचनालयों की स्थापना या अनुरक्षण और रंगचित्रों तथा अन्य कलाकृतियों के लोक संग्रहालयों और गैलरियों, प्राकृतिक इतिहास से संकलनों, यांत्रिक आविष्कारों और दार्षनिक शोध आदि के लिए स्थापित सोसाइटियाँ।

- **विधान और नियम**

पंजीकरण के संस्था का विधान और नियम तैयार करने के लिए निम्नलिखित मोटी–मोटी बातों का ध्यान रखना आवश्यक है–

संस्था का नामकरण–

संस्था के नामकरण के समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

1. नाम संस्था के उद्देश्य तथा क्रियाकलापों का सूचक हो,
2. नाम लम्बा न हो बल्कि संक्षिप्त हो ,
3. नाम सरल और सुगम हो ताकि उसके बोलने और लिखने में कोई कठिनाई न हो।
4. नाम ऐसा हो कि बिना कठिनाई के समझ में आ जायें,
5. नाम ऐसा हो, जो किसी और संस्था को नही दिया गया है,
6. संस्था के विधान की पहली धारा में संस्था का पूरा नाम पंजीकृत कार्यालय का पूरा पता होना चाहिए।

उद्देश्य–

विधान की दूसरी धारा में संस्था के उद्देश्यों का ब्यौरा देना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो इस धारा के दूसरे भाग में संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उसके कार्यक्रमों का ब्यौरा भी दिया जाता है। **सदस्यता–**संस्था के नियमों में उसकी सदस्यता के लिए निर्धारित योग्यताओं और अयोग्यताओं का वर्णन भी करना चाहिए। इसके लिए कुछ सुझाव नीचे दिये जा रहे है।

योग्यताओं में सम्मिलित की जाने योग्य बाते–

1. शुल्क की आदयगी,
2. न्यूनतम आयु
3. संस्था की नीति में विश्वास और कार्यक्रमों में अभिरूचि,

अयोग्यताओं में शुल्क न देना, मृत्यु दिवालिया हो जाना आदि सम्मिलित किये जा सकते है। सदस्यता कई प्रकार की हो सकती है, जैसे सामान्य सदस्य, आजीवन सदस्य, सक्रिय सदस्य, संस्थात्मक सदस्य आदि। संस्थात्मक सदस्य से अभिप्राय है एक संस्था द्वारा दूसरी संस्था की सदस्या प्राप्त करना। **अन्य धारायें–**संस्था की उपविधियों में अन्य निम्नलिखित धारायें होती है–

1. संस्था की कार्यकारी/प्रबंध समिति का संगठन, पदाधिकारियों उनकी योग्यताएँ चुनाव विधि, दायित्व आदि।
2. वित्तिय मामले–परिसंपति, बैंक लेखा, आय–व्यय का लेखा, लेखा परीक्षण आदि के लिए नियम।
3. विधान में संशोधन की विधि।
4. संस्था कि विघटन और उसकी परिसंपत्ति के निपटाव के लिए नियम।
5. पंजीकरण को सूचना देने, सामग्री भेजने की अवधि और दायित्व।

पंजीकरण की विधि–संस्था के विधान के पहले भाग में अंत में किन्ही सात या उससे अधिक सदस्यों के नाम, पते, व्यवसाय आदि का उल्लेख होना चाहिए और उनके सामने उनके हस्ताक्षर होने चाहिए। संस्था के विधान के दूसरे भाग अथवा उपविधियों को कोई भी तीन सदस्य उपने हस्ताक्षरों के द्वारा प्रमाणित कर सकते है। गठन के विषय में पारित संकल्प की प्रमाणित प्रति संलग्न कर पंजीयक के कार्यालय में निर्धारित शुल्क–राशि के साथ भेजनी चाहिए। यदि तब तक इस नाम से काई और संस्था पंजीकृत नही हुई होगी तो पंजीयक द्वारा संस्था के नाम के आगे पंजीकृत संख्या लिख दी जाएगी। इस पर संस्था के नाम एक पंजीपत्र जारी किया जायेगा जिसमें संस्था का नाम, पता, पंजीकृत संख्या, तिथि और पंजीयक के हस्ताक्षर तथा मुहर होगी। पंजीकरण के फलस्वरूप संस्था परिसंपति

उसके पंजीकृत नाम पर हो जाती ही है। संस्था इस नाम पर किसी के खिलाफ मुकदमा कर सकती है। और कोई इस नाम पर संस्था के खिलाफ मुकदमा कर सकता है। संस्था के सदस्यों का कोई व्यक्तिगत दायित्व नही होता है। संस्था के विषय में कोई भी व्यक्ति जानकारी प्राप्त कर सकता है या संस्था से संबंधित प्रलेख की प्रति आवश्यक शुल्क अदा करके प्राप्त कर सकता है।

पंजीकृत संस्था को केवल अपने निर्वाचित सदस्यों की सूची ही भेजनी होती है। इसके अतिरिक्त संस्था के दिन–प्रतिदिन के कार्य में पंजीयन का कोई हस्तक्षेप नही होता है। यह अधिनियम 112 वर्ष पहले बनाया गया था। संस्था को विधिवत आधार प्रदान करने के अतिरिक्त इस अधिनियम का और कोई कार्य नही है। अधिनियम में सुधार की आवश्यकता है ताकि पंजीयक का कुछ नियंत्रण रहें।

न्यासों का पंजीकरणः

इण्डियन ट्रस्ट ऐक्ट द्वारा केवल निजी न्यासों का पंजीकरण होता है। धमार्थ या दानार्थ/न्यास चैरिटेबल एण्ड रिलिजियस एण्डोमेट ऐक्ट के अन्तर्गत आते है। ऐसे न्यास पाँच प्रकार के है–

1. गरीबी हठाने के लिए,
2. शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए।
3. धार्मिक कार्यो को बढ़ावा देने के लिए।
4. चिकित्सा तथा राहत के लिए।
5. ऐसे अन्य न्यास, जिनका ध्येय समुदाय के लिए लाभप्रद है।

महाराष्ट्र में बंबई चैरिटेबल ट्रेस्ट ऐक्ट स्वैच्छिक संस्थाओं के पंजीकरण के लिए लागू किया गया है। वहाँ सोसाइटी ऐक्ट के अन्तर्गत पंजीकृत होने पर भी संस्थाओं पर ट्रस्ट ऐक्ट की धाराएँ लागू होती है। अधिनियम की धराओं के अनुसार प्रत्येक संस्था को अपने आय–व्यय का वार्षिक विवरण, प्रबंध समिति के सदस्यो के नाम अथवा पूर्त्त आयुक्त (चैरिटी कमिश्नर) द्वारा माँगी गई अन्य सूचना भेजनी पड़ती है। पूर्त्त आयुक्त संस्था का लेखा परीक्षण भी करवाता है। यदि संस्था प्रबंध और संगठन संचालन में अधिनियम की धाराओं का उल्लघंन करती है और आवश्यक सूचना भेजने से इनकार करती है तो आयुक्त उसका पंजीपत्र रद्द कर सकता है। ऐसी व्यवस्था सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट में नही है।

- **सहकारी समिति** : वैसे तो सहकारी समितियाँ सहकारिता के विकास के लिए ही पंजीकृत होती है, किन्तु कई समितियाँ समाज कल्याण का कार्य भी करती है। इन समितियों के लाभ का कुछ भाग सदस्यों और सार्वजनिक कल्याणकारी कार्यो पर व्यय किया जाता है। सहकारी समिति का पंजीकरण के पश्चात् वही विधिवत्

दर्जा मिलता है। जो कि कोआपरेटिव सोसाइटीज ऐक्ट के अतिरिक्त किसी अन्य अधिनियम की धाराओं के अंतर्गत पंजीकृत होने से संस्था को मिलता है। सहकारी समिति को उप विधियाँ सहकारी समितियों के अधिनियमों के अनुसार बनती है। समिति की बैठकों, निर्वाचन अथवा लेखा परीक्षण पर पंजीयक का नियंत्रण रहता है। सहकारी समितियों पर नियंत्रण सोसाइटीज ऐक्ट के अंतर्गत पंजीकृत संस्थाओं से कही अधिक होता है।

3.5 सामुदायिक संगठन

साधारणतया बोलबाल में सामुदायिक संगठन का अभिप्राय किसी समुदाय की आवश्यकताओं तथा साधनों के बीच समन्वय स्थापित कर समस्याओं का समाधान करने से है। सामुदायिक संगठन एक प्रक्रिया है। इस रूप में सामुदायिक संगठन का तात्पर्य किसी समुदाय या समूह के लोगों द्वारा आपस में मिलकर कल्याण कार्यो की योजना बनाना तथा इसके कार्यान्वन के लिए उपाय तथा साधनों को निश्चित करना है। किसी समुदाय से सम्बन्धित प्रक्रियाएँ अनेक प्रकार की हो सकती है। अतः समुदायिक संगठन की प्रक्रिया का अभिप्राय केवल उस प्रक्रिया से हैं जिसमें समुदाय की शक्ति और योग्यता का विकास किया जाता है।

स्ट्रप ने समुदायिक संगठन का अर्थ बतलाते हुए कहा हैः प्रमुख रूप से इस शब्द के कम से कम तीन अर्थ है प्रथम, इसका प्रयोग समाज कार्य की उन प्रत्यक्ष एवं समाविष्टि प्रक्रियाओं को प्रदर्शित करने की लिए किया जाता है जिसकी आवश्यकता समाज कल्याण के मौलिक उद्देश्यों के पूर्णतम प्रकटन के लिए होती है। द्वितीय – सामुदायिक संगठन का प्रयोग सम्पूर्ण समुदाय के कल्याण के लिए व्यावहारिक व्यक्तियों एवं सभ्य नागरिकों के द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली क्रियाओं का बोध कराने के लिए किया जाता है तृतीय–सामुदायिक संगठन का प्रयोग समाजशास्त्रियों द्वारा तथा समाज वैज्ञानिकों द्वारा समुदाय की संरचना का बोध कराने के लिए किया जाता है।

3.6 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में प्रशासन स्तर पर समाज कल्याण प्रशासन का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसी इकाई में प्रशासनिकसंगठन का भी वर्णन है। समाज कल्याण प्रशासन एवं सामुदायिक संगठन के बारे में भी विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

3.7 अभ्यास प्रश्न

1. शासन स्तर पर समाज कल्याण प्रशासन पर प्रकाश डालिये ?
2. प्रशासनिक संगठन पर निबंध लिखिये ?
3. समाज कल्याण प्रशासन एवं गैर सरकारी संस्थाओं का विस्तृत वर्णन करिये?

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

Social Welfare Department	समाज कल्याण विभाग
Schedule Cast	अनुसूचित जाति
Schedule Tribe	अनुसूचित जनजाति
Planning Commission	योजना आयोग
Ragistration	पंजीकरण
Legislation	विधान

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, डी० के०, भारत में समाज कल्याण प्रषासन : अवधारणा एवं विषय क्षेत्र, रॉयल बुक डिपो लखनऊ, वर्ष 2011.
2. सिंह, सुरेन्द्र, मिश्र, पी० डी०, समाज कार्य– इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियाँ, रॉयल बुक कम्पनी लखनऊ, वर्ष 2006.
3. सिंह, सुरेन्द्र, वर्मा, आर० बी० एस०, भारत में समाज कार्य का क्षेत्र, रॉयल बुक कम्पनी लखनऊ, वर्ष 2009.

इकाई–4

समाज कल्याण प्रशासन के प्रमुख अवयव

Components of Social Welfare Administration

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 परिचय

4.2 महिला कल्याण

4.3 बाल कल्याण

4.4 वृद्ध कल्याण

4.5 अनुसूचित जाति एवं जनजातियों का कल्याण

4.6 अन्य पिछड़े वर्गों का कल्याण

4.7 विकलांगों का कल्याण

4.8 श्रम कल्याण

4.9 सार संक्षेप

4.10 अभ्यास प्रश्न

4.11 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

महिला कल्याण, बाल कल्याण, वृद्ध कल्याण के बारे में जान सकेंगे।

अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के कल्याण, विकलांगों के कल्याण तथा श्रम कल्याण के बारे में लिख सकेंगे।

4.1 परिचय

केन्द्र और प्रान्तीय सरकारों तथा केन्द्र शासित प्रदेश ने महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए अनेक कार्यक्रम आरम्भ किये और महिला

दशक में उनकी सातत्यता को बनाये रखने के लिए, उनकी प्रगति और प्रसार के प्रयासों को तेज किया। बहुत सी प्रदेश की सरकारों ने आरम्भिक बाल सेवाओं के समेकित प्रदान की भूमिका को पहचानते हुए अपने प्रदेशों में केन्द्र द्वारा समर्थित समेकित शिशु विकास सेवाओं को उनके क्रियान्वयन के लिए लिया। इनका प्रभाव शिशुओं और मताओं इन सब के जीवन पर पड़ा है जिसका प्रमाण जन्म के समय शिशु का भार बढ़ना, अपोषक अहार की घटनाओं में कमी उतना, टीकाकरण में वृद्धि होना, शिशु मृत्यु दर का घटना तथा जन्म और मृत्यु दरों में घटाव है।

नारी मुक्ति आन्दोलन समाज में अपना उचित स्थान पाने के लिए महिलाएँ संघर्ष कर रही है।राज्य ने बाल कल्याण हेतु उपरोक्त प्रावधानों के अनुसरण में विभिान्न अधिनियम पारित किये है। इनमें सम्मिलित है–लड़कों एवं लड़कियों के विवाह के लिए न्यूनतम आय निर्धारण, नाबालिंग बच्चें के तथा उसकी सम्पत्ति के लिए संरक्षक की नियुक्ति हिन्दु अंगीकरण एवं भरण–पोषण कानून 1956, महिला एवं बाल संस्था (अनुमति) कानून 1960 राज्य बाल कानून, फैक्ट्री कानून 1948, प्लाटेशन लेबर एक्ट 1951, खान कानून 1952 दूकान एवं व्यवसाय कानून युवा न्याय कानून 1986 आदि।

वृद्धों की विकासीय क्षमता एवं मानवी आवष्यकताओं के समुचित रूप से समाधान को सुनिश्चितकरने हेतु राष्ट्रीय संयंत्र की स्थापना अथवा सशक्त किया जाये, वृद्धों के आर्थिक, सामाजिक, शारीरिक, जन सांख्यिकी, एवं रोग सम्बन्धी पक्षों पर अनुसंधान के क्षेत्र को व्यापक बनाया जाऐ, संस्थागत अथवा सामुदायिक देखभाल प्रणाली की स्थापना अथवा उसका विस्तार किया जाए ताकि वृद्ध व्यक्तियों को समुचित स्वास्थ्य एवं सामाजिक संवाएँ उपलब्ध हो सके, वृद्धों के संगठनों जो विकास कार्यक्रमों एवं नीति निर्माण में उनकी क्रियात्मक सहभागिता को सुनिश्चितकरते है, को प्रोत्साहित एवं उन्नत किया जाए, तथा नीति निर्माताओं, अन्वेषकों एवं कार्यकत्ताओं को वृद्ध विज्ञान में प्रशिक्षण दिया जाए ताकि उन्हें वृद्धता संबंधी मामलों का समुचित ज्ञान हो सकें

संविधान में अनुसूचित जनजातियों के हितों के संरक्षण एवं वर्द्धन हेतु विभिन्न सुरक्षाओं की व्यवस्था है। अनुच्छेद 19, 46, 164, 244, 330, 332, 334, 338, 349, 342, तथा संविधान की पाँचवी एवं छठी अनुसूचियाँ इस विय पर प्रासंगिक है। भारत सरकार कर दायित्व इस मामले में केवल उनके विकास के लिए वित्तिय व्यवस्था करने से ही समाप्त नही हो जाता अपितु यह राज्य सरकारों के सहयोग एवं परामर्ष से उनके शीघ्र एवं समन्वित विकास हेतु नीतियों एवं कार्यक्रमों का भी निर्णय करती है।

4.2 महिला कल्याण

संयुक्त राष्ट्र ने 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष और 1975–1985 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दशक घोषित किया गया था। हमारे देशमें प्रतिवर्ष मार्च आठ महिला दिवस के रूप में मनाया जाता है। ये सब वार्षिक और स्मारक दिवस इसलिए मनाये जाते है ताकि महिलाओं की उत्पेक्षाओं पर सरकारों और समाज का ध्यान आकर्षित किया जा सके और उनके उन अधिकारों तथा अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए आवश्यक प्रयास किये जा रहे। वे अधिकार हैं – समानता के मूलभूत अधिकार, पोषक आहार का सामान अधिकार, स्वास्थ्य, शिक्षा और अवसरों का अधिकार। ये सब जीने के अधिकार से शुरू होते है। महिलाओं और समुदाय के सर्वतोमुखी विकास के लिए ये सब तत्व आवश्यक है।

- **अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस**

विभाग प्रत्येक वर्ष आठ मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाता है और इस दिवस का उपयोग इन बातों के लिए करता है : वर्तमान विधेयकों में त्रृटियाँ, प्रशासनिक और न्यायिक अभिकरण को सुधारने के लिए क्रियान्वयन और रणनीति का खराब होना, वैधानिक साक्षरता तथा मुफत कानूनी सहायता के विकास के लिए पद्धतियाँ या नीतियाँ बनाना, महिलाओं के वैधानिक अधिकारों और वर्तमान सामाजिक विधेयकों के विषय में जागृति पैदा करना, शिक्षा देना तथा प्रसार करना और उपलब्ध सुविधाओं का उपयोग करना, और सामाजिक बुराईयों से निपटने के लिए रोकथाम के पग उठाना और प्रभावशाली पुर्नवास के लिए नीतियाँ बनाना जैसे के इसने 1987 में सामाजिक विधेयकों के क्रियान्वयन पर राष्ट्रीय परामर्ष को संगठित किया था।

- **महिलाओं पर राष्ट्रीय समिति :**

11 फरवरी 1988 को प्रधान मंत्री की अध्यक्षता में महिलाओं पर राष्ट्रीय समिति की स्थापना की गई ताकि महिला विषयक और वैधानिक मामलों में सलाह दी जा सके तथा महिलाओं से सम्बन्धित कार्यक्रमों और प्रशासनिक पगों पर परामर्श दिया जाये।

- **महिलाओं पर राष्ट्रीय कमीशन**

महिलाओं के अनेक संगठन दलबन्दी से ऊपर उठकर उनके अधिकारों की रक्षा के लिए किसी वैधानिक संस्था की स्थापना की माँग करते रहे है। महिलाओं के लिए राष्ट्रीय कमीशन की माँग 1976 में की गई थी जब महिलाओं के भारत में स्तर पर एक विस्तृत प्रतिवेदन प्रकाशित हुआ था। इस विषय में विस्तृत सहमति थी कि समाज में महिलाओं को उनका उचित स्थान देने के लिए सकारात्मक पग उठाये

जाने चाहिए। इसी काल में दुल्हन जलाने, दहेज मौतें, बालिका शिशु हत्या और सती जैसी धिनौनी प्रथाओं के उत्थान के प्रयास हुए जिससे महिलाओं की समस्या के समाधान की नई प्रगति प्राप्त हुई। राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने 1990 में बजट सत्र के अन्तिम दिन महिला बिल पर राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की।

❖ इन्दिरा महिला योजना

इन्दिरा महिला योजनाएँ सभी क्षेत्रों में ली गई महिला सभाओं के द्वारा गाँओं और मुहल्लों में लागू की जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों तथा शहरी क्षेत्रों की नगरपालिकाओं के द्वारा ये अधिशासित होती है। महिला सभाएँ अपनी साथिएँ पर महिला कार्यकारी स्वयं चुनती थी। ये महिलाएँ उपलब्ध योजनाओं के विषय में इलाके की महिलाओं को सूचना देने का काम करती थी। अगामी कुछ वर्षो में देश के प्रत्येक ग्राम पंचायत क्षेत्र या नगरपालिका के क्षेत्र में महिला और शिशु विकास केन्द्र खोले जाएँगे।

❖ महिला विकास निगम

1986.1987 में सभी प्रान्तों और केन्द्र शासित प्रदेशों में महिला विकास निगम स्थापित करने की योजना तैयार की गई। योजना का उद्देश्य महिलाओं में अधिक अच्छे रोजगार के साधन प्रदान करना है ताकि वे आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र और आत्म निर्भर बन सके। इसके अतिरिक्त यह योजना महिला रोजगार क्षे़त्र में मुख्य बधाओं को दूर करने में सहायता करती है। वास्तव में, महिला निगमों से यह आशा कि जाती है कि वे महिलाओं के आय को बढ़ाने के कार्यो में सहायक के रूप में कार्य करे। ये निगम एकल महिलाओं को वरीयता प्रदान करते हुए समाज के कमजोर पक्षों से सम्बद्ध महिलाओं और महिला वर्गो के लिए योजनाएँ बनाकर उन्हें आगे क्रियाशील करेगे। अनुमोदित निगमों के कार्यो में ये बाते शामिल होगी– रोजगार के सशक्त क्षेत्रों की पहचान करना, परियोजना निर्माण के लिए सहायता और अपेक्षित वित्तों को बढ़ावा देना, अनेक कामधन्धों में लगी कामकाजी महिलाओं के लिए कच्चे माल का प्रबन्ध करना और उत्पादनों के भूमण्डलीकरण के लिए प्रशिक्षण सुविधाएँ और आधारभूत ढॉचा प्रदान करना।

❖ महिलाओं के स्वरोजगार हेतु वित्तिय सहायता

महिलाओं के उद्यम को बढ़ावा देने के लिए, निगम अपने धनराशियों में से 3 प्रतिशत से 7 प्रतिशतब्याज की दर से ऋण देता है। पिछले दिनों यह महिलाओं को बैकों से ऋण दिलवा रहा है ताकि यह अपने धनराशियों को अन्य सामाजिक एवं आर्थिक कल्याण कार्यक्रमों के लिये प्रयुक्त कर सके। यदि बैंको से ऋण उपलब्ध नही होता तो यह सीमित मात्रा में ऋण देता है।

❖ **महिलाओं के प्रशिक्षण एवं रोजगार कार्यक्रम**

वित्तिय सहायता के प्रयोग के द्वारा महिलाओं को स्वरोजगार योग्य बनाने हेतु निगम अनेक व्यवसाओं में प्रशिक्षण एवं अभिमुखीकरण आयोजित करता है। स्वयं अथवा अन्य विभागों के साथ मिलकर। मुख्य व्यवसाय है–संकर गाय–पालन, मुर्गी पालन, बुनाई, साबुन बनाना, फल संरक्षण आदि। निगम ने हस्त कला केन्द्र भी स्थापित किया है जहाँ महिला पारम्परिक एवं गैर–पारम्परीय कला, कशीदाकारी, सिलाई एवं कटिंग का काम सिखती है।

❖ **विपणन सहायता**

विपणन उद्यमियों एवं महिला कारीगरों की सबसे बड़ी समस्या है। निगम बाजार नियतिगृहों एवं अन्य संगठनों से 'आदेश लेकर महिला कारीगरों को भुगतान पर सामान देने के लिए भेज देता है। यह प्रदशर्नियों का भी आयोजन करता है एवं बाजार, व्यापार मेलों, उद्यमियों को माल बेचे जाने की व्यवस्था करता हैं। कुछ बाजार में नियमित विक्रय पटल खोले गये है जैसे पंजाब लघु उद्योग निगम की फुलकारी जहाँ उत्पादन केन्द्रों में महिलाओं के द्वारा निर्मित सामान विक्रय किया जाता है।

❖ **प्रशिक्षण एवं गारण्टी मुद्रा रोजगार कार्यक्रम**

सभी महिला विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से स्वतंत्र आर्थिक क्रिया करने हेतु नही होती है। अतः निगम के अनेक सुनिश्चित एवं गारण्टीशुदा रोजगार कार्यक्रम अपने हाथ में लिए है।

❖ **दंगा प्रभावित महिलाओं के लिए परियोजना**

निगम ने ऐसी दंगा प्रभावित महिलाओं जो नवम्बर 1984 अथवा उसके बाद पंजाब में आकर निवास करने लगी, पुनवासित करने के लिए राज्य में विभिन्न स्थानों पर चार प्रशिक्षण एवं रोजगार परियोजनाएँ स्थापित की है। प्रशिक्षण समय 9 मास में 12 मास तक है तथा प्रशिक्षणार्थियों को 250 रूपये प्रति मास भत्ता तथा कच्चा माल दिया जाता है। निगम का प्रस्ताव है कि इन महिलाओं को प्रशिक्षण उपंरात उसके उत्पादन केन्द्रों में ही नियमित ठेके पर कार्य दिया जाए अथवा निजि व्यापार में उन्हें रोजबार दिलाया जाए।

❖ **दंगा–प्रभावित विधवाओं को वित्तिय सहायता**

राज्य सरकार ने प्रवासी विधवाओं को निगम के माध्यम से उन्हें क्षय आर्थिक इकाइयाँ लगने के योग्य बनाने हेतु ऋण देने का निर्णय लिया है। इस स्कीम के अधीन, 5000 रू0 तक ब्याज रहित ऋण दिया जाता है जिसमें 50 प्रतिशतसबसिडी

होगी, 5001 से 10,000 रू0 तक 40 प्रतिशतकम से कम 2500 रू0 परिदान 10001 से 20,000रू0 तक 25 प्रतिशतकम से कम 4000 रू0 परिदान होगी।

- **ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं एवं बच्चों का विकास**

यह कार्यक्रम हाल ही में ग्रामीण विकास विभाग के द्वारा राज्य सरकार को अन्तरित की गई है। भारत सरकार ने इस स्कीम को ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा से नीचे परिवारों के बच्चों एवं महिलाओं के विकास हेतु प्रयोजित की है। इसका लक्ष्य महिलाओं में आय–प्रदायक गति विधियों को उन्नत करना है एवं इसका प्रमुख ध्यान महिलाओं द्वारा निर्मित वस्तुओं की मार्केटिंग तथा उन्हें समूह में इकट्ठा करके आर्थिक कार्य कराने पर केन्द्रित है।

- **महिलाओं एवं बालिकाओं के लिए अल्पावास गृह**

इस योजना के अन्तर्गत महिलाओं एवं बालिकाओं के लिए अल्पावास गृह चलाने हेतु स्वैच्छिक संगठनों को अनुदान प्रदान किया जाता है। इसका उद्देश्य उन महिलाओं एवं बालिकाओं को संरक्षण एवं पुनर्वास सेवा प्रदान करना है, जो पारिवारिक कलह के कारण सामाजिक–आर्थिक समस्याओं, भावनात्मक अशांति, मानसिक समस्याओं, सामाजिक उत्पीड़न, शोषण का शिकार हों या जिन्हें वेश्यावृत्ति के लिए विवश किया गया हो। इस योजना के अन्तर्गत जरूरतमंद महिलाओं एवं बालिकाओं के लिए छह महीने से तीन वर्ष तक अस्थायी आश्रय और अन्य सेवाएं/संविधाएं प्रदान की जाती हैं।

- **परिवार परामर्श केन्द्र**

परिवार परामर्श केन्द्रों द्वारा परिवार या समाज में अत्याचारों की शिकार एवं अन्य सामाजिक समस्याओं, पारिवारिक विवादों और कलह से ग्रस्त महिलाओं को परामर्श, सहायता और पुनर्वास सेवा प्रदान की जाती है।

- **महिलाओं के लिए शिक्षा के संक्षिप्त पाठ्यक्रम**

केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा वर्ष 1858 में शिक्षा के संक्षिप्त पाठ्यक्रम की योजना प्रारम्भ की गई। इसका उद्देश्य उन वयस्क लड़कियों/महिलाओं की जरूरतों को पूरा करना है जो शिक्षा प्रणाली की मुख्यधारा में शामिल नहीं हो सकीं या जिन्होंने स्कूली पढ़ाई–लिखाई के अवसर प्रदान करना तथा हुनर–विकास एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण के माध्यम से उनकी क्षमता में विस्तार करना है। योजना में मुख्य रूप से यह सुनिश्चित किया जाता है कि पाठ्यक्रम की विषयवस्तु जरूरतों पर आधारित हो तथा स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप संशोधित की गई हो। साथ–साथ इसमें प्राथमिक/मिडिल/हाईस्कूल एंव मैट्रिक/माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रमों का भी ध्यान रखा गया हो। कार्यक्रम का लक्ष्य प्रौढ़ महिलाओं में

आत्म–विश्वास जगाना है ताकि वे सशक्त और समर्थ हो सकें। उम्मीदवारों का चयन एक समिति द्वारा किया जाता है जिसमें संस्था के अलावा उस क्षेत्र के स्थानीय सरकारी स्कूल के प्रधानाचार्य/प्रतिनिधि होंगे, जहां यह पाठ्यक्रम आयोजित किया जाना है। यह योजना ऐसे स्वैच्छिक संगठनों और शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से लागू की जाती है, जिनके पास महिलाओं के सशक्तीकरण और सामाजिक विकास एवं शिक्षा के क्षेत्र में जरूरी साधन–सुविधाएं और अनुभव हों।

- **परीक्षा प्राधिकरण**

उम्मीदवारों को स्कूल–बोर्ड परीक्षा में बैठना होगा। यह परीक्षा राज्य या राष्ट्रीय स्तर के ऐसे मान्यता–प्राप्त संस्था द्वारा आयोजित की जाएगी जो उत्तीर्ण उम्मीदवारों को डिप्लोमा/प्रमाणपत्र देने के लिए प्राधिकृत हों। राष्ट्रीय ओपन स्कूल संस्थान जैसी सरकारी एजेंसियों से अधिकृत/सम्बद्ध संस्थान/केन्द्र भी परीक्षा आयोजित कर सकते हैं। स्वैच्छिक संगठन को यह सुनिश्चित करना होगा कि लक्षित समूह के लिए प्राप्त अनुदान राशि आनुपातिक रूप से कम कर दी जाएगी। स्वैच्छिक संगठन को वर्ष की समाप्ति पर प्रगति रिपोर्ट देनी होगी तथा उत्तीण/अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों की संख्या तथा उनके अनुत्तीर्ण होने का कारण देना होगा। स्वैच्छिक संगठन से अपेक्षा की जाती है कि वे अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम दोबारा शुरू करने के लिए प्रेरित करे तथा इसके लिए नए अनुदान हेतु अवश्य आवेदन करे।

- **महिलाओं के लिए व्यावसायिक कार्यक्रम**

व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम की योजना का उद्देश्य महिलाओं को परम्परागत और गैर–परम्परागत व्यवसाय–क्षेत्रों (ट्रेड) में गुणात्मक प्रशिक्षण प्रदान करना तथा उनमें बाजार की जरूरतों के अनुरूप हुनर का विकास करना है ताकि वे रोजगार के लिए अधिक क्षमता के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकें। इस योजना का लक्ष्य स्व–रोजगार गतिविधियों को बढ़ाना तथा महिलाओं को वैतनिक रोजगार के लिए तैयार करना है।

- **ग्रामीण एवं निर्धन महिलाओं के लिए जागरूकता प्रसार परियोजना**

केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड महिलाओं की स्थिति, अधिकार और समस्याओं से सम्बन्धित मुद्दों पर समुदाय में जागरूकता लाने के लिए जागरूकता प्रसार परियोजना कार्यक्रम लागू कर रहा है। इसके प्रमुख उद्देश्य हैं– ग्रामीण एवं निर्धन महिलाओं की जरूरतों का पता लगाना, परिवार और समुदाय में निर्णय–प्रक्रिया में उनकी सक्रिय भागीदारी बढ़ाना। इनमें महिलाओं और बच्चों पर अत्याचार सहित विकास के मुद्दे शामिल हैं।

❖ **कामकाजी महिला होस्टल**

केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड कामकाजी महिलाओं को सुरक्षित होस्टल की सुविधाएं प्रदान करने में सक्षम बनाने के लिए संगठनों को अनुदान देता है। जिन संस्थाओं का भवन केवल सरकारी अनुदान से बना है, उन्हें कोई अनुदान नहीं दिया जाएगा। पांच वर्ष के बाद किसी भी संस्था को अनुदान नहीं दिया जाएगा।

❖ **राजीव गांधी राष्ट्रीय शिशुगृह स्कीम**

महिलाओं के लिए रोजगार के अवसरों तथा पारिवारिक आय में योगदान करने की आवश्यकता में वृद्धि के कारण अधिकाधिक महिलाएं रोजगार के क्षेत्र में आ रही है। संयुक्त परिवारों के टूटने तथा एकल परिवारों की संख्या में वृद्धि के कारण महिलाओं को कामकाज पर जाने के समय अपने छोटे बच्चों की गुणवत्तापूर्वक देखभाल रूपी सहायता कीक आवश्यकता होती है। शिशुगृह एवं दिवस देखभाल सेवाओं की आवश्यकता केवल कामकाजी माताओं को ही नहीं बल्कि निर्धन परिवारों की उन महिलाओं को भी होती है, जिन्हें अपने घर–बाहर के कार्य निपटाने के लिए बाल–देखभाल के कार्य से राहत चाहिए।

❖ **अभिनव योजनाएं**

यद्यपि महिलाओं और बच्चों के विकास के लिए केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की अनेक योजनाएं और कार्यक्रम हैं, तथापि महिलाओं और बच्चों से सम्बन्धित कई ऐसी समस्याएं हैं जो बोर्ड की मौजूदा योजनाओं और कार्यक्रमों के दायरे में नहीं आतीं। विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत स्वैच्छिक संगठन ऐसी समस्याएं लेकर आए जिनके लिए विशेष रूप से ध्यान दिए जाने और विशेष प्रयास किए जाने की जरूरत है। केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड ने महिलाओं और बच्चों के ऐसे समूहों को सहायता प्रदान करने के उद्‌देश्य से अभिनव योजना कार्यक्रम प्रारम्भ किया है, जिनकी जरूरतें मौजूदा योजनाओं से पूरी नहीं की जा सकतीं।इस योजना के अन्तर्गत संस्था से यह अपेक्षा की जाती है कि वह परियोजना तैयार करे तथा सम्बन्धित क्षेत्र, प्रस्तावित योजना की आवश्यकताओं, ध्यान दिए जाने वाले क्षेत्रों, कार्यप्रणाली, उपकरणों, बजट आदि का विवरण दे।

❖ **समेकित महिला सशक्तीकरण योजना**

समेकित महिला सशक्तीकरण योजना सक्किम सहित सभी पूर्वोत्तर राज्यों के लिए विशेष पैकेज कार्यक्रम है। यह योजना वर्ष 2006–07 में प्रारम्भ की गई। इस योजना का लक्ष्य समुदाय की समन्वित सहभागिता के माध्यम से उपलब्ध सेवाओं और संसाधनों के कन्वर्जन द्वारा क्षेत्र का विकास करना है।

राज्य बोर्ड की अध्यक्ष की अध्यक्षता में राज्य स्तरीय समिति का गठनकिया जाएगा जिसमें अन्य सरकारी विभागों, स्थानीय स्व–शासन, पंचायत, स्थानीय नेता एवं विश्वविद्यालय, सामाजिक कार्यकर्ताओं और प्रतिष्ठित स्वैच्छिक संगठनों का प्रतिनिधित्व होगा।

जनसंख्या, प्रतिव्यक्ति आय, साक्षरता दर, स्वास्थ्य और सफाई तथा अन्य मूलभूत सुविधाओं के आधार पर परियोजना–क्षेत्र का चयन किया जाएगा।

ऐसे प्रतिष्ठित स्वैच्छिक संगठन का चयन करना जिसे उस क्षेत्र में कार्य करने का पर्याप्त अनुभव हो।

❖ महिला परिषद

पहली पंचवर्षीय योजना के आरम्भ में शुरू की गयी कल्याण विस्तार परियोजना को स्वैच्छिक संस्थाओं को सौंप दिया गया और उनका नाम महिला परिषद रखा गया । महिला परिषदों का कार्यक्रम 19 प्रदेशों में 335 महिला परिषदों के द्वारा चलाया जा रहा है जो बहुमुखी कार्य कर रहे है, जैसे बालबाडी, दस्तकारी, मातृत्व अैर समाज शिक्षा यह यह कार्य 847 केन्द्रों में चल रहा है और 1989.90 में इसके लिए 101.65 लाख रूपये दिये गये । परिषद 75 प्रतिशतखर्च वहन करता है और शेष 25 प्रतिशतमहिला परिषदों या स्वैच्छिक संस्थाओं के द्वारा बराबर योगदान देकर वहन किया जाता है । प्राकृतिक आपदाओं, जैसे तूफान, बाढ या अकाल इत्यादि की स्थिति में बराबर की धनराषि की की देय में छूट दी जानी है। अब इस कार्यक्रम का विकेन्द्रीकरण हो गया है और इसको राज्य परिषदों के द्वारा प्रषासित किया जाता है !

❖ भूतपूर्व समेकित बाल कल्याण प्रदर्शन परियोजनाओं में बालवाडियॉः

यह कार्यक्रम चुने हुए सामुदायिक विकास खण्डों में 1964 में भारत सरकार के द्वारा प्रायोजित किया गया था । इन परियोजनाओं में बालवाडियॉ मनोरंजनात्क सुविधाएॅ, पोषक आहार और स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करती है । 1989.90 में 38 लाख रूपये की मण्डल के द्वारा सहायता पाकर लगभग 294 बालबाडियॉ ऐसी ग्यारह परियोजनाओं पर कार्य कर रही थी ।

❖ पूरक पोषक आहार कार्यक्रम

शिशुओं में अपोषक आहार के स्थान पर पोषक देने की आवश्यकता को अनुभव करके भारत सरकार ने 1970 में एक पूरक पोषक आहार देने की योजना आरम्भ की थी जिसका उददेश्य बालबाडियों और डे केयर केन्द्रों के माध्यम से कम आय के परिवारों के 3 से 5 वर्ष के बच्चों के लिए पूरक आहार देना था । इस योजना में स्वास्थ्य सुविधायें भी शामिल है जिसमें शिशु ओं के टीका लगाना, स्थानीय लोगों

के सहयोग से बच्चों की पर्यावरण से सम्बन्धित अच्छा स्वच्छ वातावरण प्रदान करना था । इस उददेष्य की पूर्ति के लिए 1989 – 90 से 230–50 लाख रूपयों का प्रावधान किया गया ।

- **शिशु गृह कार्यकर्ता प्रशिक्षण कार्यक्रम**

यह कार्यक्रम 1960 में शिशु गृह कार्यकर्ताओं को उचित दक्षता प्रदान करने के लिए आरम्भ किया गया था ताकि वे ये सेवायें अच्छी तरह दे सकें ।

- **अवकाशकालीन शिविर कार्यक्रम**

परिषद स्वैच्छिक संस्थाओं को अनुदान राशि प्रदान करता है ताकि 10–16 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए शिविर आयोजिक किये किये जायें । जनजातियों के बच्चों के लिए 9–16 की आयु की गयी है । ये बच्चे सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से पिछडी जातियों से होत है। साथ ही इनमें शारीरिक रूप से विकलांग बच्चों को भी अनुदान राशि दी जाती है । ये शिविर बच्चों को यह प्रशिक्षण देते है कि वे अनुशासित जीवन बितायें, समूह में रहें और टीम भावना रखें । नये वातावरण के साथ स्वयं ढालें ।

- **कार्यशीलमहिलाओं के लिए आवास–गृह**

परिषद कार्यशील महिलाओं के आवास–गृह चलाने के लिए स्वैच्छिक संगठनों को सहायता देता है ताकि वे संगठन / निरीक्षक के वेतन और मनोरंजन सुविधाओं पर होने वाले व्यय को वहन कर सकें। इसके साथ संस्थाओं के द्वारा दिये गये किराये और आवास गृहवासियों से प्राप्त किराये के प्रतिवर्ष 10000 रूपये तक के अधिकतम अन्तर को वहन करने की भी व्यवस्था है ।

- **ग्रामीण और गरीब स्त्रियों के लिए चेतना जागरण परियोजनायें**

महिलाओं में जागृति पैदा करने के लिए मण्डल 1987 – 88 से योजना को क्रियान्वित कर रहा है । ग्रामीण और निर्धन महिलाओं को परस्पर निकट आने, अपने अनुभव और विचारों का आदान – प्रदान करने और इस प्रक्रिया में अनली समस्याओं को समझने और उन्हें हल करने के तरीके बतलोने तथा उनकी आवष्यकताओं की पूर्ति करने के लिए यह योजना एक चंच प्रदान करती है। यह योजना महिलाओं कि जीवन स्तर के समबन्ध में स्थानीय क्षेत्रों की सामाजिक – आर्थिक स्थितियों का ज्ञान और विश्लेषण प्रस्तुत करता है तथा उन विषयों पर तकनीकी सहायता प्रदान करता है जिनका सम्बन्ध प्रासंगिक विधानों से लेकर स्वास्थ्य और स्वच्छता से तथा ऐसी नीति और कार्य योजना से है जिससे महिलाओं को विकास की ओर ले जाया जाए तथा अन्याय के खिलाफ संगठित किया जा सके ।

❖ **प्रौढ महिलाओं के लिए शिक्षा के संक्षिप्त विषय और व्यावसायिक प्रशिक्षण**:शिक्षा का संक्षिप्त विषय की योजना और महिलाओं के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम 1958 और 1975 को क्रमशः आरम्भ हुए थे। इनका मुख्य उददेश्य जरूरतमंद और योग्य महिलाओं को रोजगार के अवसर प्रदान करना था और परियोजनाओं को विशेषतया ग्रामीण क्षेत्रों में चलाने के लिए योग्य कार्यकर्ताओं का समूह तैयार करना था । इन दो कार्यक्रमों के अन्तर्गत स्वैच्छिक संस्थाओं को इन पाठ्यों को दो या तीन वर्षो की अवधि तक चलाने के लिए अनुदान राशि दी जाती है ।

4.2 बाल कल्याण

- **भारत में बाल कल्याण–संवैधानिक प्रावधानः** प्रत्येक वर्ष श्री जवाहरलाल नेहरू का जन्म दिन 14 नवम्बर को प्रत्येक वर्ष बाल दिवस के रूप में मनाया जाता हैं। बाल कल्याण बच्चों के प्रति राष्ट्रीय चिन्ता बच्चों के अधिकारों एवं उनके प्रति सरकार, समाज एवं परिवार के दायित्वों से सम्बन्धित एवं विधायी प्रावधानों से परिलक्षित हैं। संविधान के अनुच्छेद 15 में अंकित है कि 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को किसी कारखाने अथवा खान अथवा किसी अन्य खतरनाक रोजगार में नही लगाया जायेगा। राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों की धारा 39 में इस बात को सुनिश्चितकिया गया है कि आर्थिक आवष्यकता से बाध्य होकर बच्चों को उनकी आयु एवं शक्ति के आयोग किसी व्यवसाय में कार्य न करना पड़े। इसमें यह भी वर्णित है कि बच्चों को स्वतंत्रता की स्थितियों में स्वस्थ्य ढ़ग से विकसित होने के अवसर एवं सुविधायें दी जाएँ तथा बचपन एवं यौवन की शोषण एवं नैतिक एवं भौतिक परित्याग से रक्षा की जाए। धारा 45 के अंतर्गत राज्यों से 14 वर्ष के आयु के सभी बच्चों के लिए निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए कहा गया है।

- **राष्ट्रीय बाल नीतिः**भारत में नियोजन काल से तथा 1951 से योजना आयोग की स्थापना के साथ बाल कल्याण को अधिक ध्यान दिया जाना आरम्भ हुआ। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं की विषय वस्तु बच्चों के प्रति सरकार की नीति का महत्वपूर्ण दर्पण है। प्रथम चार पंचवर्षिय योजनाओं से प्राप्त अनुभव, स्वतंत्रता उपरांत अनेक विभिन्न समितियों यथा भारत सरकार के द्वारा 1959 में नियुक्ति स्वास्थ्य सर्वे एवं नियोजन समिति, केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा 1960 में स्थापित समाज कल्याण एवं पिछड़े वर्गो के कल्याण पर अध्ययन दल, समाज कल्याण विभाग द्वारा 1967 में नियुक्ति बाल कार्यक्रम–निर्माण समिति, शिक्षा आयोग

1964, शिक्षा मंत्रालय के द्वारा स्थापित पूर्व स्कूली बच्चों के बारे में अध्ययन समूह, की सिफारिषों, विकालांग बच्चों से सम्बन्धित स्वयं सेवी अभिकरणों एवं राष्ट्रीय समितियों की भूमिका, बाल अधिकारों की घोषणा (1959), अंतर्राश्ट्रीय एजेन्सियों यथा यूनिसेफ एवं डब्ल्यू0 एच0 ओ0 सभी ने राष्ट्रीय बाल नीति का आवश्यकता में योगदान दिया है। बाल कार्यक्रम निर्माण समिति की सिफारिशों (1968) तथा भारतीय बाम कल्याण परिषद द्वारा 1973 में बाल कल्याण के बारे में आठ सूत्री मसौदे की तैयारी ने इन प्रयासों को अधिक प्रोत्साहन प्रदान किया जिससे अन्ततः 1974 में राष्ट्रीय बाल नीति को अंगीकृत किया गया।

- **समेकित बाल विकास परियोजना:**समेकित बाल विकास सेवा परियोजना को देशमें 2 अक्टूबर 1975 को आरम्भ किया गया। इसके उद्‌देश्य है। 0–6 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों के पोषाहार तथा स्वास्थ्य में सुधार लाना, बच्चे के उचित मानसिक शारीरिक और सामाजिक विकास के लिए आधार तैयार करना, बाल–मृत्यु दर, रूग्णता, कुपोषण एवं स्कूल से हट जाने की घटनाओं को कम करना, बाल विकास को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न विभागों के बीच नीति और कार्यान्वयन का प्रभावी समन्वय स्थापित करना, और बच्चे की सामान्य स्वास्थ्य और पोषाहार सम्बन्धि जरूरतों की देखभाल के लिए उचित पोषाहार एवं स्वास्थ्य शिक्षा के माध्यम से माताओं की क्षमता बढ़ाना।

इस परियोजना में 6 वर्ष से कम आयु के बच्चे तथा गर्भवती और दूध पीलाने वाली मातायें एवं निर्धन परिवारों की 14–55 वर्ष की आयु वर्ग की मातायें सम्मिलित है। इसका लक्ष्य एक मुफ्त सेवाएँ यथा पूरक पोषाहार, रोग निरोधन, स्वास्थ्य परीक्षण, संदर्भ सेवाएँ और 3 से 6 वर्ष के बच्चों को अनौपचारिक स्कूल पूर्व शिक्षा और महिलाओं को पोषाहार एवं स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करता है।

समेकित बाल विकास सेवा क्षेत्रों में चिकित्सा एवं स्वास्थ्यककर्मियों के प्रशिक्षण और अभिमुखीकरण तथा समेकित बाल विकास सेवा क्षेत्रों में बच्चों और माताओं की स्वास्थ्य और पोषाहार स्थिति के सर्वेक्षण के लिए अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान और उसके माध्यम से देशमें कई मेडिकल कालेजों को शमिल किया गया है। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान और मेडिकल कालेजों के द्वारा प्रारम्भिक और बाद में किये गये सर्वेक्षण से पता चला है कि गैर आई0सी0डी0एस0 परियोजना क्षेत्रों की तुलना में आई0सी0डी0 एस0 परियोजना क्षेत्रों में स्कूल पूर्व बच्चों, गर्भवती महिलाओं और शिशु वती महिलाओं में पूरक पोषाहार, विटामिन 'ए' आयरन और फालिक एसिड तथा रोग निरोधन सेवाओं के उपयोग में पर्याप्त सुधार हुआ है।

समेकित बाल विकास सेवा योजना के सामायिक अवयवों के लाभों का अध्ययन करने और उनके प्रबोधन के लिए एक केन्द्रीय तकनीकी समिति का गठन किया गया है और राट्रीय जनसहयोग एवं बाल विकास संस्थान, नई दिल्ली में एक प्रबोधन और मूलयांकन प्रभाग भी खोला गया है। समेकित बाल विकास सेवा के सामायिक अवयकों अर्थात् स्वास्थ्य और पोषाहार, शिक्षा, स्कूलपूर्व शिक्षा और समुदाय सहभागिता का प्रबंधन और मूल्यांकन करने के लिए गृहविज्ञान कालेजों और सामाजिक कार्य जैसी ग्यारह तकनीकी संस्थाओं को शमिल किया गया है।

- **राष्ट्रीय बाल कल्याण पुरस्कार**ःराष्ट्रीय बाल कल्याण पुरस्कार बच्चों के लिए स्वैच्छिक कार्य को मान्यता दिये जाने के रूप में अन्तराष्ट्रीय बाल वर्ष 1979 में शुरू किया गया था। इस योजना में कई बार संसोधन के लिए 5 पुरस्कार और व्यक्तियों के लिए 3 पुरस्कार रखे गये है। प्रत्येक विजेता व्यक्ति को 30 हजार रूपयें नकद और एक प्रषस्ति पत्र और प्रत्येक विजेता संस्था को 2 लाख रूपये का नकद पुरस्कार और एक प्रषस्ति पत्र दिया जाता है।

- **संयुक्त राष्ट्र बाल कोशः** भारत 1949 से ही यूनिसेफ के साथ सहयोग कर रहा है। यह कार्सक्रम भारत में यूनिसेफ के सभी कार्यक्रमों से बड़ा कार्यक्रम से बड़ा कार्यक्रम है। भारत में यूनिसेफ के सामान्य संसाधनों के लिए अंशदान में उत्तरोत्तर वृद्धि की है। 1987–1988 के लिए भारत ने 280 लाख रूपये का अंशदान किया। इसके अतिरिक्त भारत नई दिल्ली स्थित यूनिसेफ के क्षेत्रीय कार्यालय के प्रशासनिकव्यय के लिए 18 लाख रूपये देता है।

- **राष्ट्रीय बाल बोर्ड** : राष्ट्रीय बाल नीति में, प्रधानमंत्री की अध्यक्षकता में एक राष्ट्रीय बाल बोर्ड बनाने की व्यवस्था है, जो बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न सेवाओं का नियोजन, करने समीक्षा और समन्वय करने के लिए एक मंच तैयार करने और इन पर ध्यान केन्द्रीत करने के लिए कार्य करेगा। पहिला बोर्ड 3 दिसम्बर 1974 को स्थापित किया गया था जिसे 27 मई, 1987 का पुर्नगठन किया जाता है।

- **राष्ट्रीय बाल कोष** : राष्ट्रीय बाल कोष की स्थापना, अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष (1979) में चैरिटेबिल एन्डोमेंट्स एक्ट 1890 (1890 का 6) के अन्तर्गत की गई थी। इसका उद्देश्य बाल कल्याण के कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिए राष्ट्रीय, राज्य एवं जिला स्तरीय स्वयंसेवी संगठनों को वित्तिय सहायता देना है। इसमें निराश्रित बच्चों के पुनर्वास के कार्यक्रम, अनुचित जाति, जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गो के बच्चों के कल्याण कार्यक्रमों को प्रथमिकता देना भी शामिल है। इस कोष का संचालन प्रबन्धकों के एक बोर्ड द्वारा किया जाता है जिसके अध्यक्ष मानव

संसाधन विकास मंत्री है। राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान के निदेशक इस कोष के सचिव कोषाध्यक्ष है। सहायता अनुदान कोष समिति द्वारा स्वयंसेवी संगठनों को सहायता अनुदान स्वीकृत किया जाता है।

- **राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान** :राष्ट्रीय जनसहयोग एवं बाल विकास संस्थान महिला एवं बाल विकास विभाग के प्रशासनिकतत्वाधान में एक स्वायत्त निकास है। इसकी स्थापना 1966 में योजना आयोग के प्रायोजन पर केन्द्रीय जन सहयोग अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान के रूप में हुई थी जिसे विकास राष्ट्रीय बाल नीति के अंगीकृत किये जाने के फलस्वरूप 4 जुलाई 1975 से राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान के रूप में मान्यता दी गइ है। इसके बंगलौर, गोहाटी, तथा लखनऊ में तीन क्षेत्रीय केन्द्र है। प्रत्येक केन्द्र का अध्यक्ष क्षेत्रीय निदेशक है जिसकी सहायता के लिए अन्य शैक्षिक एवं सचिवालीय कर्मियों नियुक्त किया गया है। संस्थान का प्रबन्ध एक सामान्य निकाय एवं कार्यकारी परिषद द्वारा किया जाता है। पूर्वोक्तनीति निर्माण का कार्य करती है जबकि उपरोक्त प्रबन्धकीय एवं प्रशासकीय मामलों का दायित्व संभालती है। बाल एवं महिला विकास विभाग का राज्य मंत्री सामान्य निकाय का अध्यक्ष तथा कार्यकारी परिषद का चैयरमैन है। कार्यकारी परिषद विभिन्न समितियों यथा शैक्षिक, प्रशासकीय, भवन, एवं चयन समिति की स्थापना करती है। निदेशक शैक्षिक कार्यक्रमों एवं संस्थान के प्रषासन का अध्यक्ष है तथा इसके ऊपर समग्र कार्यकारी नियंत्रण का प्रयोग करता है।

- **बाल विकास प्रभाग**:बाल विकास प्रभाग माता और बच्चे के विकास/कल्याण से सम्बंधी मामलों में सरकार के नीति सहायक के रूप में काम करता है। इस प्रभाग के मुख्य विषय है। मात् एवं बाल स्वास्थ्य, सूक्ष्म पोषक तत्व, प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल तथा शिक्षा, बाल्यावास्था की अपंगताएँ, बच्चों का सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य तथा बाल देखभाल सहायक सेवायें। इस प्रभाग में स्वास्थ्य, पोषाहार, शाला–पूर्व शिक्षा तथा मनो–सामाजिक विकास से सम्बन्धी एकक है। यह बाल विकास केन्द्र, बाल निर्देशन केन्द्र तथा किषोर निर्देशन सेवा केन्द्र नामक तीन क्षेत्राीय निर्देशन सेवायें भी संचालित करता है।

- **महिला विकास प्रभाग** :महिला विकास प्रभाग प्रशिक्षण, अनुसंधान, प्रलेखन, क्लीयरिंग हाउस, तथा प्रबंध सेवाओं के माध्यम से नीति निर्माण तथा वृहत स्तर पर महिला विकास से सम्बंधित राष्ट्रीय नीतियों और कार्यक्रमों को पूरा करने सम्बंधी गतिविधियाँ आयोजित करता है। इस समय यह प्रभाग विधि प्रवर्तन तंत्र, पंचायती

राज्य संस्थानों तथा महिला विकास निगमों की चुनी हुई महिला सदस्यों को महिलाओं सम्बंधी मुद्दों के प्रति सुग्राही बनाने के कार्य में लगा हुआ है।

- **महिला एवं बाल प्रलेखन केन्द्र (डी सी डब्ल्यू सी):**संस्थान को उत्कृष्ट केन्द्र बनाने के लिए चल रहे कार्यो के एक भाग के रूप में संस्थान के मौजूदा पुस्तकालय तथा बाल संसाधन केन्द्र को एक एकक के अन्तर्गत शामिल कर दिया गया है। जिसे महिला एवं बाल प्रलेखन केन्द्र का नाम दिया गया है। महिला एवं बाल प्रलेखन केन्द्र देशके भीतर तथा बाहर दोनो स्थानों के लिए महिलाओं तथा बच्चों हेतु एक विशेश प्रलेखन एवं संदर्भ केन्द्र है। यह केन्द्र अनुसंधान अध्ययनों तथा टीका सहित ग्रथं सूचियों के सार तैयार करता है, अनुसंधान की समीक्षा करता है, तथा व्यापक प्रसार के लिए बच्चों और महिलाओं से सबंधित संकलन प्रकाशितकरता है। इसके कम्प्यूटरीकृत डेटा बेस में प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों प्रकार के दस्तावेजों का समृद्ध संग्रह सूचीबद्ध है।

4.3 वृद्ध कल्याण

- **वृद्धों के कल्याण की आवश्यकता:**संयुक्त राष्ट्र संघ ने वृद्धों कें प्रति अपनी चिंता को व्यक्त करते हुए 1982 के दौरान वियना में आयोजित विष्व युद्ध महासभा में वृद्धो के लिए अंतर्राष्ट्रीय कार्य योजना अंगीकृत की थी। सयुक्त राष्ट्र के अनुमानों के अनुसार, वर्ष 2.25 में विष्व में वृद्धों की जनसंख्या 1.2 विलियन हो जायेगी, जिनमें से लगभग 71 प्रतिशतविकासषील प्रदेश ों में होगी। 1950 एव ं 2025 के मध्य विकासषील एवं विकसित प्रदेश ों में 80 वर्ष के ऊपर के वृद्धों की संख्या से दोगुनी हो जायेगी। क्योंकि महिलाओं की आयु पुरूषों से अधिक होती है, अतैव वृद्धो में महिलाओं का बाहुल्य होगा। यह सभी प्रवृत्तियों राष्ट्रीय सराकरों से मुख्य नीति संशोधन की माँग करती है।

- **हैल्पेज इंडिया** :हैल्पेज इंडिया की स्थापना इंग्लैड में 'हैल्प दी एजेड सोसाइटी' के प्रतिरूप पर 1978 में हुई थी। यह वृद्ध व्यक्तियों की देखभाल एवं उनके हितों के लिए निर्मित एक स्वयं सेवी संगठन है जो देशभर में कार्य करता है एवं जिसका मुख्यालय नई दिल्ली में है। इसके प्रमुख नगरों में 22 केन्द्र है। युवा पीड़ियों में वृद्धों की आवष्यकताओं के बारे में जागरूकता उत्पन्न करने के अतिरिक्त, यह अनेक आयोजित प्रतियोगिताएँ यथा चित्रकला प्रतियोगिता, वाद–विवाद प्रतियोगिता, एवं दादा समारोह आदि को भी संचालित करता है। हैल्पेज स्वयं ऐसी परियोजनाओं को परिचालित नही करता, यह प्रादेशिक वृद्धायु स्वयंसेवी संगठनों को तकनीकि एवं वित्तिय सहायता के द्वारा ऐसी परियोजनाओं के द्वारा एवं कार्यक्रमों के संचालन में सहायता करता है। हैल्पेज के द्वारा प्रबंधित

केवल चलती फिरती मैडीकेयर युनिट का संचालन है जो नई दिल्ली की झुग्गी झोपड़ियों में 150 से 200 रोगियों को प्रतिदिन मैडिकेयर सुविधाएँ प्रदान करती है।

भारत में हेल्पेज इंडिया की स्थापना 1980 में की गई थी जिसके लक्ष्य एवं उद्देश्य थे – 50 वर्ष से ऊपर के आयु के पुरूषों एवं स्त्रियों को निवासिय, आवासीय एवं संस्थागत सुविधाओं के माध्यम से शैक्षिक, मनोरंजनात्मक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक सेवाएँ प्रदान करना, मेडिकल सेवाओं, अर्द्धकालिक रोजगार आय वृद्धि हेतु, भ्रमणों एवं यात्राओं की व्यवस्था, करों, सम्पत्ति, पेंशनी एवं अन्य आर्थिक तथा वित्तिय आवष्यकताओं हेतु व्यवसायिक परामर्षीय सेवाओ की व्यवस्था करना, वृद्धों की समस्या के बारे में अध्ययन एवं अनुसंधान कराना, एवं अध्ययन केन्द्रों, गोष्टियों, मनोरंजनात्मक समारोहों, रैलियों आदि की व्यवस्था करना मथा एवं युवा पीढ़ियों के मध्य बेहतर सामाजिक एकीकरण एवं सद्भावना हेतु उचित वातावरण तैयार करना।

वृद्धायु आवास गृह : केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों, नगरपालिकाओं, परोपकारी समितियों, स्वयंसेवी संगठनों एवं अन्य वरिष्ठ नागरिक कल्याण समितियों ने वृद्ध एवं बुजुर्ग नागरिकों के लिए आवासीय सुविधाओं एवं अन्य सम्बद्ध आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए गृहों, शारीरिक एवं मानसिक गतिविधियों तथा अकेले पन को दूर करने एवं अन्य लोगों के साथ अन्तक्रिया करने एवं सम्पर्क बनाने हेतु मनोरंजन स्थलों की व्यवस्था की है।

4.4 अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों का कल्याण

अनुसूचित जातियों के कल्याण की आवश्यकता : देश के पश्चिम भाग में लगभग सभी बुनकर अनुसूचित जातियों से है एवं पूर्वी भाग में है सभी मछुवारे अनुसूचित जाति के है। कुछ गंदे व्यवसाय यथा झाडू लगाना, चमड़ा उतारना, तथा परिशोधन तथा चमड़ी उतारना पूर्णतया अनुसूचित जातियों के लिए है। नगरीय क्षेत्रों में रिक्षा चालको, ठेला चालको, निर्माण श्रमिकों, बीड़ी क्रमिकों एवं अन्य असंगठित गैर–कृषि श्रमिकों तथा नगरीय सफाई कर्मिकों, की पर्याप्त संख्या अनुसूचित जातियों से सम्बद्ध रखती है। वे उन निर्धनों में जो गरीबी रेखा से नीचे रहते है, में सबसे निर्धन है।यद्यपि जनसंख्या के अन्य वर्गो में भी निर्धन एवं दलित है तदपि घोर निर्धनता, असामान्य अज्ञानता एवं गठन अन्धविश्वास में डूबी हुई जनसंख्या की अधिक भाग अनुसूचित जातियों में से है। वंचित लोगों में भी हरिजन ही शताब्दियों तक दासत, अपमान एवं नितांत विवषता का जीवन व्यतीत करते रहै है।

- **अनुसूचित जाति विकास निगमः**राज्यों में अनुसूचित जाति विकास निगम आर्थिक विकास की बैंकीय परियोजनाओं के विषय में वित्तिय संस्थाओं एवं अनुसूचित जातियों के परिवारों के मध्य परस्पर मिलान की व्यवस्था करते है। अठारह राज्यों एवं तीन संध प्रदेश ों जहाँ अनुसूचित जातियों की काफी जनसंख्या निवास करती है, ने अनुसूचित जाति विकास निगमों की स्थापना की है। भारत सरकार राज्यों को उनके निगमों में शेयर पूँजी निवेष रूप में 49 प्रतिशतसहायता देती है जबकि राज्यो का अंष 51 प्रतिशतहोता है, इससे निगमों को अपने कार्यो का विस्तार करने में सहायती मिली है।
- **संवैधानिक सुरक्षा** :संविधान में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों एवं अन्य कमजोर वर्गो के लिए विशेश तौर पर अथवा नागरिक रूप से उनके अधिकारों को मान्यता देकर उनके शैक्षिक एवं आर्थिक हितो का विकास करने एवं उनकी सामाजिक आयोग्यताओं को दूर करने हेतु सुरक्षाएँ प्रदान की गई है। मुख्य सुरक्षाएँ है–

1.अस्पृश्यता उन्मूलन एवं किसी भी रूप मे इसके अभ्यास पर प्रतिबन्ध, (धारा 17)

2.उनके शैक्षिक एवं आर्थिक हितों की उन्नति एवं सामाजिक अन्याय एवं शोषण के सभी रूपों से उनकी सुरक्षा, (धारा 46)

सार्वजनिक स्वरूप की हिंदू धार्मिक संस्थाओं को सभी वर्गो एवं श्रेणियों के लिये खोल देना (25 बी)

दुकानों, जन भोजनालयों, रेस्टोंरेन्टों एवं सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों, कुओं, तलाबों, स्नानघाटों, सड़कों एवं सार्वजनिक विश्राम स्थानों जो पूर्णतया अथवा आंषिक रूप में राज्य कोष से सहायता प्राप्त करते है अथवा जन प्रयोग के लिए समर्पित कर दियें है, के प्रयोग के बारे में किसी अयोग्यता, बाधा अथवा शर्त की समाप्ति (धारा 15 (2)),

अनुसूचित जातियों के हित में सभी नागरिकों को स्वतन्त्रापूर्वक घूमने, बसने अथवा सम्पत्ति प्राप्त करने के सामान्य अधिकार पर कानून के द्वारा प्रतिबन्ध (19 (5),

राज्य के द्वारा चलाये गये अथवा राज्य कोष से सहायता अनुदान प्राप्त करने वाली शिक्षण संस्थाओं में प्रवेष की इंकारी पर रोक,

राज्य को पिछड़े वर्गो के लिए लोक सेवाओं में उनकी अपर्याप्त प्रतिनिधित्व होने की स्थिति में सुरक्षित स्थान बनाने की अनुमति देना तथा लोक सेवाओं में नियुक्ति के बारे में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के दावों पर विचार करने के आदेश देना (धारा 16 एवं 335)

25 जनवरी 2000 तक लोक सभा एवं राज्य विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए स्थान सुरक्षित रखना (धारा 330ए 332 एवं 334)

उनके कल्याण के वर्द्धन एवं उनके हितो की सुरक्षा हेतु केन्द्र में विशेश अधिकारी की नियुक्ति तथा राज्यों में अलग विभागों एंव जनजाति परामर्ष परिषदों की स्थापना (धारा 164, 338, एवं पाँचवी सूची)

अनुसूचित एवं जनजातीय क्षेत्रों के नियंत्रण एवं प्रषासन हेतु विशेश व्यवस्था (धारा 224 एवं पाँचवी तथा सूचियाँ)

मानव व्यापार एवं बहुधा श्रम पर प्रतिबन्ध (धारा 23)

4.5 अन्य पिछडें वर्गो का कल्याण

अन्य पिछडे वर्गो से अर्थ है ऐसे वर्गो से जो सामाजिक एवं षैक्षणिक दृष्टि से पिछडे हैं ! इन वर्गो के लिए संवैधारिक एवं विधिक संरक्षण व्यवस्था राज्य को पिछडे है । इन वर्गो के लिए संवैधानिक एवं विधिक संरक्षण व्यवस्था निम्नलिखित है :

4.5.1संवैधानिक व्यवस्था

संविधान के अनुच्छेद की कोई व्यवस्था राज्य को पिछडे हुए नागरिकों के कियी वर्ग के पक्ष में निका राज्य की राय में राज्य की सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है, नियुक्तियों या पदो के आरक्षण के लिए प्रावधान करने से नहीं रोकेगी !भारतीय संविधान के भाग.16 कुछ वर्गो की दशाओं के अन्वेषण के लिए आयोग की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी है।

4.5.2 विधिक व्यवस्था

पहला पिछडा वर्ग आयोग :भारतीय संविधान की अनुच्छेद 340 के अन्तर्गत भारत के राष्ट्रपति ने काका साहेब कालेलकर की अध्यक्षता में 29 जनवरी, 1953 को पहले पिछडे वर्ग आयोग का गठन किया इस आयोग ने अपना प्रतिवेदन 30 मार्च, 1955 को प्रस्तुत किया। आयोग द्वारा सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछडे वर्गो की पहचान के लिए निम्नलिखित मानदण्ड बनाये गये :

- हिन्दू समाज की पारम्परिक जाति व्यवस्था में निम्न सामाजिक स्थिति
- जाति और समुदाय के बडे वर्ग में सामान्य शैक्षणिक विकास की कमी
- सरकारी सेवा में अपर्याप्त अथवा प्रतिनिधित्व

इस आयोग की कुछ उल्लेखनीय सिफारिशें इस प्रकार थीः

- 1961 की जनगणना में जनसंख्या की जातिवार गणना की जानी चाहिए ।
- हिन्दू समाज की पारस्परिक जाति व्यवस्था में निम्न स्तर के वर्ग की सामाजिक पिछडेपन के कारण निम्न स्थिति को स्वीकार किया जाना चाहिए ।
- सभी महिलाओं को पिछडे वर्ग में स्वीकार किया जाना चाहिए ।
- पिछडे वर्गो के सुयोग्य विद्यार्थियों के लिए सभी तकनीकी तथा व्यावसायिक संस्थाओं में 70 प्रतिशत स्थानों का आरक्षण किया जाना चाहिए !
- अन्य पिछडे वर्गो के लिए सभी सरकारी सेवाओं तथा स्थानीय निकायों की नियुक्ति में निम्नलिखित पैमाने पर न्यूनतम आरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए :

4.5.3. राज्य सरकारों द्वारा गठित पिछड़ा वर्ग आयोग एवं समितियॉ

1961 की इस सूचना के आधार पर राज्य सरकारों ने पिछड़ेपन के लिए मानदण्ड निर्धारित करने और पिछड़ापन दूर करने के उपाय सुझाने के लिए अपने आयोग एवं समितियों का गठन किया । 1980 तक दस राज्य सरकारों ने इसके लिए 15 आअयोग एवं समितियॉ गठित की ।इन राज्यों के नाम है : आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, जम्मू और कश्मीर, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र पंजाब, उत्तर प्रदेश एवं तमिलनाडु। इन राज्यों सहित 8 और राज्यों तथा संघ शासित क्षेत्राों (आसाम, दिल्ली, हरियाणा, हिमांचल प्रदेश, मेघालय, उडीसा, पांडिचेरी तथा राजस्थान) ने शिक्षा , रोजगार तथा अन्य सुविधायें उपलब्ध कराने के उददेश्य से अन्य पिछड़े वर्गो की सूचियॉ अधिसूचित किया गया।

4.5.4 मंडल आयोग का गठन

श्री मोरारजी देसाई के नेतृत्व में बनी जनता सरकार ने जनवरी 1979 को बी.पी. मण्डल की अध्यक्षता में इस आयोग का गठन किया ! इस आयोग के विचारार्थ निम्नलिखित विषय रखे गये :

(1) सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गो को पारिभाषित करने के लिए मापदण्ड निर्धारित करना ।

(2) इस प्रकार परिभाषित नागरिकों के सामाजिक तथा शैक्षणिक रूप से पिछडे वर्गो की प्रगति के लिए किये जाने वाले उपायों की सिफारिश करना ।

(3) नागरिकों के उन पिछड़े वर्गो जिनका संघ या किसी राज्य की सेवाओं और पदों में समुचित प्रतिनिधित्व नहीं है, के लिए नियुक्तियों या पदों में आरक्षण की व्यवस्था करने की वांछनीयता अथवा अवांछनीयता की जांच करना !

(4) राष्ट्रपति को प्रतिवेदन प्रस्तुत करना जिसमें उनके द्वारा पाये गये तथ्यों का निरूपण किया गया हो तथा उपके द्वारा उचित समझी गयी सिफारिशें की गयी हो (पिछड़ा वर्ग आयोग की प्रतिवेदन दृ भाग एक, 1980 : vii) ।

इस आयोग ने सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछडे वर्गो की पहचान हेतु 11 सूचकों (सामाजिक .4, शैक्षिक .3 एवं आर्थिक.4) का प्रयोग किया। आयोग ने यह निष्कर्ष निकाला कि सामाजिक एवं शैक्षिक पिछड़ेपन का सीधा सम्बन्ध कुछ जातियों की निम्न स्थिति से है तथा कुल जनसंख्या में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की संख्या 22.5 प्रतिशत के अतिरिक्त अन्य पिछड़े वर्गो का प्रतिशत 52 है ।

इस आयोग के प्रमुख सिफारिशें इस प्रकार थीः–

(1) लोक सेवाओं में अन्य पिछडे वर्गो का आरक्षण 27 प्रतिशत किया जाये यद्यपि कुल जनसंख्या में इनका प्रतिशत52 है, किन्तु उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुसार लोक सेवाओं में आरक्षण का प्रतिशत50 से अधिक नहीं हो सकता और अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों का आरक्षण प्रतिशत पहले ही 22.5 है,

(2) अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के कल्याण कार्यक्रमों के लिए दी जाने वाली सरकारी सहायता की तरह अन्य पिछड़े वर्गो के कल्याण कार्यक्रमों के लिए भी सरकार द्वारा सहायता दी जानी चाहिए ।

(3) राज्यों में क्रान्तिकारी भूमि सुधार किए जाने चाहिए जिससे छोटे किसानों की बडे.बडे जमीन के मालिकों पर निर्भरता कम हो जाए ।

(4) अन्य पिछड़े वर्गो के लिए छोटे उद्योग स्थापित किये जाने को प्रोत्साहन किया जाना चाहिए ।

(5) अन्य पिछडे वर्गो के लिए विशेष शैक्षणिक कार्यक्रम एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण पर बल देते हुए तकनीकी एवं व्यावसायिक संस्थाओं में विशेष कोचिंग की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि वे अन्य वर्ग के विद्यार्थियों से प्रतियोगिता करने में सक्षम हो सकें।

इस निर्णय में आरक्षण के संबंध में कानूनी स्थिति को अन्तिम रूप देने के अतिरिक्त सरकार की आरक्षण नीति के विभिन्न पहुलुओं पर निम्नलिखित स्पष्टीकरण भी दिये गये :

(1) अनुच्छेद 16 (4) के अधीन पदों अथवा नियुक्तियों में आरक्षण सामूहिकता पर आधारित है, अतरु जाति पर आधारित आरक्षण वैध है ।

(2) यह आरक्षण केवल आरम्भिक नियुक्तियों तक ही सीमित है एवं पदोन्नति के विषय में आरक्षण प्रदान नहीं किया जा सकता ।

(3) कतिपय सेवाओं और पदों को जिनमें उनसे संव्रधित कार्यो अथवा उन्हें प्राप्त करने के स्तर की प्रकृति के कारण केवल योग्यता पर ही ध्यान दिया जाता है, आरक्षण की सीमा के बाहर रखना उचित है ।

(4) उच्च जातियों के आर्थिक रूप से पिछडे वर्गो के लिए आरक्षण संवैधानिक रूप से वैध नहीं है ।

(5) अनुच्छेद 16 (4) में निर्धारित आरक्षण 50 प्रतिशतपदों से अधिक नहीं होगा (कल्याण मंत्रालय, वार्षिक प्रतिवेदन, 1995 .96 : 37)।

4.5.5 पदो ंके आरक्षण का कियान्वयन

भारत सरकार ने 8 सितम्बर, 1993 को सामाजिक रूप से उन्नत व्यक्तियों / वर्गो (क्रीमी लेयर) को आरक्षण की परिधि से बाहर करते हुए अन्य पिछडे वर्गो के लिए सरकारी पदों/सेवाओं की रिक्तियों में 27 प्रतिशतकी व्यवस्था कर दी । 13 सितम्बर, 1993 को सरकारी गलट में 14 राज्यों (आन्ध्र प्रदेश , आसाम, बिहार, गोवा, गुजरात, हरियाणा, हिमांचल प्रदेश ,कर्नाटक, केरल मध्य प्रदेश , महाराष्ट्र, पंजाब, तमिलनाडु, तथा उत्तर प्रदेश) के अन्य पिछडे वर्गो की सूची अधिसूचित की गयी । उड़ीसा, राजस्थान,त्रिपुरा तथा पश्चिम बंगाल के संबंध में यह सूची 20 अक्टूबर,1994 को अधिसूचित की गयी। जम्मू तथा कश्मीर, मणिपुर, सिक्किम, तथा राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली के सम्बन्ध में अन्य पिछडे वर्गो की ऐसी ही सूची 25 मई, 1995 को अधिसूचित की गयी ।

4.5.6 आरक्षण सम्बन्धी उपबन्धों के कार्यान्वयन का अनुश्रवण

केन्द्रीय मंत्रालयों / विभागों द्वारा आरक्षण नीति के प्रभावी कार्यान्वयन हेतु निम्नलिखित कदम उठाये जाने की व्यवस्था की गयी है :

(1) प्रत्येक मंत्रालय में पृथक प्रकोष्ठ का सृजन ।

(2) इन मंत्रालयों / विभ्ज्ञागों द्वारा की गयी भर्ती में इन वर्गो के प्रतिनिधित्व के संबंध में मासिक प्रतिवेदन ।

(3) स्थिति की अर्द्धवार्षिक समीक्षा ।

राष्ट्रीय पिछडा वर्ग आयोग का गठन

केन्द्रीय सरकार इस आयोग का गठन करेगी जिसका अध्यक्ष उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय का न्यायाधीश होगा इसका एक सदस्य समाज वैज्ञानिक एवं दो सदस्य पिछडे वर्गो के विषय में ज्ञान रखने वाले व्यक्ति होंगे। केन्द्र सरकार में

सचिव स्तर का अधिकारी इस आयोग का सदस्य सचिव होगा। इन सदस्यों के कार्य की समयावधि तीन वर्ष होगी।

आयोग का कार्य

1. अन्य पिछडे वर्गो की सूचियों में अधिक या कम सम्मिलित की गयी जातियों के संबंध में नागरिकों की शिकायतों को सुनना ।

2. इन सूचियों में सम्मिलित किये जाने वाले अनुरोधों को स्वीकार करना एवं जॉच करके सिफारिश करना ।

3. आयोग द्वारा दी गयी सलाह सरकार पर बाध्यकारी होती है ।

अन्य पिछडें वर्गो के बारे में संवैधानिक व्यवस्था

प्रासंगिक कानूनी व्यवस्थाएँ भारतीय संविधान के भाग 16 में वर्णित की गई है। जिसका शीर्षक है, कुछ वर्गो के लिए विशेश व्यवस्थाएँ। इन व्यवस्थाओ से स्पष्ट है कि सन् 1950 में संविधान निर्माता केवल निम्नाकिंत वर्गो के लिएविषेश व्यवस्था करने की आवश्यकता समझते थे। अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ, एग्लों–इंडियन समुदाय, तथा सामाजिक एंव शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग ।

एग्लों–इडियन समुदाय के लिए लोक सभा में दो स्थानों को आरक्षित किया गया जिनके लिए राष्ट्रपति सदस्यों को मनोनीत करता है। ऐसी व्यवस्था राज्य विधान सभाओं के लिए भी है। भाग 16 में शैक्षिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गो के लिए विधान मंडलों में किसी आरक्षण की व्यवस्था नही है।

भाग 16 में विशेष व्यवस्थाओं की दूसरी श्रेणी केन्द्रीय एवं राज्य सरकार की सेवाओं में अनुसूचित जातियों , अनुसूचित जनजातियों एवं एग्लो–इंडियन समुदाय के सदस्यों को सरकारी पदों पर नियुक्ति से सम्बन्धित है। धारा 336 में रेलवे, सीमा–षुल्क, डाक तार सेवाओं में एग्लों–इंडियन समुदाय के लिए आरक्षण उसी आधार पर जारी रहेगा जैसे 15 अगस्त, 1947 से पूर्व था। परन्तु यह आरक्षण केवल दो वर्ष रहना था तथा प्रत्येक दो वर्ष बाद इसमें 10 प्रतिशत की कटौती की जाती थी ताकि 1990 के बाद उनके लिए कोई आरक्षण न रहे। अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए संविधान की धारा 335 में अंकित किया गया है कि प्रशासन में दक्षता को ध्यान में रखते हुए अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के दावों पर केन्द्रीय अथवा राज्य सेवाओं में नियुक्ति करते समय विचार किया जायेगा। इसके शब्दों में, इन जातियों के लिए कोई निर्धारित कोटा नही था जैसा एंग्लों–इंडियन समुदाय के लिए था। दूसरे, इनके लिए दो वर्ष अथवा दस वर्ष की ऐसी कोई अवधि नही थी जिसके बाद आरक्षण समाप्त हो जायेगा। तीसरे, एंग्लो–इंडियन समुदाय के लिए आरक्षण प्रशासन की दक्षता से सम्बन्धित नही था

जबकि अनुसूचित जातियों जनजातियों के बारे में यह शर्त जोड़ी गई है। अंतिम, जबकि एंग्लो–इंडियन समुदाय के सदस्य मेरिट के आधार पर भी प्रतियोगी बन सकते थे एवं कोटा का भी उपयोग कर सकते थे, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के बारे मूं ऐसी कोई सुविधा नही थी। एंग्लों–इंडियन समुदाय को एक अन्य सुविधा शैक्षिक सहायता अनुदान उपलब्ध थी परन्तु अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों अथवा अन्य शैक्षिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गो के लिए ऐसी कोई सुविधा संविधान के भाग 16 में सम्मिलित नही है।

4.6 विकलांगों का कल्याण

राष्ट्रीय सर्वेक्षण संगठन द्वारा किये गये सर्वेक्षण के अनुसार भारत में बारह मिलियन कुल जनसंख्या का 18 प्रतिशतएक अथवा अधिक विकलांगता से पीड़ित है। इन व्यक्तियों में से लगभग 10 प्रतिशतको एक से अधिक शारीरिक विकलांगता है। प्रत्येक प्रकार की विकलागता को अलग लेते हुए गत्यात्मक विकंलागता सबसे अधिक (5.43 मिलियन) है, दृष्टिगत विकलांगता (3.47 मिलियन) श्रवण विकलांगता (3.02 मिलियन) एवं विकलांगता (1.75 मिलियन) है। इस सर्वेक्षण में केवल दृष्टिहीनों, पंगुओं एंव गूँगे व्यक्तियों को ही सम्मिलित किया गया है। अन्य विकलांगतों यथा मानसिक मदांधता को सम्मिलित नही किया गया है।

समस्या का आकारःजन्मजात विकलांगता का सन्दर्भ देते हुए, सर्वेक्षण में बतलाया गया है कि दृष्टि एवं संचारी रोगों ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में दृष्टिगत विकलांगता का क्रमशः 5 प्रतिशतएवं 8 प्रतिशतहै। श्रवण विकलांगता में, जन्मजात क्षेत्रों में 30 प्रतिवर्ष एवं नगरीय क्षेत्रों में 28 प्रतिशतहै। वाक विकलांगता तथा इसके सम्बद्ध में ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों यह क्रमषः 77 प्रतिशतएवं 67 प्रतिशतहै। जन्मजात विकलांगता का आकर बढ़ जाता है, 60 वर्ष के ऊपर आयु वर्ग के सभी प्रकार की विकलांगता सर्वाधिक है। गत्यामक विकलांगता का अनुपात ग्रामीण क्षेत्रों में 828 प्रति लाख तथा नगरीय क्षेत्रों में 67 है। अंगो की विरूपता, अर्द्धांग, जोड़ों की विकार्यता एवं पंगुता क्रमवार गत्यामक विकलांगता में योगदान करते है। विकलांगता व्यक्तियों की संख्या स्थिर नही है। यह प्रत्येक वर्ष बढ़ती जाती है। एक कच्चे अनुमान के अनुसार, लगभग 30 लाख व्यक्ति प्रतिवर्ष विकलांगता की सूची में प्रवेश कर जाते है।

राष्ट्रीय विकलांग संस्थान :कल्याण मंत्री के आधीन विकलांगता के प्रत्येक प्रमुख क्षेत्र के चार राष्ट्रीय संस्थान है। ये है– राष्ट्रीय अस्थि विकलांग संस्थान कलकत्ता, राष्ट्रीय दृष्टि विकलांग संस्थान, देहरादून, राष्ट्रीय विकलांग संस्थान

सिकन्दराबाद, तथा अली यावर जंग राष्ट्रीय श्रवण विकलांग संस्थान बम्बई। ये संस्थाएँ व्यवासायिकों को प्रशिक्षण, विकलांगों के लिए शिक्षण सामग्री एवं अन्य सहायकों के उत्पादन, पुर्नवास में अनुसंधान करने तथा विकलांगों के लिए उपर्युक्त प्रतिरूप सेवाओं का विकास करने के लिए शीर्ष संगठन है। यह संस्थान एक दूसरे एवं देशके अन्य प्रशिक्षण केन्द्रों, स्वयं सेवी संगठनों, राज्य सरकारों, अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरणों के साथ मिलकर विभिन्न विकलांग संस्थाओं में आधारिक प्रतिमानों को क्रियान्वित कराने एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों को उच्चस्तरीय बनाने के लिए कार्य करते है।

पुनर्वास परिषदःकल्याण मंत्रालय के आधीन एक षिखर संस्था पुनर्वास परिषद के नाम से स्थापित की गई है। इसका कार्य है विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों के पाठ्यक्रमों को निष्चित करना, प्रशिक्षण संस्थाओं को मान्यता देना एवं पुनर्वास रजिस्टर तैयार करना यह सुनिश्चितकरने हेतु कि स्वयंसेवी संगठनों के संसाधन व्यक्तियों को उचित प्रशिक्षण प्राप्त हो, राष्ट्रीय संस्थान इन संगठनों के कार्मिकों के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण हेतु पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों का आयोजन करते है।

इसके अतिरिक्त अनेक स्वयंसेवी संगठन यथा भारतीय अर्द्धांग समिति, उत्तरी भारत अर्द्धांग समिति, पूर्वी भारत अर्द्धांग समिति अर्द्धांग पीड़ितों के प्रशिक्षण एवं उनकी विशेश शिक्षा हेतु संसाधन व्यक्तियों के लिए पाठ्यक्रम चला रहे है। इन्हें कल्याण मंत्रालय से इन कोर्सो के आयोजन हेतु सहायता प्राप्त होगी है। अन्य संस्थाएँ यथा श्रवणहीनों के लिए स्कूल एवं प्रशिक्षण कालेज, लखनऊ, अभिनव भारती मोनी विकास केन्द्र, कलकत्ता, उपचारी शैक्षिक मूल्यांकन एवं विकलांगों के प्रशिक्षण हेतु समिति, कलकत्ता भी विकलांगता के अपने अपने क्षेत्रों में संसाधन व्यक्तियों को प्रशिक्षण करने के लिए पाठ्यक्रम चली रही है।

जिला पुनर्वास केन्द्र परियोजनाःयह अनुमान लगाया गया है कि विकलांग जनसंख्या का 80 प्रतिशतग्रामीण क्षेत्र में निवास करता है परन्तु सरकारी एवं गैर सरकारी सेवाओं अधिकाषता नगरो में केन्द्रीत है। इस विसंगति को दूर करने के लिए कल्याण मंत्रालय ने 1983 में जिला पुनर्वास केन्द्र परियोजना प्रारम्भ की। इस स्कीम के आधीन सम्बन्धित क्षेत्र में विकलांग व्यक्तियों की पहचान करना है तथा उनके लिए पुनवासीय चिकित्सीय, शैक्षिक व्यवसायक एवं स्थान रक्षण सेवाओं की व्यवस्था करना है। इस योजना में जिला स्तर पर उपलब्ध स्वास्थ्य एवं शैक्षिक संरचना के साथ घनिष्ट समन्वय एवं पुनर्वास प्रकिया में समुदाय के साथ निकट अन्तक्रिया की अपेक्षा है। जिला केन्द्र, जहाँ कार्यरत है, गैर सरकारी संगठनों के लिए उत्प्रेरक के रूप में कार्य कर रहे है।

जिला केन्द्र मूल्यांकन क्लीनिकल एवं उपचारीय सेवाएँ प्रदान करते है तथा गैर–सरकारी संगठन को समुदायक जागरूकता, माता–पिता को परामर्ष एवं व्यवसायिक प्रशिक्षण सेवाएँ प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित करते है।

कृत्रिम अंग निर्माण निगम :भारत सरकार ने विकलांग व्यक्तियों की आवष्यकताओं के आकार को ध्यान में रखते हुए सार्वजनिक क्षेत्र में कानपुर में कृत्रिम अंग निर्माण निगम की स्थापना की है जो उत्तम कोटि को सहायकों एवं यन्त्रों का निर्माण करता है।

रोजगार हेतु प्रशिक्षण सुविधाएँ:प्रत्येक पुनर्वासित विकलांग व्यक्ति का अन्तिम लक्ष्य लाभदायक रोजगार है। विकलांग व्यक्ति रोजगार पाकर न केवल स्वात्त का उत्पादन सदस्य बनता है अपितु इससे उसमें विष्वास एवं आत्म सम्मान की भावना का भी विकास होता है। विकलांग व्यक्ति को रोजगार प्राप्त करने हेतु अथवा स्वरोजगार के योग्य बनाने हेतु विभिन्न व्यवसायिक गतिविधियों में प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण सुविधाएँ सरकारी एवं गैर–सरकारी दोनों क्षेत्रों में उपलब्ध है। लगभग 100 प्रशिक्षण केन्द्र जिनमें 50 सरकारी सैक्टर में हैं, विकलांग व्यक्तियों को विभिन्न व्यवसायिक कार्यो में प्रशिक्षण प्रदान करते है।

विकलांग व्यक्तियों का व्यवसायिक पुनर्वास:अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की प्रतिवेदन अनुसार, एशिया एवं प्रशांत क्षेत्र के 50 देषों में लगभग 300 मिलियन व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रूप में विकलांग है। इनके लिए व्यवसाय के अवसर उत्पन्न करने की आवष्यकता जितनी आज है, वैसे पहले कभी नही रही है। इसका यह भी कथन है कि व्यवसासिक पुनर्वास विकलांग के लिए सामाजिक एवं आर्थिक का प्रारम्भिक बिन्दु है। समेंकित राट्रीय नीतियों को विकलांग व्यक्तियों की सभी श्रेणियों को ऐसी सुविधाएँ उपलब्ध करनी चाहिए तथा खुले बाजार में उनके रोजगार की व्यवस्था करनी चाहिए। प्रतिवेदन के अनुसार, एशिया के लगभग सभी देशों में प्रषिक्षित कर्मियों का अभाव है। अन्य विवशता समस्या के बारे में जन भ्रांति है। कमियों के अनुसार '' सम्पूर्ण समुदाय को विकलांग व्यक्तियों को समान मानवी अधिकार एवं अपेक्षा रखने वाले सदस्यों के रूप में स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया जाए। गहन लोक सूचना विकलांगों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न का सर्वोत्तम साधन है। सामुदायिक सहभागिता अनिवार्य है। समुदाय विकलांगता के क्षेत्र में आत्यधिक योगदान कर सकता है जो बहुधा सरकार एवं गैर सरकार अभिकरणों के सीमित संसाधनों के कारण सम्भव नही होता है।

विकलांगों के लिए समेकित शिक्षा कार्यक्रम:विकलांगों के लिए समेकित शिक्षा कार्यक्रम का राज्यों द्वारा क्रियान्वन न किये जाने के प्रमुख कारण है। प्रथम राज्य

स्तर पर विकलांगों की विभिन्न समस्याओं से निपटने के लिए कोई समन्वयक निकाय नही है। द्वितीय, स्कूल स्तर पर इस कार्यक्रम के अधीन अतिरिक्त कार्य सुपुर्द किये जाने का स्वागत नही किया गया। तृतीय, अध्यापकों में विकलांग व्यक्तियों, बच्चों का प्रबन्ध करने के लिए योग्यता एवं प्रशिक्षण का अभाव हैं। चतुर्थ, माता–पिता समझते है कि विकलांगता ईष्वर की देन है एवं इसके लिए कुछ नही किया जा सकता है। वे इन बच्चों को स्कूल भी भेजना पंसद नही करते है इस आशंका से कि दूसरे बच्चे उनका उपहास करेगे। पाँचवें, विशेष ज्ञों का विचार है कि विभिन्न रियायतो गहन सेवाओं, आरक्षण, यात्रा रियायतें, टेलीफोन स्वीकृत में वरीयता आदि का विकलांगों को जीवन की मुख्य धारा में विलिन करने में अधिक प्रभाव नही हुआ है। समस्या का मूल कारण अवसरों की उपलब्धता की समस्या में निहित है। विकलांगों के लिए शैक्षिक सुविधाएँ सीमित है, जिसके कारण रोजगार एवं प्रशिक्षण के अवसर सीमित हो जाते है।

4.7 श्रम कल्याण

श्रम कल्याण–संवैधानिक प्रावधानःभारतीय संविधान की धारा 23 में मानव व्यापार, बेगार एवं जबरदस्ती श्रम के अन्य सभी रूपों की मनाही की गई है। इस धारा को उल्लघंन दंडनीय अपराध है। धारा 24 में चौदह वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखानों में लगाने पर प्रतिबन्ध लगाया गया है। राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों में विभिन्न कल्याणकारी उपायों का उल्लेख किया गया है परन्तु यह सिद्धान्त न्याय कोष नही है। इसका परिपालन राज्य की इच्छा एवं उसके संसधानों पर निर्भर करता है। 39, 41, 42, एवं 43 श्रम नीति से सम्बन्धित है। धारा 39 में उल्लिखित है कि राज्य अपनी नीति का निर्माण इस प्रकार करेगा जिससे नागरिकों, पुरूषों एवं महिलाओं को समान रूप से आजीविका के समुचित साधन प्राप्त हों, समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व एवं नियंत्रण इस प्रकार विभाजित किया जाये जिसमें सामान्य हित की पूर्ति हों आर्थिक व्यवस्था के क्रियान्वन के उत्पादन के साधनों एवं सम्पत्ति का केन्द्रीयकरण न हो जिससे सामान्य हित की हानि हो, पुरूषों और महिलाओं को समान कार्य के लिए समान वेतन मिले, श्रमिको–पुरूषों एवं महिलाओं तथा अल्प आयु के बच्चों के स्वास्थ्य एवं बल का दुरूपयोग न हो एवं नागरिकों को आर्थिक आवश्यकता से बाधित होकर उनकी आयु एवं शक्ति के अनुपयुक्त व्यवसाय का करने के लिए विवष न होना पड़े, बच्चों एवं युवा को शोषण एवं नैतिक तथा भौतिक परित्याण के विरूद्ध संरक्षण प्रदान किया जाए। धारा 41 में व्यवस्था है कि ''राज्य आर्थिक सामर्थ्य एवं विकास की परिसीमा के अन्दर काम के

अधिकार, शिक्षा के अधिकार तथा बेरोजगारी, वृद्धायु, रूग्णता एवं विकलांगता तथा अभाव की कुछेक दषाओं में सार्वजनिक सहायता के लिए प्रभावी व्यवस्था करेगी। धारा 42 में वर्णित राज्य कार्य की मसनवीय एवं उपर्युक्त दशाओं को प्राप्त करने एवं प्रसूति राहत के लिए व्यवस्था करेगी। धारा 43 में व्यवस्था की गयी है कि 'राज्य श्रमिकों, कृषकों औद्योगिक अथवा अन्य, को निर्वाह योग्य मजदूरी, जीवन के सुन्दर स्तर को कार्य दशाओं, विश्राम के पूर्ण आनन्द तथा सामाजिक एवं सास्कृतिक अवसरों को उपयुक्त विधान अथवा संगठन अथवा अन्य किसी ढ़ग से सुनिश्चितकरने हेतु प्रयास करेगा, राज्य विशेश रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में व्यक्तिगत अथवा सहार आधार पर कुटीर उद्योगों को उन्नत करने का प्रयास करेगा। संविधान के निर्देशों के परिपालन में केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों ने **स्वातंत्रता प्राप्ति के बाद निम्नलिखित अधिनियम पारित किये है–**

पूर्व योजना (1946–51) काल में केन्द्रीय सरकार ने अभ्रक खाल श्रम कल्याण कोष कानून (1946), औद्यौगिक परिवार कानून (1974), कोयला खान श्रमिक कल्याण कोष (1947), कर्मचारी राज्य बीमा कानून (1948), कोयला खान भविष्य निधि कोष कानून (1948), फैक्ट्री कानून (1948), गोदिक श्रमिक (रोजगार नियमन) कानून (1948), बागान श्रमिक कानून (1951), पारित किये। उत्तर प्रदेश सरकार ने 1950 में चीनी एवं ऊर्जा एल्कोहल उद्योग श्रम कल्याण विभाग कोष पारित किया।

प्रशासनिक संगठन : श्रम मंत्रालय:श्रमनीति एवं श्रम कल्याण से सम्बन्धित अधिनियमों को श्रम मंत्रालय, भारत सरकार एवं राज्य सरकारों के श्रम विभागों द्वारा क्रियान्वित किया जाता है। श्रम मंत्रालय कैबिनेट मंत्री/राज्य मंत्री/स्वतंत्र प्रभार के अधीन कार्य करता है। भारत सरकार का कोई एक सचिव प्रषासकीय अध्यक्ष होता है जिसकी सहायतार्थ एवं अतिरिक्त सचिव, चार संयुक्त सचिव, एक महानिदेषक तथा अन्य वरिष्ट एवं कनिष्ट अधिकार होते है।

श्रम मंत्रालय के कार्य :मंत्रालय श्रम मामलों यथा औद्योगिक सम्बन्धो, श्रम एवं प्रबन्ध के मध्य सहयोग, वेतन एवं सेवा की अन्य शर्तो को नियमन, सुरक्षा, श्रम कल्याण, सामाजिक सुरक्षा आदि से सम्बन्धित नीति का निर्माण करने के लिए उततरदायी है। श्रम नीति का क्रियान्वन केन्द्रीय सरकार के द्वारा निर्देशन एवं नियंत्रण के अधीन राज्य सरकारों का दायित्व है। रेलवे, खानों, तेल क्षेत्रों, प्रमुख बन्दरगाहों, बैकों, बीमा कम्पनियों तथा अन्य जो संघ सूची में वर्णित है, राज्य सरकार के क्षेत्र में नही आते है। मंत्रालय कर्मचारी राज्य बीमा कानून, 1948 कर्मचारी भविष्य निधि कोष एवं विधि व्यवस्थाओं कानून, 1952 के अधीन सामाजिक सुरक्षा स्कीमों के क्रियान्वयन तथा बीड़ी उद्योग एवं खान (कोयला खानों को

छोड़कर) श्रमिकों के कल्याण कोषों के प्रबन्ध के लिए सीधा उत्तरदायी है। यह राज्य सरकारों की श्रम मामलों के बारे में गतिविधियों को समन्वित करता है तथा आवष्यकता के समय परामर्श देता है। यह व्यक्तियों को उनकी रोजगार क्षमता बढ़ाने हेतु प्रशिक्षण सुविधाएँ भी प्रदान करता है। यह अन्तर्राश्ट्रीय श्रम संगठन एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा संगठन के सम्बन्धित सभी गतिविधियों के लिए आदर्ष संगठनके रूप में कार्य करता है। यह सम्मेलनों एवं बैठकों में सहभागिता को समन्वित करता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय एवं इन संस्थाओं की सिफारिषों को क्रियान्वित करने के लिए उत्तरदायी है।

ग्रामीण असंगठित श्रमिकों के लिए कल्याण कार्यक्रमःसरकार असंगठित श्रमिकों, विशेश तया, ग्रामीण क्षेत्रों में, की सामाजिक एवं आर्थिक दषाओं में सुधार हेतु अनेक उपायों के द्वारा प्रयास कर रही है।

न्यूनतम वेतनःअसंगठित सेक्टर में श्रमिकों के वास्तविक वेतन को संरक्षित करने का उद्देश्य न्यूनतम वेतन निर्धारण एवं समय–समय पर इसके संशोधन तथा केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा इनके क्रियान्वन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

ग्रामीण असंगठित श्रमिक श्रम शक्ति का सबसे बड़ा भाग है, अतएव विकास के सामाजिक आर्थिक लाभों को अनेक उपायों के माध्यम से उन तक पहुँचाने के लिए प्रयास किसे जाने चाहिए, यथा आवास स्थान एवं कृषि भूमि का आवंटन, नियमित आधार पर रोजगार, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा देखभाल, पेयजल, आवास, ग्रामीण ऋण एवं शिक्षा की सुलभता आदि। भारत ने ग्रामीण श्रमिक संगठन से सम्बन्धित अगस्त 1977 अन्तराष्ट्रीय श्रम संगठन परिसंधि संख्या 141 की पुष्टि कर रखी है, अतः उस समय से ग्रामीण श्रमिकों की विभिन्न श्रेणियों की पहचान करने हेतु प्रयास किये जा रहे है ताकि उन्हे विकास की मुख्य धारा में लाया जा सके।

4.8 सार संक्षेप

संविधान की प्रस्तावना में भारत के लोगों ने भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुसत्ता सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए एंव उसके सभी नागरिकों की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिज्ञ, न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विष्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता को सुरक्षित करने के लिए, तथा उन सबसे व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की जनसंख्या को सुनिश्चितकरने वाला बन्धुत्व बढ़ाने के लिए दृढ़ निश्चय किया है।प्रस्तुत इकाई में समाज कल्याण प्रशासन के प्रमुख अवयव का विस्तृत वर्णन किया गया है।

4.9 अभ्यास प्रश्न

1. महिला कल्याण पर निबंध लिखिये?
2. बाल कल्याण का विस्तृत वर्णन करिये?
3. वृद्ध कल्याण एवं अनुसूचित जाति एवं जनजातियों का कल्याण पर प्रकाश डालिये?
4. अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण का वर्णन करिये?
5. विकलांगों के कल्याण और श्रम कल्याण पर निबंध लिखिये?

4.10 परिभाषिक शब्दावली

Truthness	सत्यता
Integrated granted	समेकित प्रदान
Immulisation	टीकाकरण
International women year	अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष
Backword areas	पछड़े इलाकों
Social welfare	सामाजिक कल्याण
Electronic units	इलाक्ट्रोनिक इकाइयो
Non government organization	गैर सरकारी संगठन

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.सिंह, डी० के०, भारत में समाज कल्याण प्रशासन : अवधारणा एवं विषय क्षेत्र, रॉयल बुक डिपो लखनऊ, वर्ष 2011.

2.सिंह, सुरेन्द्र, मिश्र, पी० डी०, समाज कार्य– इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियाँ, रॉयल बुक कम्पनी लखनऊ, वर्ष 2006.

3.सिंह, सुरेन्द्र, वर्मा, आर० बी० एस०, भारत में समाज कार्य का क्षेत्र, रॉयल बुक कम्पनी लखनऊ, वर्ष 2009.

इकाई – 5

सामाजिक नीति

Social Policy

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 परिचय

5.2 अवधारणा

5.3 क्षेत्र

5.4 सामाजिक नीति का उद्देश्य

5.5 समाजिक नीति में मूल्य और विचारधारा (ideology)

5.6 सामाजिक नीति एवं आर्थिक नीति में अन्तर

5.7 सामाजिक नीति के प्रारूप/उपागम

5.8 सार संक्षेप

5.9 अभ्यास प्रश्न

5.10 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.0 उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- सामाजिक नीति की अवधारणा एवं क्षेत्रों की जानकारी कर सकेंगे।
- सामाजिक नीति एवं आर्थिक नीति में अन्तर सम्बन्ध जान सकेंगे।
- सामाजिक नीति में मूल्यों एवं वैचारिकी का ज्ञान कर सकेंगे।
- संवैधानिक एवं वैधानिक रूप से घोषित सामाजिक नीति का ज्ञान कर सकेंगे।
- सामाजिक नीतियों के उपागमों/प्रारूपों की जानकारी कर सकेंगे।

5.1 परिचय

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए नियोजित विकास का सहारा लेना आवश्यक समझा गया क्योंकि यह अनुभव किया गया कि गरीबी, बेकारी जैसी अनेक गंभीर सामाजिक समस्यायें उचित विकास न होने के कारण ही हमारे समाज में व्यापक रूप से विद्यमान हैं। सामाजिक समस्याओं को और अधिक तेज करना तथा इससे होने वाले लाभों को आम जनता में न्यायपूर्ण ढंग से बाँटना आवश्यक समझा गया और इसलिए सरकार के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह अपनी सामाजिक नीति को उचित रूप से निर्धारित कर लागू करें।

5.2 सामाजिक नीति की अवधारणा

समाजिक नीति सामाजिक संरचना की कमियों को दूर करती हैं, असंतुलन को रोकती हैं तथा असंतुलन वाले क्षेत्र से इसे दूर करने का प्रयास करती हैं। गोखले (1975:35) के मत में सामाजिक नीति एक साधन है, जिसके माध्यम से आकाँक्षाओं तथा प्रेरकों को इस प्रकार विकसित किया जाता है कि सभी के कल्याण की वृद्धि हो सके। सामाजिक नीति द्वारा मानव एवं भौतिक दोनों प्रकार के संसाधनों में वृद्धि की जाती है जिससे पूर्व सेवायोजन की स्थिति उत्पन्न होती है तथा निर्धनता दूर होती है।

कर्णी (1959:2)

''नीति कथन उस ओढ़ने के वस्त्र के ताने–बाने के धागे हैं जिनको पिरो कर तैयार होता है। ....यह सूक्ष्म ढाँचा होता है जिसमें सूक्ष्म क्रियाओं को अर्थपूर्ण ढंग से समाजिह किया जाता है।''

लिंडग (1967:7)

''सामाजिक नीति सामाजिक जीवन के उन पहलुओं के रूप में मानी जाती है जिसकी उतनी अधिक विशेषता ऐसा विनिमय नहीं होता है जिसमें एक पाउण्ड की प्राप्ति उसके बदले में किसी चीज को देते हुये की जाती है जितना कि एक पक्षीय तांतरण जिन्हें प्रस्थिति, वैधता, अस्मिता या समुदाय के नाम पर उचित ठहराया जाता है।''

सामाजिक नीति के लक्ष्य एवं कार्य

सामाजिक नीति के निम्नलिखित लक्ष्य हैं :

1.वर्तमान कानूनों को अधिक प्रभावी बनाकर सामाजिक निर्योग्यताओं (Disabilities) को दूर करना।

2.जन सहयोग एवं संस्थागत सेवाओं के माध्यम से आर्थिक निर्योग्यताओं को कम करना।

3.बाधितों को पुनर्स्थापित करना।

4.पीड़ित मानवता के दुःखों एवं कष्टों को कम करना।

5.सुधारात्मक तथा सुरक्षात्मक प्रयासों में वृद्धि करना।

6.शिक्षा–दीक्षा की समुचित व्यवस्था करना।

7.जीवन स्तर में असमानताओं को कम करना।

8.व्यक्तित्व के विकास के अवसरों को उपलब्ध कराना।

9.स्वास्थ्य तथा पोषण स्तर को ऊँचा उठाना।

10.सभी क्षेत्रों में संगठित रोजगार का विस्तार करना।

11.परिवार कल्याण सेवाओं में वृद्धि करना।

12.निर्बल वर्ग के व्यक्तियों कोविषेश संरक्षण प्रदान करना।

13.उचित कार्य की शर्तों एवं परिस्थितियों का आश्वासन दिलाना।

14. कार्य से होने वाले लाभों का साम्यपूर्ण वितरण सुनिश्चित करना।

भारत सरकार ने सामाजिक नीति तथा नियोजित विकास के निम्नलिखित उद्देश्यों का उल्लेख किया है :

(1) उन दशाओं का निर्माण करना जिनसे सभी नागरिकों का जीवन स्तर ऊँचा उठ सके।

(2) महिलाओं तथा पुरूषों दोनों को समान रूप से विकास और सेवा के पूर्ण एवं समान अवसर उपलब्ध कराना।

(3) आधुनिक उत्पादन संरचना का विस्तार करने के साथ–साथ स्वास्थ्य, सफाई, आवास, शिक्षा तथा सामाजिक दशाओं में सुधार लाना।

5.3 क्षेत्र

समाजिक नीति के तीन प्रमुख क्षेत्र हैं, जिनके कार्यों को समुचित निदेशन देना तथा उन्हें पूरा करना आवश्यक समझा जाता है :

सामाजिक कार्यक्रम तथा उनसे सम्बन्धित कार्य :

(1) समाज सेवाओं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, पोषण,
आवास इत्यादि की लगातार वृद्धि एवं सुधार करना।

(2) निर्बल वर्ग तथा अनुसूचित जाति एवं जनजाति के कल्याण तथा उनके सामाजिक–आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना।

(3) स्थानीय स्तर पर पूरक (Supplementary) कल्याण सेवाओं के विकास के लिए नीति निर्धारित करना।

(4) समाज सुधार के लिए नीति प्रतिपादित करना।

(5) सामाजिक सुरक्षा के लिये नीति बनाना।

(6) सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन लाना–आय तथा धन के असमान वितरण में कमी लाना, आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण पर रोक लगाना तथा समान अवसर उपलब्ध कराने के लिये प्रयास करना।

❖ **समुदाय के विभिन्न वर्गों से सम्बन्धित सामाजिक नीति** :प्रत्येक ऐसे समुदाय में जहाँ औद्योगीकरण तथा आधुनिकीकरण तीव्रगति से होता है, दो वर्गों का अभ्युदय स्वाभाविक है। एक वर्ग ऐसा होता है जो उत्पन्न हुये नये अवसरों से पूरा लाभ उठाता है। उदाहरण के लिये, उद्योगपति, बड़े–बड़े व्यवसायी, प्रबन्धक तथा बड़े कृषक। दूसरा वर्ग वह होता है जो जीवन की मुख्य धारा से अलग होता है और जिसे वर्तमान योजनाओं के लाभ नहीं मिल पाते। उदाहरण के लिये, भूमिहीन खेतिहर मजदूर, जन–जातियों के सदस्य, मलिन बस्तियों के निवासी, असंगठित उद्योगों में लगे हुये मजदूर इत्यादि।

❖ **सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण समाज के विभिन्न वर्गों से सम्बन्धित सामाजिक नीति** :प्रत्येक समाज के कुछ ऐसे महत्वपूर्ण वर्ग होते हैं जिनका कल्याण आवश्यक माना जाता है। उदाहरण के लिये, कम आयु के बच्चे, विद्यालय का लाभ न उठा पाने वाले बच्चे, अध्ययन के दौरान ही कुछ अपरिहार्य कारणों से विद्यालय को छोड़कर चले जाने वाले बच्चे तथा नौजवान।

5.4सामाजिक नीति का उद्देश्य

सामान्य रूप से सामाजिक नीति का उद्देश्य ग्रामीण तथा नगरीय, धनी तथा निर्धन, समाज के सभी वर्गों को अपना जीवन–स्तर ऊँचा उठाने के अवसर प्रदार करना तथा विभिन्न गम्भीर सामाजिक समस्याओं का समुचित निदान करते हुये उनका निराकरण करना है ताकि किसी भी वर्ग के साथ अन्याय न हो। तारलोक सिंह का मत है, ''सामाजिक नीति का मूल उद्देश्य ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करना होना चाहिये जिनमें प्रत्येक क्षेत्र, नगरीय अथा ग्रामीण तथा अपनी विशिष्ट एवं पहचाने जाने योग्य समस्याओं सहित प्रत्येक समूह अपने को ऊपर उठाने, अपनी सीमाओं को नियंत्रित करने तथा अपनी आवासीय स्थितियों एवं आर्थिक अवसरों को उन्नत बनाने और इस प्रकार समाज सेवाओं के मौलिक अंग बनने में समर्थ हो सके।''

❖ **सामाजिक नीति से सम्बन्धित प्रमुख कारक** : सामाजिक नीति का निर्धारण करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है :

(1) विकास स्वयं में एक प्रक्रिया है। यह सतत् चलने वाली सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के एक इच्छित दिशा में निदेशित किये जाने पर प्रारम्भ होती है। यह आवश्यक अभिवृद्धि एवं सामाजिक प्रगति दोनों के लिये आवश्यक है। सामाजिक परिवर्तन की मूलभूत प्रक्रिया पर आधारित होने के कारण विकास की प्रक्रिया का सही दिशा निदेशन आवश्यक है।

(2) विकास के सिद्धान्तों को समाज की स्थिति को ध्यान में रखते हुए अपनाया जाना चाहिये। किसी भी विकासशील अथवा विकसित देश को किसी अन्य देश की परिस्थितियों में सफल सिद्ध हुई विकास की पद्धतियों एवं उपकरणों का अंधा अनुकरण नहीं करना चाहिये।

(3) सामाजिक नीति के निर्धारण तथा कार्यान्वय में जन सहभागिता,विषेश रूप से युवा सहभागिता, आवश्यक होती है क्योंकि ऐसी स्थिति में जो भी योजनायें एवं कार्यक्रम बनाये जाते हैं उनके प्रति लोगों का लगाव होता है और वे इनकी सफलता के लिये तन, मन और धन प्रत्येक प्रकार से अपना अधिक से अधिक योगदान देते हैं।

5.5 सामाजिक नीति में मूल्य एवं विचार धारा

क्योंकि सामाजिक नीति का प्रमुख उद्‌देश्य लोगों को सामाजिक न्याय दिलाते हुये चौमुखी सामाजिक – आर्थिक विकास करना है, इसलिए इसे प्रभावपूर्ण बनाने की दृष्टि से सामाजिक नीति में मानवीय मूल्यों एवं वैचारिकी का होना आवश्यक है जिसे निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है :

- किसी भी प्रजातांत्रिक व्यवस्था में राज्य को अपना कल्याणकारी रूप परावर्तित करने के लिये इसके माध्यम से सामाजिक नीति का निर्माण करना होगा।
- सामाजिक नीति के समुचित प्रतिपादन हेतु आवश्यक तथ्यों का संग्रह करने के लिए सामाजिक सर्वेक्षण तथा मुल्यांकन को समुचित महत्व प्रदान करना होगा।
- शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, मनोरंजन जैसी समाज सेवाओं तथा निर्बल एवं शोषण का सरलता पूर्वक शिकार बनने वाले वर्गों के लिये अपेक्षित सेवाओं के बीच आवश्यक संतुलन स्थापित करना होगा ताकि समाज का समुचित विकास सम्भव हो सके।

- राज्य को समाज सेवियों एवं समाज कार्यकर्ताओं के प्रति अपने वर्तमान सौतेले व्यवहार को बदलते हुए उन्हें इच्छित सामाजिक स्वीकृति प्रदान करनी होगी।
- राज्य को समाज – कल्याण प्रशासन के क्षेत्र में समाज कार्यकर्ताओं तथा अवैतनिक समाज – सेवकों को उचित एवं सम्मानजनक स्थान देना होगा।
- राज्य को सामाजिक परिवर्तन की अनवरत प्रक्रिया के कारण सामाजिक परिस्थितियों में होने वाले निरन्तर परिवर्तन की पृष्ठभूमि में सभी समाज – सेवियों, समाज कार्यकर्ताओं, अधिकारियों तथा संस्थाओं के कर्मचारियों के लिए समुचित प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी होगी।
- सामाजिक नीति का निर्धारण इस बात को ध्यान रखकर करना होगा कि आर्थिक दशाओं में सुधार तभी हो सकता है जबकि सामाजिक दशाओं में वांछित परिवर्तन लाया जाये।

5.6 सामाजिक नीति एवं आर्थिक नीति में अन्तर

- विकास सम्बन्धी क्षमता की जाँच – पड़ताल, राष्ट्रीय संसाधनों का सर्वेक्षण, वैज्ञानिक शोध तथा विपणन सम्बन्धी शोध।
- सार्वजनिक तथा निजी एजेन्सियों के माध्यम से उपयुक्त अवस्थापना यथा–जल, विद्युत, परिवहन तथा संचार की व्यवस्था।
- विशेषीकृत प्रशिक्षण सुविधाओं तथा उपयुक्त सामान्य शिक्षा की व्यवस्था ताकि आवश्यक कुशलताओं को सुनिश्चित किया जा सके।
- आर्थिक क्रिया के कानूनी ढाँचे में,विषेश रूप से भूमि सम्बन्धी पट्टों, निगमों तथा व्यापारिक लेन – देन से सम्बन्धित नियमों में सुधार।
- और अधिक संख्या में तथा और अधिक प्रभावपूर्ण बाजारों का निर्माण जिसके अन्तर्गत बाजारों, विनिमय, बैंकिंग, बीमा तथा अन्य कई सुविधायें सम्मिलित हैं।
- सम्भावित स्वदेशी और विदेशी उद्यमियों का पता लगाते हुए उनके लिए सहायता का प्रावधान।
- आर्थिक प्रलोभन तथा आर्थिक संसाधनों के दुरूपयोग के विरूद्ध आवश्यक नियंत्रण लगाते हुए उपलब्ध संसाधनों के सर्वोत्तम ढंग से सदुपयोग किये जाने का प्रोत्साहन।
- निजी तथा सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों में बचत की अभिवृद्धि को प्रोत्साहन।

अन्य इस प्रकार हैः–

(1) पूर्ण रोजगार प्रदान करना

आर्थिक एवं तकनीकी विकास के परिणामस्वरूप बेकारी बढ़ती है। इसलिए आर्थिक नीति को इस प्रकार निर्धारित किया जाना चाहिए ताकि रोजगार के अधिक अवसर प्राप्त हो सकें।

(2) असमानताओं को दूर करना

मिश्रित अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र के अनेक अर्थों में निजी क्षेत्र पर आश्रित होने के कारण आर्थिक संसाधन कुछ व्यक्तियों के पास संकेन्द्रित हो जाते हैं जिसके कारण निर्धन और अधिक निर्धन हो जाता है तथा धनी और अधिक धनी। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि राज्य कुछ ऐसे कदम उठाये ताकि आर्थिक असमानतायें कम से कम हो सकें और धन तथा आय का साम्यपूर्ण वितरण संभव हो सके। समाज सेवाओं का विकास तथा इनके विस्तार क्षेत्र का प्रसार इसीलिये किया जाता है ताकि यह असमानतायें दूर हो सकें।

(3) निर्धनता को समाप्त करना

मिश्रित अर्थव्यवस्था में बढ़ती हुई आर्थिक असमानतायें निर्धनों को और अधिक निर्धन बनाती है और उन्हें ऐसी स्थिति में संतोष का अनुभव करने के लिए बाध्य करती हैं। निर्धनता को तब तक दूर नहीं किया जा सकता जब तक कि इस बात को ध्यान में रखकर आर्थिक नीति का निर्धारण न किया जाये।

(4) संसाधनों का समुचित प्रयोग

विकासशील देशों में संसाधनों – भौतिक तथा मानवीय दोनों, के सीमित होने के कारण आर्थिक उन्नति के लिए यह आवश्यक होता है कि जो भी संसाधन उपलब्ध हैं उनका अधिक से अधिक सदुपयोग किया जाये और किसी भी स्थिति में इन संसाधनों का दुरूपयोग न होने दिया जाये।

(5) संतुलित क्षेत्रीय विकास

किसी भी देश के विभिन्न क्षेत्र आवश्यकताओं तथा संसाधनों दोनों ही दृष्टियों से भिन्न होते हैं। कुछ क्षेत्र विकास सम्बन्धी प्रयासों की अपेक्षा अधिक रखते हैं और कुछ कम। इसलिए यह आवश्यक होता है कि उन क्षेत्रों के विकास पर अधिक ध्यान दिया जाये जो सापेक्षतया पिछड़े हुये हैं।

(6) विकास की तीव्र गति

कुछ परिस्थितियों में सम्पूर्ण देश में तथा कुछ विशिष्ट प्रकार के क्षेत्रों के अन्तर्गत विकास के तीव्रगति से चलाये जाने की आवश्यकता होती है। यह तभी संभव है जबकि आर्थिक नीति में इस आशय के विशिष्ट प्रावधान किये जायें।

(7) आर्थिक स्थिरता बनाये रखना

अनेक ऐसे आन्तरिक एवं बाह्य कारक तथा शक्तियां पायी जाती हैं जो अर्थव्यवस्था में अस्थिरता उत्पन्न करती हैं। उदाहरण के लिए, कुछ विदेशी शक्तियों की द्वेषपूर्ण तथा निहित स्वार्थ वाली प्रवृत्ति, अनेक प्रकार के आकस्मिक संकट इत्यादि। इसलिए देश में आर्थिक अस्थिरता का अनुरक्षण आर्थिक नीति का एक स्पष्ट उद्देश्य होना चाहिए।

5.4 सामाजिक एवं आर्थिक नीति की दिशायें

विकास की प्रक्रिया को आधुनिकीकरण की ओर ले जाते समय दो प्रश्न उठते हैं : 1. विकास की नीति कैसी हो? तथा 2. विकास के अवांछनीय परिणामों को किस प्रकार की नीति का आश्रय लेते हुए रोका जा सकता है? सामुदायिक सहभागिता किसी भी आर्थिक कार्यक्रम की सफलता की एक आवश्यक शर्त है क्योंकि बाहर से थोपा हुआ कोई भी कार्यक्रम इसलिए सफल नहीं हो पाता क्योंकि इसके प्रति लोगों का लगाव नहीं होता और साथ ही साथ वह उनकी इच्छाओं तथा आवश्यकताओं का परावर्तन भी नहीं करता। इसलिए विकास के माध्यम से आधुनिकीकरण का लक्ष्य तभी प्राप्त हो सकता है जबकि इससे सम्बन्धित सामाजिक एवं आर्थिक नीति उचित हो। इस प्रकार की नीति की निम्नलिखितविषेशतायें होती हैं :

(1) नये अवसरों यथा पानी, विकास सम्बन्धी उपकरण, बीज इत्यादि को समुदाय की इच्छा पर पूरी तरह से छोड़ देने वाली नीति

प्रायः यह देखा जाता है कि प्रत्येक ऐसी नीति असफल हो जाती है जिसे लोग स्वीकार करने तथा उपयोग में लाने के लिए तैयार न हों क्योंकि यदि वे उसे अपने लिए लाभकारी नहीं मानते अथवा इसका उपयोग करना नहीं जानते तथा इसके परिणामस्वरूप किसी प्रकार की असुविधा अनुभव करते हैं तो वे निश्चित रूप से उसका बहिष्कार करेंगे। ऐसी परिस्थिति में नीति का असफल होना और भी अधिक अवश्यमभावी हो जाता है जबकि इसके कार्यान्वयन का उत्तरदायित्व ऐसे व्यक्ति (यों) को दे दिया जाता है जो सम्बन्धित सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से अनभिज्ञ होता (ते) है।

(2) जीवन के किसी न किसी अंश में आवश्यक रूप से परिवर्तन लाने वाली नीति

जब तक नीति ऐसी नहीं होती जो सम्बन्धित लोगों के जीवन के किसी न किसी पहलू में कोई न कोई परिवर्तन अवश्य उत्पन्न करे, तब तक इसका सफल होना संदेहास्पद रहता है। परिवर्तन के ये आयाम उनके हो सकते हैं। यथा, गांवों को शहरों से जोड़ देना, शिक्षा को अनिवार्य बना देना इत्यादि। यहां पर यह

उल्लेखनीय है कि जहां परिवर्तनकारी नीतियों का स्वागत होता है वहीं कुछ ऐसे भी परम्परावादी व्यक्ति होते हैं जो इनका विरोध करते हैं। इसलिए आवश्यक सावधानी बरतते हुये सामाजिक नीति इस प्रकार निर्धारित की जानी चाहिए ताकि यह परिवर्तन क्रांतिकारी न होकर उद्विकासीय हो।

(3) सम्भावित अवांछनीय परिणामों को पूर्णरूपेण स्पष्ट करने वाली नीति

सामाजिक – आर्थिक विकास की प्रक्रिया में अनेक अवसर आते हैं जिन पर अवांछनीय कारकों के सक्रिय होने का खतरा रहता है। किसी भी प्रकार के परिवर्तन के होने पर मूल्य बदलते हैं तथा व्यवहार के प्रतिमानों में परिवर्तन होता है और कभी–कभी सांस्कृतिक – आध्यात्मिक शून्यता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति परिवर्तनकारी नीति को अभिशाप समझने लगता है। उदाहरण के लिए, औद्योगीकरण प्रक्रिया का परिणाम परिवार की संस्था के स्वरूप एवं प्रकार्यों में कुछविषेश प्रकार के परिवर्तन हैं जिसके प्रति लोगों को अवगत कराया जाना इसलिए आवश्यक है ताकि उनके अन्तर्गत औद्योगीकरण के विरूद्ध मनोवृत्तियां एवं मूल्य न बन सकें, और यह कार्य सामाजिक नीति के माध्यम से ही समाज वैज्ञानिक द्वारा प्रभावपूर्ण रूप से किया जा सकता है। इस प्रकार सामाजिक नीति को सम्भावित अवांछनीय परिणामों की रोक–थाम के लिए अपेक्षित रणनीति को भी स्पष्ट करना चाहिए।

(4) उचित मार्ग–दर्शन करने वाली नीति

विकास के परिणामस्वरूप आकस्मिकताओं एवं उनके घटित होने की संभावना भी बढ़ जाती है जिसके परिणामस्वरूप असुरक्षा की भावना में वृद्धि होती है। इनमें से सर्वाधिक भयावह स्वयं जीवन सम्बन्धी असुरक्षा है जिससे बचने के लिए व्यक्ति सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार के अनेक समूहों का निर्माण करता है और नकारात्मक समूहों के चंगुल में फंस जाने पर स्थिति कहीं अधिक भयावह हो जाती है। इसीलिए सामाजिक नीति ऐसी होनी चाहिए जिसके अन्तर्गत विकास के परिणामस्वरूप असुरक्षा की भावना का शिकार हुए व्यक्ति को आवश्यक मार्गदर्शन भी प्राप्त हो सके।

(5) मानवीय मूल्यों का अनुरक्षण करने वाली नीति

भौतिकवाद, व्यक्तिवाद, सुखवाद, प्रकार्यात्मक उपयोगिता तथा तार्किकता के वर्तमान युग में मानवीय मूल्यों के लिए गंभीर संकट उत्पन्न हो गया है। इनकी रक्षा तभी की जा सकती है जबकि निर्धारित की जाने वाली नीति में इस आशय के प्रावधान किये जायें।

(6) परम्परागत प्रकार्यात्मक सामाजिक संस्थाओं को अनुरक्षित करने वाली नीति

विकास का तात्पर्य यह नहीं होता कि उन सामाजिक संस्थाओं को भी नष्ट कर दिया जाए जो प्रकार्यात्मक दृष्टि से समाज के लिए उपयोगी हैं। बल्कि सामाजिक नीति ऐसी होनी चाहिए जो स्थान एवं काल की मांग के अनुसार नवीन सामाजिक संस्थाओं का सृजन करने के साथ–साथ इन प्राचीन संस्थाओं को भी अनुरक्षित करे।

6 सामाजिक नीति तथा आर्थिक नीति में अन्तर्सम्बन्ध / भिन्नताऐं

वास्तव में समाज की उन्नति तभी हो सकती है जबकि उसका सर्वांगीण विकास हो। यह एक तथ्य है कि समाज के अन्तर्गत पायी जाने वाली विभिन्न सामाजिक इकाइयों तथा उनकी स्थितियों में परस्पर निर्भरता है क्योंकि वे एक सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्सम्बन्धित अंग हैं। इसलिए किसी एक क्षेत्र को विकसित करने के लिए समाज के अन्य क्षेत्रों तथा इनसे सम्बन्धित इकाइयों और उनकी स्थितियों पर भी ध्यान देना पड़ता है। उदाहरणर्थ, यदि किसी नयी प्रौद्योगिकी की सहायता से आर्थिक समृद्धि सम्भव है तो हमें यह भी देखना पड़ता है कि इस प्रौद्योगिकी के अन्य सम्भावित परिणाम क्या होंगे? लोगों की इसके प्रति मनोवृत्ति क्या होगी? इसको सफलतापूर्वक अपनाने की दृष्टि से लोगों में विद्यमान ज्ञान एवं निपुणताओं की स्थिति क्या है? इत्यादि। इससे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक नीति के आर्थिक परिणाम होते हैं और आर्थिक नीति के सामाजिक परिणाम होते हैं और इन दोनों को एक–दूसरे से पूर्ण पृथकता की स्थिति में न देखकर पूरक अन्योन्याश्रितता की स्थिति में देखा जाना चाहिए।

सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों में कुछ समानतायें तथा विभिन्नतायें ये हैं :

समानतायें

(1) उद्देश्यों में समानता

सामाजिक तथा आर्थिक नीति दोनों का ही उद्देश्य सामाजिक जीवन को अधिक सुख एवं शान्तिमय बनाना है। यह तभी सम्भव है जबकि सामाजिक एवं आर्थिक दोनों प्रकार की परिस्थितियों में इच्छित परिवर्तन लाये जायें। इन दोनों का एक दूसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य सामाजिक – आर्थिक न्याय प्रदान करना है। यदि आर्थिक नीति को सामाजिक नीति से अलग कर दिया जाये तो आर्थिक समानता के बजाय असमानता अधिक तेजी से बढ़ने लगती है। उदाहरण के लिए, यदि बड़े–बड़े उद्योगपतियों को स्वच्छन्दता–पूर्वक अपने उद्योगों को विकसित करने दिया जाए तो छोटे उद्यमी नष्ट हो जायेंगे और आर्थिक विषमता अत्यधिक बढ़ जायेगी। तीसरा

सामान्य उद्देश्य, निर्धनता को दूर करना तथा मानव एवं भौतिक संसाधनों में वृद्धि करना है।

(2) विषय वस्तु की समानता

सामाजिक तथा आर्थिक दोनों ही नीतियों का निर्धारण लोगों के जीवन–स्तर को ऊँचा उठाने की दृष्टि से समाज के हित में किया जाता है और इस प्रकार दोनों का ही कार्य क्षेत्र व्यक्ति, समूह, समुदाय तथा सम्पूर्ण समाज होता है।

(3) कार्यान्वयन सम्बन्धी व्यवस्था में समानता

सामाजिक तथा आर्थिक दोनों प्रकार की नीतियों का कार्यान्वयन अनेक ऐसे विभागों के माध्यम से किया जाता है जो दोनों प्रकार के कार्य एक ही साथ करते हैं। जैसे, ग्राम्य–विकास विभाग, समाज–कल्याण विभाग इत्यादि।

(4) जन सहभागिता की आवश्यकता

सामाजिक तथा आर्थिक दोनों प्रकार की नीतियों की सफलता के लिए जन सहभागिता आवश्यक है क्योंकि जब तक इन्हे जनता द्वारा स्वीकार नहीं किया जायेगा तब तक जनता इन्हें अपना नहीं समझेगी और इनके कार्यान्वयन में अपना योगदान नहीं देगी।

विभिन्नतायें

(1) प्रणाली की भिन्नता

सामाजिक नीति का निर्धारण विश्वासों, आस्थाओं, मूल्यों, मनोवृत्तियों इत्यादि को ध्यान में रखते हुए किया जाता है जबकि आर्थिक नीति का निर्धारण आर्थिक क्रिया के लिए आवश्यक तत्वों की उपलब्धता के आधार पर किया जाता है।

(2) उपागम में भिन्नता

सामाजिक नीति समाज में सुधार व परिवर्तन को अधिक महत्व देती है जबकि आर्थिक नीति आर्थिक कारकों यथा सकल राष्ट्रीय उत्पाद एवं प्रति व्यक्ति आय पर अधिक बल देती है।

(3) कार्य क्षेत्र में भिन्नता

सामाजिक नीति का कार्य क्षेत्र शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, मनोरंजन जैसे क्षेत्र हैं जिनसे समाज के सभी वर्गों के लोगों,विषेश रूप से निर्बल एवं शोषण किये जाने योग्य वर्गों, को लाभ होता है, जबकि आर्थिक नीति का कार्यक्षेत्र उत्पादन, उपभोग, विनिमय, वितरण तथा राजस्व होता है।

संवैधानिक सामाजिक नीति

भारत की सामाजिक नीति से अभिप्राय क्रिया के ऐसे व्यक्त मार्ग से है जो भारत में समाज सेवाओं अर्थात् ऐसी सेवाओं जो जनसंख्या के सभी वर्गों के व्यक्तियों के लिए उनके व्यक्तित्व के समुचित विकास के लिए उपयुक्त अवसर उपलब्ध कराने हेतु प्रत्यक्ष रूप से प्रदान की जानी है, के आयोजन का मार्गदर्शन करता है। भारत की सामाजिक नीति के दो महत्वपूर्ण स्रोत हैं :

(1) भारतीय संविधान, तथा

(2) भारत की पंचवर्षीय योजनायें।

संविधान के चौथे खण्ड–राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त में सामाजिक नीति का वर्णन स्पष्ट रूप से किया गया है :

अनुच्छेद 38 के अन्तर्गत यह कहा गया है :

''{(1)} राज्य उतने अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से जितना यह कर सकता है, एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना एवं संरक्षण द्वारा लोगों के कल्याण के प्रोत्साहन हेतु प्रयास करेगा जिसमें राष्ट्रीय धारा की संस्थाओं में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय लाया जायेगा।

{(2)} राज्य विशिष्ट रूप से न केवल विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले अथवा विभिन्न व्यवसायों में लगे हुये व्यक्तियों बल्कि लोगों के समूहों में भी आय की असमानताओं को कम करने हेतु प्रयत्न तथा स्थिति, सुविधाओं एवं अवसरों में असमानताओं के निवारण हेतु प्रयास करेगा।''

अनुच्छेद 39 में प्रावधान किया गया है : ''राज्य विशिष्ट रूप से अपनी नीति को प्राप्त करने हेतु निदेशित करेगा –

(क) यह कि नागरिकों, पुरूषों एवं महिलाओं, को समान रूप से समुचित आजीविका के कमाने के साधन का अधिकार प्राप्त हो,

(ख) यह कि समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व एवं नियंत्रण इस प्रकार वितरित हो कि सामान्य निहित की सर्वोत्तम पूर्ति हो सके,

(ग) यह कि अर्थव्यवस्था का संचालन सामान्य अहित हेतु सम्पत्ति एवं उत्पादन के साधनों का संकेन्द्रण उत्पन्न न करे,

(घ) यह कि पुरूषों एवं महिलाओं दोनों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन हो,

(ड़) यह कि श्रमिकों, पुरूषों एवं महिलाओं के स्वास्थ्य एवं शक्ति तथा बच्चों की कोमल आयु का दुरूपयोग न हो और यह कि नागरिक आर्थिक आवश्यकता द्वारा अपनी आयु एवं शक्ति के लिए अनुपयुक्त कार्यों को करने के लिए बाध्य न किये जायें,

(च) यह कि बच्चों को स्वस्थ रूप से तथा स्वतंत्रता एवं सम्मान की स्थिति में विकसित होने के अवसर एवं सुविधायें प्रदान की जायें और यह कि बाल्यावस्था एवं युवावस्था का शोषण एवं नैतिक तथा भौतिक परित्याग के विरूद्ध संरक्षण किया जाय।''

अनुच्छेद 39 ए के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गयी है : ''राज्य इस बात की व्यवस्था करेगा कि वैधानिक व्यवस्था का संचालन समान अवसर के आधार पर न्याय को प्रोत्साहित करता हो औरविषेश रूप से उपयुक्त विधान अथवा योजना अथवा अन्य किसी प्रकार से निःशुल्क कानूनी सहायता यह सुनिश्चित करने के लिए करेगा कि न्याय प्राप्त करने के अवसरों से कोई नागरिक आर्थिक अथवा अन्य निर्योग्यताओं के कारण वंचित न रह सके।''

अनुच्छेद 41 में कहा गया है : ''अपनी आर्थिक क्षमता एवं विकास की सीमाओं के अधीन राज्य कार्य, शिक्षा एवं बेकारी, वृद्धावस्था, बीमारी एवं असमर्थता की स्थितियों में तथा अवांछनीय आवश्यकता की अन्य स्थितियों में जन सहायता अधिकार को प्राप्त कराने हेतु प्रभावपूर्ण प्रावधान करेगा।''

अनुच्छेद 42 में यह व्यवस्था की गयी है : '' राज्य कार्य के लिए न्यायपूर्ण एवं मानवीय परिस्थितियों को प्राप्त करने तथा मातृत्व सहायता के लिए प्रावधान करेगा।''

अनुच्छेद 43 में यह कहा गया है : ''उपयुक्त विधान अथवा आर्थिक संगठन अथवा अन्य किसी प्रकार से राज्य सभी श्रमिकों, कृषि से सम्बन्धित, औद्योगिक अथवा अन्य के लिए कार्य, जीवन निर्वाह मजदूरी, अच्छे जीवन का आश्वासन प्रदान करने वाली कार्य की शर्तों तथा रिक्त समय एवं सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवसरों को पूर्ण आनन्द दिलाने हेतु प्रयास करेगा, औरविषेश रूप से, राज्य ग्रामीण अंचलों में व्यक्तिगत अथवा सरकारी आधार पर कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित करने हेतु प्रयास करेगा।''

अनुच्छेद 43 ए में यह प्रावधान किया है : ''उपयुक्त विधान द्वारा अथवा अन्य किसी प्रकार से राज्य उद्योग के प्रतिष्ठानों, संस्थाओं अथवा अन्य संगठनों के प्रबन्ध में श्रमिकों की साझेदारी प्राप्त करने हेतु कदम उठायेगा।''

अनुच्छेद 45 में कहा गया है : ''इस संविधान के लागू होने के 10 साल की अवधि के अन्तर्गत राज्य सभी बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा जब तक कि ये 14 वर्ष की आयु को पूरा न कर लें, के प्रावधान हेतु प्रयास करेगा।''

अनुच्छेद 46 में व्यवस्था की गयी है : ''राज्य कमजोर वर्ग के लोगों औरविषेश रूप से अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों काविषेश

सावधानी के साथ संवर्द्धन करेगा और सामाजिक अन्याय तथा शोषण के सभी प्रकारों के विरूद्ध संरक्षण प्रदान करेगा।''

अनुच्छेद 47 में कहा गया है : ''राज्य अपने लोगों के पोषण के स्तर और जीवन के स्तर को ऊँचा उठाने और जन स्वास्थ्य में सुधार लाने को अपना प्राथमिक कर्तव्य समझेगा औरविषेश रूप से राज्य दवा के लिए मादक पेयों एवं ऐसी औषधियों एवं दवाओं के प्रयोग पर निषेध लागू करने का प्रयास करेगा जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं।''

पंचवर्षीय योजनाओं में सामाजिक नीति

भारतीय संविधान के अन्तर्गत व्यक्त की गयी सामाजिक नीति को लागू करने तथा विकास की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने के लिए पंचवर्षीय योजनायें बनायी गयी हैं। इनमें सामाजिक नीति के विविध पहलुओं यथा–स्वास्थ्य, आवास, शिक्षा, मनोरंजन इत्यादि से सम्बन्धित नीतियों का उल्लेख किया गया है। सामान्यतया इन सभी योजनाओं में आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति, निर्धनता के उन्मूलन, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, सम्पत्ति, धन तथा अवसरों की असमानता में कमी, पूँजी के एकाधिकार की समाप्ति, मानव संसाधनों के विकास, व्यक्तियों की मनोवृत्तियों तथा संस्थाओं की संरचनाओं में समाजवादी व्यवस्था के अनुरूप आवश्यक परिवर्तन, विकास सम्बन्धी नीति के निर्धारण एवं कार्यान्वयन में जन–सहभागिता, निर्बल वर्गों के कल्याण में वृद्धि, विकास के समान अवसर एवं विकास की प्रक्रिया से प्राप्त होने वाले लाभों के साम्यपूर्ण वितरण की व्यवस्था की गयी है।

पहली पंचवर्षीय योजना में यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि विकास की दर एवं स्वरूप में क्षेत्रीय संतुलन तथा अनवरत वृद्धि पर उचित ध्यान दिया जायेगा। दूसरी पंचवर्षीय योजना में संतुलित विकास की आवश्यकता पर बल दिया गया और इसके लिए पिछड़े क्षेत्रों में शक्ति, जलपूर्ति, परिवहन तथा सिंचाई सम्बन्धी सुविधाओं को उपलब्ध कराने, ग्रामीण तथा लघु उद्योगों का प्रसार करने तथा नये उद्यमों के स्थान का निर्धारण करने के कार्यक्रम सम्मिलित किये गये। तीसरी पंचवर्षीय योजना में असमानताओं को दूर करने के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु शक्ति, परिवहन, सिंचाई, शिक्षा एवं प्रशिक्षण तथा ग्रामीण एवं लघु उद्योगों का विकास करने से सम्बन्धित कार्यक्रम सम्मिलित किये गये।

1964 में आय वितरण एवं जीवन स्तर समिति (Committee on Distribution of Income and Levels of Living) ने अपने प्रतिवेदन में यह स्पष्ट किया कि आय की असमानता में कमी होने के स्थान पर वृद्धि हुई है और यह वृद्धि ग्रामीण अंचलों की तुलना में नगरों में कहीं अधिक हुई है। इस पृष्ठभूमि में चौथी पंचवर्षीय योजना

में न्याय के साथ वृद्धि (Growth with Justice) वाक्याँश का प्रयोग किया गया। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य समाजवादी समाज की स्थापना करना, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करना तथा आर्थिक क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना रखा गया। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए आय तथा सम्पत्ति में अधिक समानता लाने, आर्थिक क्षेत्र में एकाधिकार को कम करने, समाज में सापेक्षतया कम सुविधा प्राप्त वर्गों, विशिष्ट रूप से, अनुसूचित जातियों एवं जन–जातियों को आर्थिक विकास के और अधिक लाभ प्राप्त कराने पर बल दिया गया। पांचवीं पंचवर्षीय योजना में निर्धनता उन्मूलन और आत्मनिर्भरता की प्राप्ति के दो प्रमुख उद्देश्य रखे गये और निर्धनों के लिए एक न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित की व्यवस्था की गई :

1. 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों को उनके घरों के पास पाये जाने वाले सीानों में प्राथमिक शिक्षा की सुविधायें प्रदान करना,
2. सभी क्षेत्रों में न्यूनतम सामुदायिक स्वास्थ्य की सुविधायें प्रदान करना जिनके अधीन निवारक, उपचारात्मक, परिवार नियोजन सम्बन्धी तथा पोषाहार सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा रोग की व्यापकता का आरम्भिक स्थिति में ही पता लगाया जाना औश्र खतरनाक रोगियों को बड़े चिकित्सालयों में भेजा जाना सम्मिलित है,
3. बहुत अधिक कमी वाले गांवों में पीने के पानी की पूर्ति करना,
4. 1500 या इससे अधिक आबादी वाले गांवों में सड़कों का निर्माण करना,
5. ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीन मजदूरों को आवास हेतु विकसित भूखण्ड प्रदान करना,
6. मलिन बस्तियों के वातावरण में सुधार करना, तथा
7. ग्रामीण विद्युतीकरण का प्रसार करना ताकि इसके अन्तर्गत ग्रामीण जनसंख्या के 30–40 प्रतिशत को सम्मिलित किया जा सके।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में निर्धनता उन्मूलन एवं आत्मनिर्भरता की प्राप्ति का उद्देश्य रखा गया। इस योजना में कृषि एवं सिंचाई, शक्ति, उद्योग तथा खनिज पदार्थों, ग्रामीण एवं लघु उद्योगों, परिवहन एवं संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण नियोजन एवं पोषाहार, नगरीय विकास, आवास एवं जलपूर्ति, शिल्पकार प्रशिक्षण एवं श्रम कल्याण, पर्वतीया एवं जनजातीय क्षेत्रों, पिछड़े वर्गों, समाज कल्याण एवं पुनर्वासन तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक कार्यक्रम आयोजित किये जाने की व्यवस्था की गई।

छठीं पंचवर्षीय योजना में निर्धनता उन्मूलन के उद्देश्य को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गयी। विशिष्ट रूप से, अर्थव्यवस्था की अभिवृद्धि की दर को बढ़ाने, संसाधनों के उपयोग में कुशलता के प्रोत्साहन तथा उत्पादकता में वृद्धि, आधुनिकीकरण, गरीबी एवं बेकारी में लगातार कमी, ऊर्जा के घरेलू स्रोतों का तीव्रगति से विकास, लोगों–विशेष रूप से, आर्थिक एवं सामाजिक रूप से बाधित जनसंख्या के जीवन की गुणवत्ता में सुधार, जननीतियों एवं सेवाओं में पुनर्वितरण पर अधिक बल, राष्ट्रीय असमानताओं में अनवरत कमी, जनसंख्या नियंत्रण, परिस्थितिकीय एवं पर्यावरणात्मक बहुमूल्य संसाधनों के संरक्षण एवं विकास की प्रक्रिया में सक्रिय सहभागिता के उद्देश्य निर्धारित किये गये। निर्धनता को दूर करने के लिए इसका पता लगाने तथा परिमापन करने, यथार्थवादी लक्ष्यों को निर्धारित करने तथा इन लक्ष्यों के अनुरूप विशिष्ट कार्यक्रमों का निर्माण करने के अभिगम का उल्लेख किया गया। रोजगार प्रदान करने हेतु लाभपूर्ण ढंग से सेवायाजित व्यक्तियों की अभिवृद्धि की दर को बढ़ाते हुए अर्द्ध बेकारी को कम करने तथा सामान्य स्थिति के आधार पर बेकारी को कम करने जिसे सामान्य रूप से खुली बेकारी (Open Unemployment) के नाम से जाना जाता है, की बात कही गयी। भूमिहीन परिवारों के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम रोजगार दिलाने की दिशा में इस योजना के उल्लेखनीय कार्यक्रम हैं। इस योजना में शिक्षा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, आवास तथा नगरीय विकास, जलपूर्ति तथा सफाई, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण, समाज कल्याण, पोषण तथा श्रम कल्याण सम्बन्धी कार्यक्रम चलाये गये। न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के माध्यम से लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति का आश्वासन प्रदान किया गया।

सतवीं पंचवर्षीय योजना में खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि, रोजगार के अवसरों में वृद्धि और उत्पादकता में वृद्धि को और अधिक बढ़ाने का उद्देश्य रखा गया। ‘‘सातवीं योजना की विकास सम्बन्धी रणनीति का प्रमुख तत्व उत्पादनकारी रोजगार (Productive Employment) उत्पन्न करना है। इसे सिंचाई की सुविधाओं की उपलब्धता को बढ़ाते हुए कम उत्पादकता वाले क्षेत्रों में तथा छोटे किसानों में नवीन कृषि सम्बन्धी प्रौद्योगिकी के प्रसार द्वारा सम्भव बनायी गयी सघन खेती में वृद्धि, उत्पादनकारी सम्पत्ति (Productive Assets) के निर्माण में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के उपायों, आवास, नगरीय सुख–सुविधाओं, सड़कों और ग्रामीण अवस्थापना (Infrastructure) का प्रावधान करने हेतु श्रम

सघन निर्माण क्रियाओं के प्रसार तथा औद्योगिक अभिवृद्धि के प्रतिमान में परिवर्तनों के माध्यम से इसे प्राप्त किया जायेगा।

सतवीं योजना में कृषि सम्बन्धी शोध एवं शिक्षा, सहकारिता, पशुपालन एवं दुग्ध पालन, मत्स्य पालन, वन एवं वन्य जीव, ग्रामीण ऊर्जा, बृहत एवं मध्यम सिंचाई कार्यक्रम, लघु सिंचाई, कमाण्ड क्षेत्र विकास, बाढ़–नियन्त्रण, ग्रामीण एवं लघु उद्योगों, सेवायोजन, जनशक्ति नियोजन, ऊर्जा, उद्योग एवं खनिज पदार्थों, परिवहन, संचार, सूचना एवं प्रसारण, शिक्षा संस्कृति एवं खेल, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, आवास, नगरीय विकास, जलपूर्ति एवं सफाई, समाज कल्याण एवं पोषाहार, महिलाओं के लिए सामाजिक – आर्थिक कार्यक्रमों, अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों एवं अनुसूचित जातियों के लिए सामाजिक – आर्थिक कार्यक्रमों, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, पर्यावरण एवं परिस्थितिकी, न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम तथा अन्य विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों का प्रावधान किया गया।

आठवीं पंचवर्षीय योजना में सामाजिक नीति का मुख्य उद्देश्य मानव संसाधन विकास पर प्रमुख बल दिया जाना निर्धारित किया गया। इसके लिए योजना में निम्नलिखित क्षेत्रों को प्राथमिकता दी गयी :

1. सन् 2000 तक पूर्ण रोजगार के स्तर को प्राप्त करने की दृष्टि से रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराना,
2. जनता की भागीदारी से जनसंख्या वृद्धि दर को नियंत्रित करना,
3. प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाना और 15 से 35 वर्ष की आयु वर्ग के लोगों में निरक्षरता को पूर्णतः समाप्त करना,
4. सभी के लिए स्वच्छ पेयजल की व्यवस्था करना, स्थाई विकास के लिए आधारभूत ढाँचे (ऊर्जा, परिवहन, संचार व सिंचाई) को विकसित करना।

आठवीं योजना के अन्तर्गत मानव विकास, रोजगार, जनसंख्या और परिवार कल्याण, साक्षरता और शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, कमजोर और पिछड़े वर्ग का विकास, भूमि सुधार, कृषि, आधारभूत ढांचा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, पर्यावरण एवं जंगल, आवास, नगरीय विकास, सार्वजनिक उपक्रम, व्यक्तियों की सहभागिता तथा अन्य विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों का प्रावधान किया गया।

नौवीं योजना का लक्ष्य ''वृद्धि के साथ सामाजिक न्याय और समानता (Growth with Social Justice and Equality) था। नौवीं योजना के विशिष्ट लक्ष्य जो बाजार शक्तियों पर अधिक विश्वास और सार्वजनिक नीति की अनिवार्यताओं से उत्पन्न होते हैं निम्नलिखित हैं :

1. कृषि और ग्रामीण विकास को प्राथमिकता देना ताकि पर्याप्त उत्पादक रोजगार कायम हो सके और गरीबी को दूर किया जा सके।
2. कीमतों में स्थिरता के साथ अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर को त्वरित करना।
3. सभी के लिए खाद्य और पौष्टिक सुरक्षा उपलब्ध कराना और ऐसा करते हुए समाज के कमजोर वर्गों काविषेश रूप से ध्यान रखना।
4. सभी को समय–बद्ध रूप से बुनियादी न्यूनतम सेवाएं उपलब्ध कराना इनमें पीने का सुरक्षित पानी, प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षा सुविधाएं, सर्वव्यापक प्राथमिक शिक्षा, आवास और यातायात एवं परिवहन द्वारा सभी से सम्बन्ध सीापित करना।
5. जनसंख्या की वृद्धि दर पर नियन्त्रण प्राप्त करना।
6. जन सहभागिता को प्रोन्नत एवं विकसित करना और इसके लिए सहभागी संस्थानों अर्थात् पंचायती राज संस्थाओं, सहकारिताओं और स्वतः सहायता समूहों को बढ़ावा देना।

दसवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तिम प्रारूप में कहा गया है, ''दसवीं योजना नई सहस्त्राब्दि के प्रारम्भ में, विगत् में प्राप्त उपलब्धियों को ऊपर उठाने तथा उभरकर सामने आई कमजोरियों को दूर करने का अवसर प्रदान करती है।'' इस योजना ने स्वीकार किया है कि, ''देश में इस तथ्य को लेकर धैर्य कम होता जा रहा है कि नियोजन के पाँच दशक बीत जाने के बावजूद हमारी जनसंख्या का एक बड़ा भाग निर्धनता के गर्त में डूबा हुआ है तथा सामाजिक उपलब्धियों में खतरे की घण्टी देने वाले अन्तराल मौजूद हैं।''

दसवीं योजना में समता एवं सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए त्रिसूत्रीय रणनीति अपनाई जायेगी :

(1) कृषि विकास को योजना का प्रमुख तत्व के रूप में देखा जाना चाहिए, क्योंकि इस क्षेत्र के विकास का विस्तार अधिक व्यापक,विषेशरूप से ग्रामीण निर्धनों को लाभ पहुँचाना होता है।

(2) दसवीं योजना की विकास रणनीति उन क्षेत्रों के तीव्र विकास पर केन्द्रित हैं, जो लाभकारी रोजगार अवसर सृजित करते हैं, ये क्षेत्र हैं : निर्माण, पर्यअन, परिवहन, लघु उद्योग, खुदरा व्यापर, सूचना प्रौद्योगिकी तथा संचार सम्बद्ध सेवायें।

(3) सामान्य विकास प्रक्रिया से पर्याप्त रूप से लाभान्वित न हो पाने वालेविषेश कार्यक्रमों को योजनाकाल में प्रारम्भ करना।

स्वास्थ्य नीति

इस नीति को कार्यान्वित करने क लिए एक के बाद दूसरी सभी पंचवर्षीय योजनाओं में स्वास्थ्य के लिए विनियोजन किया गया जो पहली पंचवर्षीय योजना के 65.2 करोड़ रूपये से बढ़कर सातवीं पंचवर्षीय योजना में 3392 करोड़ रूपया हो गया।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत जन्मदर (CBR) एवं मृत्युदर (IMR) क्रमशः 37 और 12.9 से घटकर 29.9 एवं 8.0 हो गई। औसत आयु 58 वर्ष हो गई। इस पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत मलेरिया निवारण कार्यक्रम, काला आजार एवं जापानी इन्सीफलाईटिस, कुष्ठ निवारण अभियान, टी.बी. की रोकथाम, अंधापन को रोकने का अभियान इत्यादि कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया गया। जिससे इन सभी बीमारियों पर काफी हद तक नियन्त्रण एवं प्रभावी रूप से रोकथाम सम्भव हो पाया है।

नौवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 1996–2001 में जन्मदर 24.10 से 2011–2016 तक 21.41 प्रतिशत तक प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया, इसी प्रकार मृत्युदर 8.99 से घटाकर 7.48 तक प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। शिषु मृत्युदर का लक्ष्य पुरूषों के लिए 63 से 38 और लड़कियों के लिए 64 से घटाकर 39 प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया।

दसवीं पंचवर्षीय योजना में संक्रामक रोगों पर पर्याप्त सीमा तक नियंत्रण कर लिया गया है। जिसके परिणामस्वरूप मृत्युदर जो 1951 में 25 थी 2001 में घटकर 8.1 रह गयी तथा शिशु मृत्युदर जो 1951 में 146 प्रति हजार थी, घटकर 2002 में 64 प्रति हजार रह गयी तथा जीवन प्रत्याशा जो 1951 में 36.7 थी, बढ़कर 2000 में 64.6 हो गयी। चेचक जैसी महामारी पर नियंत्रण कर लिया गया है, हैजे को रोकने में पर्याप्त सफलता मिली है, कुष्ठ निवारण के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य हुआ है और 1989 तक 708 कुष्ठ निवारण इकाइयाँ स्थापित की जा चुकी थीं तथा 7400 सर्वेक्षण एवं उपचार केन्द्र खोले जा चुके थे। वर्तमान समय में देश में फाइलेरिया रोग के मामलों की संख्या 2 करोड़ 90 लाखा और सूक्ष्म फाइलेरिया वाहकों की संख्या 2 करोड़ 20 लाख है। इस स्थिति को ध्यान में रखकर 206 फाइलेरिया रोग नियंन्त्रण इकाईयों, 199 फाइलेरिया रोग क्लीनिकों और 27 फाइलेरिया रोग सर्वेक्षण इकाईयों को स्थापित किया गया है। एच. आई. वी. संक्रमित व्यक्तियों की अनुमानित संख्या, जो 1991 में 10 से 20 लाख के बीच थी, 1998 में बढ़कर 35 लाख और 2000 में बढ़कर 39 लाख तक पहुँच गयी। संक्रमित व्यक्तियों में 50 प्रतिशत से अधिक महिलाएं और बच्चे हैं। एच. आई. वी./एड्स का पता लगाने एवं उपचार करने के लिए आवश्यक शोध किये जा रहे हैं, रक्त बैंक

सफलतापूर्वक कार्य कर रहे हैं। मादक द्रव्य व्यसन को रोकने तथा व्यसन के शिकार व्यक्तियों का पता लगाने एवं उनके उपचार हेतु केन्द्र खोले जा रह हैं। राष्ट्रीय क्षय नियन्त्रण कार्यक्रम के माध्यम से क्षयरोग को रोकने में पर्याप्त सफलता मिली है। सार्वभौमिक टीकाकरण कार्यक्रम के अधीन सभी गर्भवती महिलाओं को शत–प्रतिशत टीके लगने तथा शत–प्रतिशत बच्चों को 6 बड़े रोगों से बचाना है।

श्यामपट प्रचालन (Operation Blackboard)

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति में सबसे बड़ा व्यवधान विद्यालयों में न्यूनतम आवश्यक भौतिक सुविधाओं का अभाव है। चौथे अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण के दौरान लगभग 188000 प्राथमिक विद्यालय बिना उपयुक्त सुविधाओं के थे। 192000 से भी अधिक विद्यालयों में चटायी या टाटापट्टी भी नहीं थी।

5.7 समाजिक नीति के प्रारूप

1. कल्याणकारी प्रारूप (Welfare Model)

समाज कल्याण प्रारूप से तात्पर्य सामाजिक विकास हेतु बनायी गयी उन रणनीतियों से है। जिसके अन्तर्गत कल्याणकारी राज्य की अवधारणा परिलक्षित होती है। कल्याणकारी राज्य से आशय ऐसे राज्य से है, जो समाज के प्रत्येक व्यक्ति समूह, समुदाय एवं एक व्यापक समाज प्रजाति, जाति, धर्म सभी के विकास हेतु वचन बद्ध है। कल्याणकारी राज्य समाज के सभी वर्गों के विकास की बात करता है। खासकर उन लोगों के लिएविषेश सुविधायें प्रदान करता है, जो किसी भी समस्या से ग्रसित होते हैं।

2. सामाजिक सुरक्षा प्रारूप (Social Security Model)

समाज के द्वारा ऐसी सुरक्षा व कानून प्रदान किये जा सके जिससे समाज में रहने वाले लोगों को सुरक्षा प्रदान की जा सके। सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत सामाजिक नीतियाँ इस प्रकार बनायी जायेंगीं। ताकि समाज के प्रत्येक वर्ग की सुरक्षा हो सके समाज में उत्पन्न समस्याओं के समाधान का इस प्रकार प्रारूप तैयार किया जायेगा। ताकि उन समस्त समस्याओं का निदान किया जा सके। व्यक्ति, समूह, समुदाय किसी में भी यदि असंतुलन उत्पन्न होता है तो समाज में खतरा उत्पन्न होता है। सामाजिक सुरक्षा में लोगों के विकास हेतु विभिन्न प्रकार की योजनाएं चलायी जाती हैं। जैसे – बीमा, विभिन्न प्रकार के अधिनियम, कानून।

3. उदारीकरण प्रारूप (Libral Model)

इस प्रकार के प्रारूप में ऐसी नीतियां बनायी जाती हैं कि समाज में प्रत्येक वर्ग के लोग राज्य के द्वारा चलाये गये कार्यक्रमों में प्रदान किये गये साधनों में सम्पूर्ण रूप से अपनी भागीदारी निभा सके। क्योंकि समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है। जिसका निर्माण सामान्यतः चेतना पर आधारित है। समानता की चेतना ही परस्पर सहभागिता की आधारशिला है। उदारीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके तहत सरकार अपनी नीतियों को इस प्रकार से लागू करती है। कि लोगों के कार्य व्यवसाय इत्यादि करने में कठिनाई न आये अर्थात् एक व्यक्ति आसानी से एक देश से दूसरे देश में अपने व्यवसाय को कर सकता है। अतः वस्तुओं का क्रय–विक्रय एक देश से दूसरे देश में आसान हो जाता है। यह प्रक्रिया सार्वभौमिकीकरण एवं निजीकरण को बढ़ावा देती है।

सामान्यतः यह प्रारूप व्यक्तियों के व्यक्तिगत सामुदायिक हितों को पूरा करने हेतु नीतियां बनाता है।

4. **प्रजातान्त्रिक प्रारूप (Social Democratic Model)**

इस प्रारूप के तहत नीतियां इस प्रकार से बनायी जाती हैं कि उन नीतियों का लाभ राज्य के सम्पूर्ण लोगों को समूहों समुदायों में मिल सके।

अर्थात् लोकतान्त्रिक प्रारूप के तहत नीतियां इस प्रकार बनायी जाती हैं। जिसके तहत कोई व्यक्ति कानून के दायरे में रहकर अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सकें। यदि कोई किसी प्रकार की बाधाओं से ग्रसित है तो उन बाधाओं को दूर कर उसका विकास किया जाता है।

5.8 सार संक्षेप

वास्तव में समाज की उन्नति तभी हो सकती है जबकि उसका सर्वांगीण विकास हो। यह एक तथ्य है कि समाज के अन्तर्गत पायी जाने वाली विभिन्न सामाजिक इकाइयों तथा उनकी स्थितियों में परस्पर निर्भरता है क्योंकि वे एक सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्सम्बन्धित अंग हैं। इसलिए किसी एक क्षेत्र को विकसित करने के लिए समाज के अन्य क्षेत्रों तथा इनसे सम्बन्धित इकाइयों और उनकी स्थितियों पर भी ध्यान देना पड़ता है। उदाहरणर्थ, यदि किसी नयी प्रौद्योगिकी की सहायता से आर्थिक समृद्धि सम्भव है तो हमें यह भी देखना पड़ता है कि इस प्रौद्योगिकी के अन्य सम्भावित परिणाम क्या होंगे? लोगों की इसके प्रति मनोवृत्ति क्या होगी? इसको सफलतापूर्वक अपनाने की दृष्टि से लोगों में विद्यमान ज्ञान एवं निपुणताओं की स्थिति क्या है? इत्यादि। इससे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक नीति के आर्थिक परिणाम होते हैं और आर्थिक नीति के सामाजिक परिणाम होते हैं और इन

दोनों को एक–दूसरे से पूर्ण पृथकता की स्थिति में न देखकर पूरक अन्योन्याश्रितता की स्थिति में देखा जाना चाहिए।

5.9 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक नीति की अवधारणा एवं क्षेत्रों की विवेचना कीजिए ।
2. सामाजिक नीति एवं आर्थिक नीति में अन्तर कीजिए।
3. सामाजिक नीति में मूल्यों एवं वैचारिकी पर एक निबन्ध लिखिए।
4. संवैधानिक एवं वैधानिक रूप से घोषित सामाजिक नीति पर एक निबन्ध लिखिए।
5. सामाजिक नीतियों के उपागमों/प्रारूपों की जानकारी दीजिए।

5.10 पारिभाषिक शब्दावली

Social Democrative Model	**प्रजातान्त्रिक प्रारूप**	People's Health in People's Hand	जन स्वास्थ्य जन हाथ में
Libral Model	**उदारीकरण प्रारूप**	Declaration	घोषणा
Welfare Model	**कल्याणकारी प्रारूप**	Barefoot Doctor	समुदाय के चिकित्सक
Libral Model	**उदारीकरण प्रारूप**	Health Survery	स्वास्थ्य सर्वेक्षण
Social Policy	**समाजिक नीति**	Development	थ्वकास
Operation Blackboard	श्यामपट प्रचालन	Committee	समिति
Expert Group	विशेषज्ञ समूह	Privatization	निजीकरण
Central Council	केन्द्रीय परिषद	Inter-dependency	अन्योन्याश्रितता

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डुवियोस ब्रेन्डा एवं मिले क्रोग्सख्ड कर्ता, सोशलवर्क एन इम्पावरिंग प्रोफेशन लाइब्रेरी ऑफ कान्टोस कैटालागिंग इन पब्लिकेशन डाटा, यू0एस0ए0 (1992)।
2. डब्ल्यू0डब्ल्यू0डब्ल्यू0डाट अबैकन डाट कॉम।

3. डॉ0 राय मनीष कुमार, रिसर्च थीसिस ऑन हेल्थ स्टेटस एण्ड प्राब्लम्स आफ सिड्यूल ट्राइब फेमिलीस, (2009)

4. रोथमैन जैक, एट आल, स्ट्रैटजीस आफ कम्यूनिटि इन्टरवेंशन, छठवॉ संस्करण एफ0ई0 पीकाक पब्लिसर्स, इटारका (2001)।

5. डब्ल्यू0डब्ल्यू0डब्ल्यू0डाट स्क्रिब्ड डाट काम/डाक

6. डब्ल्यू0डब्ल्यू0डब्ल्यू0डाट सोशल वर्कस्काटलैण्ड डाट ओआरजी

इकाई – 6

सामाजिक विधान एवं सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका

Social Legislation and Role of Social Worker

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 परिचय

6.2 सामाजिक विधान अवधारणा

6.3 सामाजिक विधान का क्षेत्र

6.4 आवश्यकता

6.5 सामाजिक कार्यकर्ता : विभिन्न भूमिकाये

6.6 सार संक्षेप

6.7 अभ्यास प्रश्न

6.8 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

1. सामाजिक विधान की जानकारी कर सकेंगे।
2. सामाजिक विधान की अवधारणा के बारे में जान सकेंगे।
3. अर्थ समझ सकेंगे।
4. सामाजिक नीति की परिभाषा का सही ज्ञान कर सकेंगे।
5. सामाजिक नीति की आवश्यकता का ज्ञान समझ सकेंगे।
6. सामाजिक नीति के क्षेत्र को समझ सकेंगे।

6.1 परिचय

व्यक्ति का समाज के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। उसकी आवश्यकताओं की संतुष्टि समाज में ही सम्भव है। सामाजिक संरचना का निर्माण एवं पुनर्गठन इसलिए किया

जाता है ताकि इन आवश्यकताओं की समुचित एवं प्रभावपूर्ण ढंग से संतुष्टि हो सके। दुर्भाग्य की बात है कि कालान्तर में भारतीय सामाजिक संरचना में ऐसे दोष उत्पन्न हुए जिनके कारण कुछ लोग सबल तथा कुछ निर्बल हो गये और सबलों द्वारा निर्बलों का शोषण किया जाने लगा। परिणामतः यह अनुभव किया गया कि निर्बल वर्गों के हितों का संरक्षण करने हेतु राज्य द्वारा कुछ विशेष प्रयास किये जायें ताकि निर्बलों को भी व्यक्तित्व के विकास एवं सामाजिक क्रिया–कलापों में अपनी योग्यताओं एवं क्षमताओं के अनुसार भाग लेने के अवसर प्राप्त हो सकें। यद्यपि ऐसे प्रयास सदैव से होते रहे हैं किन्तु इस दिशा में व्यवस्थित चेतन एवं योजनाबद्ध प्रयास स्वतंत्रता के पश्चात् ही प्रारम्भ किये जा सके जब राज्य एक कल्याणकारी राज्य के रूप में उभर कर सामने आया। ये प्रयास निर्बल एवं शोषण का सरलापूर्वक शिकार बनने वाले वर्गों के हितों के संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु सामाजिक विधानों के रूप में सामने आये।

6..2 सामाजिक विधान

प्रारम्भ में सामाजिक न्याय व्यवस्था का कार्य समाज में फैली धार्मिक कुरीतियों को रोकना था। 1929 में बंगाल में सती प्रथा को रोकने के लिए कानून बनाया गया। इसी कानून को बाद में मद्रास एवं बम्बई में भी लागू किया गया। 1843 में भारतीय दाय प्रथा कानून पारित हुआ जिसके अन्तर्गत दास होने के नाते क्रय–विक्रय पर निषेध लगा दिया गया। जब भारतीय दण्ड विधान लागू किया गया तो दास के रूप में किसी व्यक्ति को बेचना अथवा खरीदना एवं इससे सम्बन्धित व्यापार करना वर्जित कर दिया गया और इसके लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की गयी। कुछ ही दिनों बाद जाति असमर्थता निर्मूलन कानून के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई कि यदि व्यक्ति अपना धर्म अथवा जाति परिवर्तित करता है तो उसके सम्पत्ति अधिकार पहले जैसे ही बने रहेंगे तथा उसे अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा। 1856 में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम तथा 1870 में नारी बाल हत्या कानून बनाये गये। 1872 में विशिष्ट विवाह अधिनियम बना जो 1929 में संशोधित किया गया।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अनेक सामाजिक विधान बनाये गये। बाल विवाह प्रतिरोध अधिनियम 1929 में, हिन्दू आय लाभ अधिनियम 1930 में, हिन्दू महिला सम्पत्ति अधिकार अधिनियम 1937 में एवं विवाहित हिन्दू महिला पृथक निर्वाह अधिनियम तथा हिन्दू विवाह असमर्थता निवारण अधिनियम 1946 में पारित किये गये। बाल विवाह प्रतिरोध अधिनियम द्वारा बालकों के लिए विवाह की आयु 18 वर्ष

तथा बालिकाओं के लिए 15 वर्ष निर्धारित की गयी। आय लाभ अधिनियम द्वारा अविभाजित हिन्दू परिवार के किसी सदस्य की आय अथवा किसी की अलग से अर्जित की गई सम्पत्ति में से प्राप्त सभी लाभ परिवार के निश्चित किये गये। सम्पत्ति अधिकार अधिनियम द्वारा विधवा को पति की सम्पत्ति में से पुत्र को मिलने वाले भाग के समान ही भाग निर्धारित किया गया परन्तु इस बात पर रोक लगा दी गई कि वह अपने जीवन काल में न तो इसे बेंच सकती है और न ही किसी को दे सकती है। विवाहित हिन्दू महिला पृथक् निर्वाह अधिनियम द्वारा विवाहित महिला को पृथक् आवास एवं निर्वाह की माँग करने का अधिकार प्राप्त हुआ। हिन्दू विवाह असमर्थता निवारण अधिनियम द्वारा एक ही गोत्र अथवा उसी जाति के दूसरे अलग–अलग उपवर्गों में होने वाले विवाह को मान्यता प्रदान की गयी।

बाल कल्याण हेतु शिशुक्षुता अधिनियम 1850, अभिभावक एवं उक्षक अधिनियम 1890, बाल (श्रम बंधक) अधिनियम 1933 तथा बालक व्यापार अधिनियम 1938 में पारित किये गये। 1938 में आपराधिक प्रक्रिया संहिता के अधीन भगेड़ूपन की रोकथाम के लिए प्रावधान किया गया। लड़कियों को शोषण से बचाने के लिए भारतीय दण्ड संहिता में व्यवस्था की गयी जिसके द्वारा 18 वर्ष से कम आयु की किसी लड़की का अवैधानिक रूप में अथवा अनैतिक उद्देश्य से विक्रय, क्रय या किसी अन्य प्रकार से अपने अधिकार में रखना एक अपराध माना गया। सतीत्व की रक्षा तथा बलात्कार रक्षा के लिए भी प्रबन्ध किये गये।

श्रमिकों के कल्याण हेतु 1855 में प्राणघातक दुर्घटना अधिनियम, 1881 में भारतीय कारखाना अधिनियम, 1923 में कर्मकार क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1926 में भारतीय श्रमिक संघ अधिनियम, 1929 में व्यापार विवाद अधिनियम, 1933 में बाल (श्रम बन्धक) अधिनियम, 1938 में मालिक देयता अधिनियम, 1946 में औद्योगिक सेवायोजन (स्थायी अध्यादेश) अधिनियम पारित किये गये।

भारतीय संविधान के भाग–3 में मौलिक अधिकारों का उल्लेख किया गया है। इसके अनुच्छेद 14 में विधि के समक्ष समानता, अनुच्छेद 15 में धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग अथवा जन्म स्थल के आधार पर भेदभाज क निषेध, अनुच्छेद 16 में सार्वजनिक सेवा के मामले में अवसर की समानता, अनुच्छेद 18 में पदवियां का उन्मूलन, अनुच्छेद 19 में भाषण की स्वतंत्रता इत्यादि से सम्बन्धित कुछ अधिकारों के संरक्षण, अनुच्छेद 20 में जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संरक्षण, अनुच्छेद 22 में कुछ मामलों में कैद एवं हिरासत के विरूद्ध संरक्षण, अनुच्छेद 23 में मानवीय व्यापार एवं बर्बस श्रम निषेध, अनुच्छेद 24 में कारखानों में बच्चों के सेवायोजन इत्यादि के निषेध, अनुच्छेद 25 ममें आत्मानुभूति एवं स्वतंत्र व्यवसाय, कार्य एवं धर्म

के प्रचार की स्वतंत्रता, अनुच्छेद 26 में धार्मिक मामलों का प्रबन्ध करने की स्वतंत्रता, अनुच्छेद 27 में किसी विशिष्ट धर्म के प्रोत्साहन हेतु करों का भुगतान करने की स्वतंत्रता, अनुच्छेद 28 में कुछ विशिष्ट शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक उपदेश अथवा धार्मिक उपासना में उपस्थिति से स्वतंत्रता, अनुच्छेद 29 में अल्प संख्यकों के शिक्षा संस्थाओं को स्थापित करने और प्रशासन करने के अधिकार तथा अनुच्छेद 23 में मौलिक अधिकारो के कार्यान्वयन हेतु उपायों का प्रावधान किया गया।

संविधान के भाग 4–राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्तों के अधीन अनुच्छेद 38 में लोगों के कल्याण के प्रोत्साहन हेतु एक सामाजिक व्यवस्था के राज्य द्वारा स्थापित किये जाने, अनुच्छेद 39 में राज्य द्वारा नीति के कुछ सिद्धान्तों के अपनाये जाने, अनुच्छेद 39 ए में समान न्याय एवं निःशुल्क कानूनी सहायता, अनुच्छेद 41 में कार्य, शिक्षा तथा कुछ परिस्थितियों में जन सहायता के अधिकार, अनुच्छेद 42 में न्यायपूर्ण एवं मानवीय कार्य की शर्तों एवं मातृत्व सहायता हेतु प्रावधान, अनुच्छेद 43 में श्रमिकों के लिए जीवन निर्वाह मजदूरी इत्यादि, अनुच्छेद 43 ए में उद्योगों के प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता, अनुच्छेद 44 में नागरिकों के लिए एक नागरिक संहिता अनुच्छेद 45 में बच्चों के लिए स्वतंत्र एवं अनिवार्य शिक्षा हेतु प्रावधान, अनुच्छेद 46 में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन–जातियों एवं अन्य निर्बल वर्गों की शैक्षिक एवं आर्थिक अभिरूचियों के प्रोत्साहन, अनुच्छेद 47 में जीवन के स्तर एवं पोषण के स्तर को उन्नत करने तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य को सुधारने हेतु राज्य के कर्तव्य, अनुच्छेद 48 ए में पर्यावरण के संरक्षण एवं सुधार तथा वनों एवं वन्य जीवों के संरक्षण तथा अनुच्छेद 51 में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा के प्रोत्साहन का उल्लेख किया गया है।

संविधान के भाग IV ए में मौलिक कर्तव्यों का प्रावधान किया गया है।

संविधान के भाग 16 – कुछ वर्गों से सम्बन्धित विशिष्ट प्रावधान के अधीन अनुच्छेद 330 में लोक सभा में अनुसूचित जातियों एवं जन–जातियों के लिए सीटों का आरक्षण, अनुच्छेद 331 में लोक सभा में आँग्ल भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व, अनुच्छेद 332 में राज्यों की विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए सीटों के आरक्षण, अनुच्छेद 333 में राज्यों की विधान सभाओं में आँग्ल भारतीय समुदाय के लिए प्रतिनिधित्व, अनुच्छेद 335 में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के सेवाओं एवं पदों पर अधिकारपूर्ण मांग, अनुच्छेद 336 में कुछ सेवाओं में आँग्ल भारतीय समुदाय के लिए विशिष्ट प्रावधान, अनुच्छेद 338 में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों इत्यादि के लिए विशिष्ट अधिकारी, अनुच्छेद 339 में अनुसूचित क्षेत्रों एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के प्रशासन पर केन्द्र के

नियन्त्रण, अनुच्छेद 340 में पिछड़े वर्गों की दशाओं की जाँच करने हेतु आयोग की नियुक्ति, अनुच्छेद 341 में अनुसूचित जातियों और अनुच्छेद 342 में अनुसूचित जनजातियों का उल्लेख किया गया है।

सामाजिक विधान का अर्थ एवं परिभाषायें

योजना आयोग के अनुसार ''प्रचलित कानूनों तथा वर्तमान आवश्यकताओं के बीच दूरी को कम करने वाले विधान को सामाजिक विधान कहा जा सकता है।''

गंग्राडे तथा बत्रा (Gangrade and Batra) के मत में ''सामाजिक विधान की परिभाषा उन कानूनों के रूप में की जा सकती है जिन्हें सकारात्मक मानव संसाधन को बनाये रखने तथा सुदृढ़ बनाने एवं समूहों अथवा व्यक्तियों के नकारात्मक एवं सामाजिक रूप से हानिकारक व्यवहार के घटित होने को कम करने हेतु बनाया जाता है।''

उससेकर के मत में ''सामाजिक विधान सामाजिक एवं आर्थिक न्याय सम्बन्धी विचारों को लागू किये जाने योग्य कानूनों में रूपान्तरित करने की लोगों की इच्छा की वैधानिक अभिव्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है।''

सामाजिक विधान का सम्बन्ध व्यक्ति एवं समूह के कल्याण की वृद्धि तथा सामाजिक क्रिया–कलापों के प्रभावपूर्ण एवं निर्बाध रूप से संचालन से है। इन विधानों का निर्माण इस प्रकार किया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अपेक्षित साधन एवं उपयुक्त अवसर प्राप्त हो सकें तथा सामाजिक व्यवस्था के सुचारू रूप से चलने के लिए अपेक्षित विभिन्न प्रकार्य उचित रूप से संपादित किये जा सकें। सामाजिक विधान नयी स्थितियों के लिए वैधानिक संरचना का निर्माण करता है तथा इच्छित दिशा में सामाजिक संरचना में परिवर्तन किये जाने के अवसर प्रदान करता है। यह राष्ट्र के वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति करता है और आने वाली सामाजिक समस्याओं का कुशलता से समाधान करता है।

इस प्रकार सामाजिक विधान के दो प्रमुख उद्देश्य हैं :

(1) नियमन की स्थिति उत्पन्न करना तथा सुरक्षा प्रदान करना, एवम्

(2) सामाजिक आवश्यकताओं का पूर्वानुमान करते हुये सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने का प्रयास करना।

6.3 सामाजिक विधान का क्षेत्र

सामाजिक विधानों को निम्नलिखित 6 श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :

1. धार्मिक एवं दातव्य न्यासों से सम्बन्धित विधान।

2. निराश्रित व्यक्तियों से सम्बन्धित विधान जिसके अन्तर्गत अकिंचन कोढ़ियों से सम्बन्धित विधान को सम्मिलित किया जा रहा है।

3. बाधितों से सम्बन्धित विधान जिसके अन्तर्गतविषेश रूप से सामाजिक तथा आर्थिक रूप से बाधित व्यक्तियों के लिए विधान–विशेष रूप से अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित विधान तथा शारीरिक एवं आर्थिक रूप से बाधित व्यक्तियों से सम्बन्धित विधान–विशेष रूप से बच्चों से सम्बन्धित विधान को सम्मिलित किया जा रहा है।

4. शोषण का सरलतापूर्वक शिकार बनने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित विधान जिसके अन्तर्गत महिलाओं, श्रमिकों एवं युवकों से सम्बन्धित विधान को सम्मिलित किया जा रहा है।

5. विचलित व्यवहार वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित विधान जिसके अन्तर्गत बाल आवारापन, बाल अपराध, सफेदपोश अपराध, वेश्यावृत्ति, भिक्षावृत्ति, मद्यपान एवं मादक द्रव्य व्यसन, द्यूतक्रीड़ा से सम्बन्धित विधान को सम्मिलित किया जा रहा है।

6. असामान्य व्यवहार प्रदर्शित करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित विधान जिसके अन्तर्गत मानसिक रूप से विक्षिप्त व्यक्तियों से सम्बन्धित विधान को सम्मिलित किया जा रहा है।

6.4 आवश्यकता :

भारतीय संविधान के उद्‌देश्यों को पूरा करने के लिए सामाजिक विधान की आवश्यकता को निम्न तथ्यों में देखा जा सकता है :

- **धार्मिक एवं दातव्य न्यासों से सम्बन्धित विधान**

1890 में दातव्य धर्मदाय अधिनियम पास किया गया जिसके अधीन सरकार द्वारा नियुक्त दातव्य धर्मदायों के कोषाध्यक्ष में सार्वजनिक न्यासों के विहितीकरण एवं प्रशासन का दायित्व सौंपा गया। 1920 में धार्मिक एवं दातव्य न्यास अधिनियम पारित किया गया जिसके अधीन दातव्य एवं धार्मिक धर्मदायों के लिए बनाये गये न्यासों के सम्बन्ध प्राप्त करने की सुविधाओं का प्रावधान किया गया।

- **निराश्रित व्यक्तियों से सम्बन्धित विधान**

1898 के कोढ़ी अधिनियम के अधीन अकिंचन कोढ़ियों के अलग रखे जाने तथा उनके चिकित्सकीय उपचार का प्रावधान किया गया है।

- **बाधितों से सम्बन्धित विधान**

नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1976 के अधीन अनुसूचित जाति के व्यक्तियों के लिए नागरिक अधिकारों के संरक्षण की व्यवस्था की गयी है। बच्चों की

अभिरूचियों के प्रोत्साहन के लिए भारतीय दण्ड संहिता 1860 (धारा 82, 83, 315, 316, 317, 318, 361, 363, 363 ए तथा 369), आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973 (धारा 27, 98, 125, 160, 198, 320, 360, 361, 437 तथा 448) अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1958, किशोर न्याय अधिनियम 1986, भारतीय व्यापार पोत अधिनियम 1923(धारा 23), बाल श्रम बंधक अधिनियम 1933, बाल सेवायोजन अधिनियम 1938, कारखाना अधिनियम 1948 (धारा 27, 67, 68, 69, 71, 72, 73, 74, 75, 76, 92 तथा 99), बागान श्रम अधिनियम 1951 (धारा 19, 24, 25, 26, 27 तथा 28), खान अधिनियम 1952 (धारा 40, 41, 43, 44, 45 तथा 48), कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948 (धारा 46, 52 तथा 56), मात ृत्व हित लाभ अधिनियम 1948 (धारा 7), शिशुक्षुता अधिनियम 1961 (धारा 4, 8, 13, 14 तथा 15), बाल श्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम 1986 के अधीन विभिन्न प्रावधान किये गये हैं।

- **शोषण का सरलतापूर्वक शिकार बनने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित विधान**

महिलाओं के हितों के संरक्षण हेतु भारतीय दण्ड संहिता 1860 (धारा 312, 313, 314, 354, 366 ए, 366 बी, 372, 373, 375, 376, 377 तथा 507), आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973 (धारा 18, 125, 126, 127, 128 तथा 160), अनैतिक व्यापार (निरोधक) अधिनियम 1986, दहेज निषेध अधिनियम 1961, चिकित्सकीय गर्भ समापन अधिनियम 1971, हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम 1939, ईसाई विवाह अधिनियम 1872, भारतीय तलाक अधिनियम 1869, पारसी विवाह एवं तलाक अधिनियम 1936, विशिष्ट विवाह अधिनियम 1954, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम 1956, कारखाना अधिनियम 1948 (धारा 27 तथा 48) बागान श्रम अधिनियम 1951 (धारा 12), समान पारितोषिक अधिनियम 1976, खान अधिनियम 1952 (धारा 46), कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948 (धारा 49, 50, 51, 52, 56 तथा 57) तथा मातृत्व हिल लाभ अधिनियम 1961 के अधीन प्रावधान किये गये हैं।

श्रमिकों के हितों के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए भारतीय दण्ड संहिता 1860 (धारा 370, 371 तथा 374), भारतीय पोत अधिनियम 1923, बाल श्रम (श्रम बंधक) अधिनियम 1933, मजदूरी भुगतान अधिनियम 1936, मालिक देयता अधिनियम 1938, साप्ताहिक अवकाश अधिनियम 1942, आभ्रक खान श्रम कल्याण कोष अधिनियम 1946, औद्योगिक सेवायोजन (स्थायी) अध्यादेश अधिनियम 1946, कोयला खान श्रम कल्याण कोष अधिनियम 1947, औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948, कारखाना अधिनियम 1948, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948, बागान श्रम अधिनियम 1951, खान अधिनियम 1952, कर्मचारी भविष्य निधि एवं

विविध प्रावधान 1952, लौह खनिज श्रम कल्याण कर अधिनियम 1961, मातृत्व हित लाभ अधिनियम 1948, शिशुक्षुता अधिनियम 1961, वैयक्तिक चोट (क्षतिपूर्ति बीमा) अधिनियम 1963, बोनस भुगतान अधिनियम 1965, अनुबन्धित श्रम (विनियमन एवं उन्मूलन) अधिनियम 1976, चूना पत्थर तथा डोलोमाइट श्रम कल्याण कोष अधिनियम 1972, ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम 1972, बंधुआ श्रम व्यवस्था (उन्मूलन) अधिनियम 1976 के अधीन प्रावधान किये गये हैं।

युवकों के हितों में संरक्षण एवं संवद्धन हेतु भारतीय दण्ड संहिता 1860 (धारा 21, 292, 293, 294 तथा 294 ए), आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973 (धारा 122, 126, 126 ए, 406 ए, 514, 514 ए, 514 बी तथा 515), नाटकीय निष्पत्ति अधिनियम 1876, सिनेमैटोग्राफ अधिनियम 1952, भेषज एवं जादू सम्बन्धी उपाय (आपत्तिजनक विज्ञापन) अधिनियम 1954, मादक द्रव्य एवं मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम 1985 (संशोधित 1989), सार्वजनिक जुआ अधिनियम 1867 (1954 में संशोधित), कारखाना अधिनियम 1948 (धारा 68, 69, 79 तथा 75), बागान श्रम अधिनियम 1951 (धारा 24, 25, 26, 27 तथा 28), खान अधिनियम 1952 (धारा 40, 41, 42, 43, 44 तथा 45) के अधीन अनेक प्रावधान किये गये हैं।

- **विचलित व्यवहार प्रदर्शित करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित विधान**

बाल आवारापन से सम्बन्धित प्रावधान किशोर न्याय अधिनियम 1986 के अन्तर्गत किये गये हैं। आवारापन सम्बन्धी प्रावधान आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973 के अध्याय 8 में किये गये हैं। बाल अपराध की समस्या पर नियन्त्रण तथा बाल अपराधियों के सुधार हेतु बोर्स्टल विद्यालय अधिनियम, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, किशोर न्याय अधिनियम अलग से पारित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय दण्ड संहिता तथा आपराधिक प्रक्रिया संहिता के अधीन भी प्रावधान किये गये हैं। अपराध की समस्या से निपटने के लिए भारतीय दण्ड संहिता तथा आपराधिक प्रक्रिया संहिता के अधीन किये गये सामान्य प्रावधानों के अतिरिक्त अन्य विविध क्षेत्रों के सन्दर्भ में बनाये गये विशिष्ट अधिनियमों के अधीन प्रावधान किये गये हैं। भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम 1988 के अधीन भ्रष्टाचार, अनिवार्य वस्तु अधिनियम 1988 के अधीन मिलावट, जखीरेबाजी जैसे सफेदपोश अपराधों के लिए प्रावधान किया गया है। अनैतिक व्यापार (निरोधक) अधिनियम 1986 के अधीन वेश्यावृत्ति की समस्या से सम्बन्धित प्रावधान किये गये हैं। भिक्षावृत्ति की समस्या के निवारण हेतु विभिन्न राज्यों द्वारा अधिनियम पारित किये गये हैं, यथा उत्तर प्रदेश भिक्षावृत्ति निरोधक अधिनियम। इसके अतिरिक्त नगर पालिकाओं के कानूनों एवं पुलिस अधिनियम में भी भिक्षावृत्ति के सम्बन्ध में प्रावधान किये गये हैं। मादक द्रव्य व्यसन

की समस्या पर नियन्त्रण करने के लिए अफीम अधिनियम 1857 तथा 1878, खतरनाक मादक द्रव्य अधिनियम 1930, मादक द्रव्य एवं सौन्दर्य प्रसाधन अधिनियम 1940, दवा एवं प्रसाधन निर्माण अधिनियम 1953, मादक द्रव्य एवं मनः प्रभावी पदार्थ अधिनियम 1985 (संशोधित 1989), बनाया गया है। भारतीय दण्ड संहिता तथा आपराधिक संहिता के अधीन मद्यपान से सम्बन्धित प्रावधान किये गये हैं। द्यूतक्रीड़ा पर नियन्त्रण हेतु सार्वजनिक द्यूतक्रीड़ा अधिनियम 1867 (1954 में संशोधित) पारित किया गया है।

- **असामान्य व्यवहार प्रदर्शित करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित विधान**

मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम 1987 के अन्तर्गत मानसिक रूप से विक्षिप्त व्यक्तियों के उपचार का प्रावधान किया जाता है।

भारतवर्ष में उपरिलिखित विभिन्न सामाजिक विधानों का मूल्यांकन अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि विभिन्न धर्मों एवं जातियों के विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के हितों का संरक्षण एवं संवर्द्धन करने के लिए अलग–अलग विधान बनाये गये हैं। इन विधानों की संख्या इतनी अधिक है कि इन्हें सम्पूर्णता में लागू करते हुए किसी एक श्रेणीविषेश की अभिरूचियों का संरक्षण एवं संवर्द्धन कर पाना अत्यन्त कठिन कार्य है। यह दुर्भाग्य की बात है कि स्वतन्त्र भारत में भी विभिन्न धर्मों एवं जातियों के व्यक्तियों के लिए एकरूपतापूर्ण नागरिक विधान नहीं बन सका है और इसी का यह परिणाम है कि आज सम्प्रदायवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद की समस्यायें अपने विकराल रूप से हमारे सामने विद्यमान हैं और राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता को गम्भीर खतरा उत्पन्न हो गया है।

6.5 सामाजिक कार्यकर्ता : विभिन्न भूमिकायें – Social Worker: in Different Roles

6.5.1 समाजकार्यकर्ता की भूमिका– एक शिक्षक के रूप में

समाज कार्यकर्ता एक शिक्षक के रूप में सेवार्थी तथा अन्य स्तरों पर (जो कि समस्या समाधान में समाहित होते हैं) जानकारी एवंविषेश तकनीकों को प्रदान करता है जिससे समस्या का समाधान उचित एवं सरल तरीके से सम्भव हो सकें।

समाजकार्य के मूल के अनुसार किसी समस्या को यदि सेवार्थी स्वयं समझकर एवं उसका आँकलन करके स्वयं ही उसके निराकरण हेतु उपाय करता है तो इस प्रकार वह आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बी बनता है साथ ही उसमें आत्म विश्वास भी उत्पन्न होता है। एक सामाजिक कार्यकर्ता एक शिक्षक के रूप में सेवार्थी व अन्य

को समस्या को समझने में तो सहायता करता ही है उसके साथ ही वह समस्या – समाधान के विकल्प ढूढने में भी उसकी सहायता करता है।

यदि कोई समाजकार्यकर्ता सेवार्थी की किसी समस्या का समाधान करने का प्रयास करता है तो इसके लिये आवश्यक है कि वह स्वयं उस समस्याविषेश की जानकारी रखता हो जैसे उस समस्या के कारण कौन–कौन से हो सकते है ? या कौन सी परिस्थितियों में समस्याविषेश उत्पन्न हो सकती है ? इस समस्याविषेश की पहचान कैसे की जा सकती है ? समस्याविषेश को समाधानित अथवा उसके उपचार के क्या उपाय है ? तथा समस्याविषेश को फैलने से रोकने हेतु समुदाय, समाज अथवा व्यक्तिगत स्तर पर कौन–कौन से तरीके अपनाने चाहिये ?

उदाहरणतः एक सामाजिक कार्यकर्ता के पास मनोचिकित्सा रोगी सहायता प्राप्त करने हेतु यदि आता है तो उस रोगी को सहायता उपलब्ध कराने से पूर्व सेवा प्रदाता को मनोचिकित्सा रोगों की सम्पूर्ण जानकारी होनी चाहिये। कौन से मनोरोग के कौन–कौन से लक्षण है ? मनोरोग आधारित कौन–कौन से उपचार हैं ? रोग होने के पीछे क्या कारण निहित हो सकते है ? रोग के आगे ने होने देने के लिये कौन से उपाय हो सकते है आदि। एक परामर्शदाता/समाज कार्यकर्ता को एक शिक्षक के रूप में सर्वप्रथम किसी भी समस्याविषेश के बारे में सर्वप्रथम स्वयं जानकारी रखना आवश्यक होता है। अपनी इसी जानकारी व ज्ञान के आधार पर आवश्यकता होने पर वह सेवार्थी को इस ज्ञान को उसके साथ व्यवहारिक रूप से प्रत्यक्ष रूप में उपयोग में लाता है अथवा सेवार्थी को उपयोग मे लाने हेतु सुझाव देता है या निर्देशित करता है। जिससे कारणों पर आधारित समस्या का उचित सामधान हो सके।

एक शिक्षक के रूप में समाजकार्यकर्ता में जो एकविषेश गुण नितान्त ही आवश्यक है, वह है अच्छी वाकपटुपा तथा बातों को समझने व समझाने की क्षमता। यदि एक समाज कार्यकर्ता अपनी बातों को सेवार्थी को नहीं समझा पा रहा है तो वह एक अच्छा शिक्षक नहीं बन सकता इसी प्रकार एक शिक्षक बनने हेतु यह भी आवश्यक है कि वह सेवार्थी की बातों को भी सुने तथा समझे। यदि शिक्षक अपनी बात व अपने सुझाव सेवार्थी तक पहुॅचाने में असफल रहता है तो इस स्थिति में को सेवार्थी स्वयं समस्या व उसके उचित समाधान को खोज पाने में असहाय हो जायेगा व समस्या विकृत रूप में उत्पन्न हो सकती है। अच्छी विचारविमर्श एवं वाकपटुता की बुद्धि से समाज कार्यकर्ता, सेवार्थी को इतना सशक्त बनाता है जिससे वह समस्या उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों से स्वयं लडकर उनसे अपना बचाव कर सके। एक समाजकार्यकर्ता शिक्षक के रूप में एक आशा सेवार्थी के

अन्दर प्रवाहित करता है जिससे सेवार्थी में समस्या का सामना करने की ताकत उत्पन्न होती है तथा व सकारात्मक दृष्टि से समस्या निदान हेतु उन्मुख होता है।

समाज कार्यकर्ता एक शिक्षक के रूप में अपने सेवार्थी का व उसकी जरूरतों का ध्यान रखता है। वह प्रत्यक्ष रूप से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपने सेवार्थी की जरूरतों को पूरा कराने में उसके साथ ऐसी क्रियाओं में सम्मिलित रहता है जो समस्या समाधान हेतु आवश्यक होती है। ऐसा करने में समाज कार्यकर्ता कभी–कभी ऐसे व्यक्तियों या संस्थाओं की सहायता लेता है जो पूरी तरह प्रशिक्षित न हो अथवा स्वैच्छिक या निजी क्षेत्र में कार्यरत होते हैं।

शिक्षक अपने सेवार्थी के साथ ऐसे सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयास करता है जिससे सेवार्थी बिना किसी झिझक के सेवा प्रदाता को अपनी समस्या से जुडे सारे पहलुओं को विस्तार से बता देता है तथा शिक्षक इन्हीं पहलुओं पर आधारित होकर व इनके साथ अपनाविषेश ज्ञान जोडकर समस्या – समाधान परविषेश बल देता है। इस प्रक्रिया में समाज कार्यकर्ता, समाज कार्य के सिद्धान्तों व प्रविधियों को सम्मिलित करता है। यह प्रविधियॉ एवं सिद्धान्त आवश्यकतानुसार प्रयोग करके समस्या समझने व उसको चरण बद्ध तरीके से अलग–अलग भाग में विभाजित करके धीरे–धीरे समाधानित करने का प्रयास समाज–कार्यकर्ता द्वारा किया जाता है।

समाजकार्य इस सिद्धान्त पर विश्वास रखता है कि सेवार्थी स्वयं इतना सक्षम हो जाये कि आगे भविष्य में यदि समस्या उत्पन्न हो तो वह स्वयं उसे समाधानित कर सके। यही कारण है कि समाज कार्यकर्ता जब तक शिक्षक के रूप में सेवा प्रदान करता है तो वह सेवार्थी व अन्य जुड़े लोगो को भी साथ रखकर समस्या, इसके कारण, उपचार आदि को सबसे अवगत कराता रहता है जिससे भविष्य में यदि कभी समस्या उत्पन्न हो जाये तो समुदाय अथवा सेवार्थी स्वयं इस प्रकार की समस्या का समाधान कर सके तथा बार–बार उसे समाज कार्यकर्ता/सेवा प्रदाता के पास समस्या समाधान हेतु आना न पडे तथा साथ ही यदि उसके किसी अन्य सम्बन्धी, आस–पास के किसी व्यक्ति को समस्या हो तो वह स्वयं एक शिक्षक की भॉति समस्या समाधान के सारे चरणों व विकल्पों को बता सके व अमुक व्यक्ति/संस्था की सहायता कर सकने में सक्षम हो।

इस प्रकार एक शिक्षक के रूप में समाज कार्यकर्ता सेवार्थी के व्यवहार, उसको उपलब्ध सेवाओं आदि में परिवर्तन लाकर उनको सेवार्थी के अनकूल बनाने का प्रयास करता है। शिक्षक के रूप में एक समाज कार्यकर्ता अपने सेवार्थी को पूर्ण सम्मान प्रदान करता है तथा उसको महत्व देता है जिससे सेवार्थी अपनी बातों को समाज कार्यकर्ता को अपना हितैषी मानकर बता सके। इस आशय में सवार्थी अपने

व्यक्तित्व के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनो पहलुओं को स्वयं समझे तथा साथ ही सेवा प्रदाता को भी उनसे अवगत कराये, यह आवश्यक है अन्यथा इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अधूरे ज्ञान पर आधारित होकर यदि सेवा प्रदाता समस्या (सेवार्थी की) का समाधान करने का प्रयास करेगा तो असफल रह सकता है तथा यदि व किसी भॉति अगर समस्या समाधानित करने में सफल हो भी जाता है तो इस बात की कोई निश्चितता नहीं कि आगे वह समस्या पुनः सेवार्थी के समक्ष उत्पन्न नहीं होगी।

6.5.2 समाजकार्यकर्ता की भूमिका—एक शोधार्थी के रूप में

एक शोधार्थी के रूप में समाज कार्यकर्ता का महत्व अत्यन्त व्यापक है। किसी भी समस्या के कारण, उपाय, उपचार आदि को सेवार्थी को सुझाने से पूर्व एक सेवा—प्रदाता पूरी तरह से समस्या व उससे जुड़े सारे पहलुओं पर षोध करके जानकारियों का एकत्रीकरण करता है। इस सारे तथ्यों को एकत्रित करने के पश्चात् वह उनका अध्ययन करके समस्या के उत्पन्न होने के कारणों का अपने विवेक तथा पूर्व के अनुभवों से पता लगाता है तथा समस्या समाधानित करने का प्रयास करता है।

अपने इस रूप में समाज कार्यकर्ता सर्वप्रथम किसी समस्या विशेश को केन्द्रित करके अपना अध्ययन आरम्भ करता है। समस्या के बारे में विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से सेवा—प्रदाता समस्या—ग्रस्त व्यक्ति से, उसके समुदाय से, उसके परिवार से, उसके मित्रों/रिष्तेदारों आदि से समस्या से जुड़ी बातें पूछता है। इस साक्षात्कार का उद्देश्य समस्या से ग्रसित व्यक्ति/समाज/संस्था के वातावरण की पूरी जानकारी के साथ—साथ उस सेवार्थी के बारे में भी पूरी जानकारी प्राप्त करना होता है।

इन जानकारियों को ग्रहण करके सेवा—प्रदाता अपने पास लिखित रूप में रखता रहता है। जानकारी ग्रहण करने हेतु वह प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष अवलोकन, साक्षात्कार, प्रष्नावली जैसी समाज—कार्य शोध तकनीकों का प्रयोग करता है। एकत्रित जानकारी को वह पुनः पढ़कर व समझकर समस्या का कारण व उसका निवारण खोजने का प्रयास करता है। इस हेतु वह अन्य द्वितीयक व प्राथमिक स्रोतों की मदद से हर सम्भव उपाय को प्राप्त करने की कोशिश करता है। प्राप्त जानकारियों का एकत्रीकरण, वर्गीकरण, सारणीकरण आदि करने के पश्चात् वह उसका दस्तावेजीकरण भी करता है जिससे भविश्य में समय आने पर उसके द्वारा खोजे गये सम्बन्धित समस्या से सम्बन्धित तथ्य अन्य शोधार्थियों के भी काम आ सकें।

इस प्रकार समाज कार्यकर्ता एक शोधार्थी के रूप में एक ओर जहाँ समस्या से ग्रस्त सेवार्थी की समस्या का समाधान करने का सतत् प्रयास करता है वहीं दूसरी तरफ वह स्वयं के लिये भी एक शोध कार्य करते हुये समस्या विशेष के सारे पहलुओं से सम्बन्धित जानकारी एकत्र करता है। इस कार्य के साथ ही एक ऐसा दस्तावेज भी अस्तित्व में आने की सम्भावना रहती है जिससे भविश्य में अन्य लोग भी उस समस्या विशेष के पीछे के कारण, निराकरण के उपाय आदि को समझकर व्यवहार में लाने हेतु सहयोग पा सकें।

एक शोधार्थी के रूप में समाज कार्यकर्ता व्यक्ति अथवा समूह (सेवार्थी) की कमियों को दूर करके उन्हें अपनी समस्या के समाधान की ओर उन्मुख करने का पूरा प्रयास करता है। उसके व सेवार्थी के मध्य एक आत्मीय सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जो समस्या के कारणों व निराकरण के उपायों को जानने, समझने व समझाने हेतु आवश्यक होता है। इस रूप में शोधार्थी समाज–कार्यकर्ता का उद्देश्य सेवार्थी को आत्मविश्वास से परिपूरित करने के साथ ही अपना भी ज्ञान–स्तर बढ़ाना होता है। सेवा–प्रदाता के लिये यह सम्भव है कि इस प्रकार के रूप में वह समस्या का समाधान कम समय में न कर पाये अतएव इस प्रकार के सेवा–प्रदाता का धैर्य–स्तर काफी विकसित होना चाहिये। वह सेवार्थी की जरूरतों का ऑकलन करता है तथा उस प्रकार की ही सेवा वह प्रदान करता है।

सेवा–प्रदाता के लिये यह आवश्यक है कि वह पूर्वाग्रह से ग्रसित न हो। उसके पास यदि समस्या विशेश से जुड़ा हुआ कोई अगर पूर्व अनुभव (अपना अथवा किसी अन्य का) हो तब भी उसे चाहिये कि वह प्रत्येक सेवार्थी को एक अलग सेवार्थी की भाँति ही ले तथा पूरी तरह से समस्या के पीछे निहित कारणों को जानकर ही समस्या का समाधान करने का उपाय करे। सेवा–प्रदाता यदि पूर्वाग्रह से ग्रसित हुआ तो वह अपने अनुभवों को ही सेवार्थी पर थोप देता है जिससे या तो समस्या का रूप विकृत हो जाता है अथवा सेवा–प्रदाता व सेवार्थी दोनों ही समस्या से अलग हो जाते हैं।

उदाहरणतः यदि एक व्यक्ति अपनी स्वास्थ्य समस्या से ग्रसित होकर एक सेवा–प्रदाता के पास आता है तो सेवार्थी के आस–पास के वातावरण, उसके परिवार की पृश्ठभूमि, घर का माहौल, कार्यस्थल का वातावरण आदि की जानकारी लिये बिना ही अगर सेवा–प्रदाता केवल अपने पूर्वानुभव के आधार पर ही सेवार्थी को समस्या–समाधान का उपाय बता देता है तो यह सम्भव है कि सेवार्थी समस्या से ही ग्रसित बना रहे क्योंकि अगर कई लोग एक ही समस्या से ग्रसित हैं तो यह सम्भव है कि उन सभी की समस्या एक ही प्रकार की हो पर उसके पीछे के कारक

भी एक ही हो यह आवश्यक नहीं, अतः पूरी जानकारी समस्या समाधान हेतु आवश्यक है और शोधार्थी के रूप में एक समाज कार्यकर्ता बिना यह कार्य किये समस्या समाधान का अगला चरण प्राप्त करने में अक्षम रहेगा।

एक सेवा प्रदाता के षोधार्थी के रूप में होने के कारण इस बात के अधिकांष अवसर रहते हैं कि वह अपने सेवार्थी विशेश की समस्या से सम्बन्धित नये–नये प्रयोग अमल में लाये परन्तु यह भी सेवा–प्रदाता को ध्यान में रखना चाहिये कि इन प्रयोगों को एक सीमा तक ही प्रयोग में लाना चाहिये।

प्रयोग करते समय सेवा–प्रदाता को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि किसी भी परिस्थिति में प्रयोग करते समय वातावरण या परिस्थितियाँ उसके नियन्त्रण से बाहर न जाने पाये। ऐसा होने पर उसे तत्काल परिस्थितियों पर अंकुष लगाने हेतु तैयार रहना चाहिये जिससे समय रहते ही सेवार्थी व सेवा–प्रदाता के बीच के समस्या समाधान के लिये किये जा रहे प्रयासों की दिशा अन्य ओर न जाने पाये।

नये–नये प्रयोगों के अपनाने से पूर्व सेवा–प्रदाता को अपनी भावनाओं व आत्मविष्वास पर भी नियन्त्रण रहना चाहिये साथ ही नकारात्मक परिस्थितियों के लिये भी सदैव तैयार रहना चाहिये। एक सेवा–प्रदाता जब षोधार्थी के रूप में किसी समस्या के समाधान का प्रयास करता है तो अपने दिमाग में एक उपकल्पना के निर्माण के साथ कार्य का आरम्भ करता है। इसके पश्चात् उसी उपकल्पना की प्राप्ति हेतु अपने रणनीतियों को चरणबद्ध तरीके से सम्पादित करता है।

यदि एक सेवा–प्रदाता शोधार्थी की भाँति कार्य करता है तो इसका आशय यह है कि वह कुछ नयी चीज को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर है तथा परिणामों से परी तरह से भिज्ञ नहीं है। ऐसी स्थिति में परिणाम सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रकार के हो सकते हैं तथा परिणाम यदि नकारात्मक आये तो सेवा–प्रदाता को अपना धैर्य कदापि नहीं खोना चाहिये नही ंतो सेवार्थी पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है तथा समस्या विकृत रूप में हो सकती है। ऐसी स्थिति में सेवा–प्रदाता को पूर्व अनुभवों को भी थोड़ा सा ध्यान देकर प्रयोग में लाने हेतु तैयार रहना चाहिये। सेवार्थी के आत्मविश्वास व भावनाओं पर नियन्त्रण का आशय इस बात से है कि सेवार्थी को कदापि यह नहीं सोचना चाहिये कि जो वह करेगा वही सही होगा अपितु सोच–समझकर व सेवार्थी के अनुसार समस्या–समाधानित करने हेतु प्रयास करने चाहिये न कि स्वयं के अपने वातावरण, भावनाओं व परिस्थितियों के अनुसार। शोधार्थी को शोध के पश्चात् यह चाहिये कि वह अपने अनुभवों को निश्चित रूप से दस्तावेजीकरण के माध्यम से सुरक्षित रख ले तथा इसको अन्य के प्रयोग हेतु भी स्वतन्त्र कर दे जिससे नीति–निर्माण, अन्य शोधों हेतु प्रयोग में लाया जा सके।

6.5.3 समाजकार्यकर्ता की भूमिका– एक नीति निर्माता के रूप में

एक नीति निर्माता के रूप में समाजिक कार्यकर्ता का मुख्य कार्य लागों की आवष्यकताओं को समझकर, उसके अनुसार सेवाओं को प्रदान करना है। इस कार्य में वह समस्या–ग्रस्त सेवार्थी तथा संस्था की सहभागिता भी समाहित रखता है क्योंकि यह माना जाता है कि समस्या जिसकी होती है वही उसके पीछे के कारणों, समस्या समाधान के तरीके तथा समस्य–समाधानित करने के लिये किये जाने वाले उपायों के बारे में अच्छी तरह से भिज्ञ होता है। साथ ही समस्या से लड़ने के लिये सेवार्थी के पास क्या–क्या संसाधन हैं? समस्या से लड़ने व उसको समाप्त करने में सेवार्थी किस स्तर तक सक्षम है तथा उसे अन्य किस प्रकार की और कहाँ से सहायता की आवष्यकता है? यह सब वह जानता है। यही कारण है कि एक नीति निर्माता के लिये प्रत्यक्ष रूप से सेवार्थी अथवा सेवार्थी समूह का होना व उसका प्रक्रिया में सहभाग लेना अति आवश्यक है।

नीति निर्माता के रूप में एक समाज कार्यकर्ता सेवार्थी से ही जानकारी एकत्रित करना आरम्भ करता है। वह कार्य–कारणों के सिद्धान्त पर आधारित होकर समस्या के पीछे निहित कारणों को खोजता है तथा उन्हीं पर ध्यान देकर सम्बन्धित नियोजन का कार्य करता है। नियोजनकर्ता हेतु यह आवश्यक है कि वह सेवार्थी की जरूरत को व उसकी क्षमता को ध्यान में रखकर सेवार्थी के लिये ही परियोजना पर कार्य करें। कभी–कभी ऐसा होता है कि सेवा–प्रदाता अपने अनुभव, अपने वातावरण, अपनी परिस्थिति, अपनी क्षमता, अपने विचार आदि से प्रभावित होकर समस्या का आकलन व उसका समाधान करने की भूल कर बैठता है जिससे सम्भव है कि समस्या समाधानित भी हो जाय परन्तु यह प्रणाली सेवार्थी के लिये प्रतिकूल व सर्वथा अनुपयुक्त होती है तथा निश्चय ही समाज कार्य की उस अवधारणा के खिलाफ होती है जिसमें समस्या समाधान का वह तरीका बताया गया है जिससे समस्या से प्रभावित व्यक्ति स्वयं भविश्य में समस्या का समाधान अपने स्तर पर ही करने में सक्षम बन जाता है।

यदि नीति निर्माता के रूप में समाज कार्यकर्ता में यह गुण नहीं है कि वह समस्या से जुड़े तथ्य संग्रहित करके सेवार्थी हेतु सक्षम समाधान का मार्ग तलाष कर सके तो वह पूरा समाज/सेवार्थी विशेश तो समस्या से प्रभावित रहेगा ही साथ ही नीति निर्धारक तत्वों द्वारा भी एक प्रभावी योजना न बन पायेगी।

उदाहरणतः यदि एक गरीब व्यक्ति सहायता हेतु किसी समाज कार्यकर्ता के पास आता है तो इस स्थिति में समाज कार्यकर्ता को एक नियोजनकर्ता के रूप यह कभी नहीं करना चाहिये कि वह बिना गरीबी के कारण जाने ही उस सेवार्थी को

प्रयास करने का सलाह दे दे, बल्कि सेवा–प्रदाता को सर्वप्रथम अमुक सेवार्थी की वास्तविक स्थिति का पता लगाना चाहिये। ऐसा करने हेतु वह या तो सेवार्थी का साक्षात्कार लेकर अथवा अपने प्रत्यक्ष अवलोकन की प्रणाली का प्रयोग कर लेता है। वास्तविक स्थिति के अवलोकन के पश्चात् यदि व्यक्ति सही में गरीबी से पीड़ित है तो वह उसकी गरीबी के पीछे के सही कारणों को ज्ञात करने का प्रयास करता है। यदि गरीबी का कारण व्यक्तिगत है तो समाज–कार्यकर्ता उसे व्यक्तिगत सेवार्थी के रूप में लेकर उसे व्यक्तिगत कारकों पर आधारित तथा उसी क्षमता के अनुसार नियोजित प्रयास करने हेतु तैयार करने का प्रयास करता है। इस प्रक्रिया में वह सेवार्थी को सकारात्मक दिशा में मोड़कर स्व–विकास हेतु कार्य करने का सुझाव देता है तथा गरीबी के कारणों को खत्म करने का प्रयास करने हेतु मार्गदर्शित करता है। इसके विपरीत यदि गरीबी का कारण वृहत् स्तर पर अथवा सामुदायिक है तो वह व्यक्ति के साथ–साथ समुदाय को भी गरीबी के कारण खोजकर उनसे सामूहिक अथवा सामुदायिक प्रयास करने का सुझाव देता है।

इस प्रक्रिया में जहाँ एक ओर वह सेवार्थी/समूह को स्वयं व समुदाय/समूह की शक्ति पहचानकर व स्वयं के पास उपस्थित संसाधनों का प्रयोग करके गरीबी को हटाने हेतु सुझावित करता है। वही दूसरी ओर वह सरकार द्वारा संचालित योजनाओं के माध्यम से समुदाय की यह समस्या खत्म करने की कोषिष भी करता है। सरकार पहले से ही अगर उस कारण विशेश को केन्द्रित करके कोई प्रयास कर रही हो तो वह उस योजना की जानकारी समूह तक पहुँचाता है तथा समस्या से ग्रस्त सेवार्थी/समूह को उसमें सहभागिता लेने हेतु प्रेरित करता है। इसके विपरीत यदि उस कारण हेतु यदि कोई उपचार नहीं है तो वह नीचे के स्तर यानि सेवार्थी के स्तर से समस्या हेतु नियोजन नीति की सोच उत्पन्न करता है तथा जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, वह सेवार्थी को भी सहभागिता सुनिश्चितकरते हुये समस्या समाधान हेतु नियोजन नीति बनाता है।

समाज में जहाँ बहुत सारे लोग संसाधनों से वंचित रह जाते हैं तथा समाज दो वर्गों में बंट जाता है जो हैं अमीर तथा गरीब, समाज कार्यकर्ता एक नीति निर्माता के रूप में दोनों वर्गों के बीच की खाई को पाटने का पूर्ण प्रयास करता है। यह कोशिश करता है कि लोगों के बीच की असमानता चाहे वह राजनैतिक हो, आर्थिक हो, सामाजिक हो, दूर होनी चाहिये तथा सभी समान होने चाहिये। वहीं जहाँ सभी को आगे बढ़ने व बेहतर जीवन यापन के समान अवसर प्राप्त नहीं हो पाते, नियोजन नीति के माध्यम से एक समाज कार्यकर्ता पूरा प्रयास करता है कि यह अवसर समाज के उस अन्तिम व्यक्ति को भी प्राप्त हो जो विकास की धारा से

अछूता है। वह समाज में एक समान स्तर बनाये रखने हेतु हर सम्भव प्रयास करता है तथा इसे सरकार व अन्य संस्थाओं की कार्यप्रणाली व नीति–निर्धारण में षामिल कराने का हर सम्भव प्रयास करता है।

एक नीति–निर्माता के रूप में एक समाज कार्यकर्ता समाज में एक सन्तुलन बनाने के लिये समाज के सभी वर्गों में समानता बनाये रखने के लिये नीति–निर्धारण का काम करता है। यदि समाज कार्य नहीं होगा तो समाज छिन्न–भिन्न हो जायेगा और यदि नीति–निर्धारण का कार्य एक समाजकार्य करने वाला व्यक्ति नहीं करेगा तो वह केन्द्र–बिन्दु के आस–पास तो भटक सकता है परन्तु केन्द्रित समूह के लाभ के लिये नहीं हो पायेगा। नीति–निर्माता के रूप में सेवा–प्रदाता समुदाय, समूह स्तर पर कार्य करके एक वृहत् रूप में अपने अस्तित्व को रखता है। इस प्रकार एक बड़े समूह में कार्य करने हेतु उसमें लचीलापन का गुण होना चाहिये। व्यक्ति विशेश हेतु कार्य न करके जब एक समाज कार्यकर्ता कई लोगों के लिये कार्य करता है तो उसे सभी की समस्या सुननी व समझनी पड़ती है तत्पश्चात् वह यह निर्णय लेता है कि कौन सी ऐसी समस्या है जो समूह में अधिक लोगों की है? वह उसी पर ध्यान देकर सर्वप्रथम उसे दूर करने का प्रयास करता है। सेवा–प्रदाता लचीलेपन से युक्त होना चाहिये परन्तु उसके साथ ही यह भी उसे ध्यान रखना चाहिये कि कहीं यह लचीलापन उसे उसके लक्ष्य से दूर तो नहीं ले जा रहा है क्योंकि यदि लचीलापन उसके ऊपर हावी हो जायेगा तो वह नीतियों का सही तरह से लक्ष्य–समूह के लिये निर्माण नहीं कर पायेगा। इस प्रकार यह स्पश्ट है कि नीति निर्माण का कार्य नीचे से यानि जिनके लिये नीति–निर्माण हो रहा है, उन्हीं के अनुसार होना चाहिये न कि उनकी जरूरतों व उनके नीतियों का निर्धारण वो लोग करे जो समस्या विशेष से कभी ग्रसित ही नहीं रहे हैं क्योंकि ऐसा होने से अनेक प्रकार की त्रुटियाँ नीतियों में होंगी जो समस्या कम न करके निष्चय ही अनियमितताओं को आमन्त्रण देगी।

6.5.4 समाज कार्यकर्ता की भूमिकाः एक समन्वयक के रूप में

एक समन्वयक के रूप में समाजकार्यकर्ता समाज में उपलब्ध सारी सुविधाओं व स्रोतों को इस प्रकार संगठित करता है जिससे समाज के द्वारा उनका ज्यादा से ज्यादा प्रयोग किया जा सके। एक समन्वयक सर्वप्रथम समुदाय/समूह/सेवार्थी की समस्या को अच्छी भाँति समझता है, उसके बाद समाज में जो स्रोत अथवा संसाधन उपलब्ध हैं, उन्हें ज्ञात करता है, सेवार्थी की क्षमता की पहचान करता है तथा सरकार व अन्य संस्थाओं द्वारा चलायी जा रही परियोजनाओं की जानकारी ज्ञात करता है, इसके पश्चात् वह इन सभी को आपस में समन्वित करके समस्या को दूर

करने का प्रयास करता है। एक समन्वयक के रूप में वह मध्यस्थ की भूमिका का निर्वहन करता है जिसके बिना सेवार्थी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में स्वयं को असहाय महसूस करता है। समाज–कार्यकर्ता अपने इस रूप में एक ऐसी कड़ी की भाँति होता है जो ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर तक सभी स्तरों पर एक आवश्यक भूमिका में होता है। वह सेवार्थी की समस्या व उसके समाधान के प्रकार को भलीभाँति समझकर सेवार्थी की मदद इस प्रकार करता है कि वो आत्मनिर्भर होकर भविश्य में भी बिना समाज कार्यकर्ता की किसी सहायता के समस्या का समाधान कर सके। इसके पीछे कारण यह है कि यह सम्भव है कि भविष्य में समाज कार्यकर्ता पुनः इस प्रकार की समस्या के उत्पन्न होने पर सेवार्थी की सेवा हेतु उपलब्ध न हो पाये तो ऐसी दशा में ही सेवार्थी स्वयं अपनी समस्या–समाधानित कर सके, इसका प्रयास भी सेवा–प्रदाता द्वारा एक समन्वयक के रूप में किया जाता है।

इस प्रक्रिया में वह सेवार्थी को समय–समय पर यह भी अवगत कराता रहता है कि किस समय व किस प्रकार उसे अवसरों को प्रयोग में लाना है व अपनी समस्या का समाधान करने हेतु सहायता प्राप्त करनी है। एक समन्वयक के रूप में वह सभी स्तरों पर उठे विवादों को भी समाप्त करने का प्रयास करता है। वह समाज में किसी व्यक्ति विशेश के हित में काम नहीं करता है तथा पूरे समाज के हित में कार्य करता है। वह ऐसी समस्याओं के समाधान हेतु समन्वय का कार्य करता है जो पूरे समुदाय अथवा समुदाय मे ज्यादातर लोगों की समस्या हो। इसी के विपरीत जब वह किसी सेवार्थी विशेश के लिये समस्या–समाधान का कार्य करता है तो उसकी स्थिति, उसके परिवार का वातावरण, उसके पास–पड़ोस का वातावरण आदि का अध्ययन करता है तथा समन्वय स्थापित करने का प्रयास करता है।

उदाहरणतः यदि एक मानसिक रोगी अपनी समस्या समाधान हेतु यदि समन्वयक के पास आता है तो वह पहले रोगी की मानसिक स्थिति के साथ–साथ पारिवारिक व सामाजिक स्थिति का भी अवलोकन करता है। ऐसा करने के पीछे उसका मकसद यह होता है कि वह बीमारी के पीछे के कारणों को ज्ञात कर सके। इसके पश्चात् वह उस कारण से सेवार्थी का समन्वय बिठाने की कोशिश करता है। जब कारण और कार्य में आपसी समन्वय हो जायेगा तो समस्या अपने आप समाधानित हो जायेगी। इस रूप में समाज–कार्यकर्ता एक जगह से सूचना व विचार दूसरी जगह पहुँचाता है। सदियों से विचारों के आदान–प्रदान के माध्यम से समस्याओं को सुलझाने की रीति चली आ रही है। यह प्रक्रिया सेवार्थी के आत्ममंथन तथा समस्या से सम्बन्धित भाव को समझने में सहायक है। यह सेवार्थी तथा सेवा–प्रदाता दोनों

को समस्या–समाधान हेतु प्रयास करने में सहायक होता है तथा समाधान की दिशा में निर्देषित करता है। समाज कार्य के क्षेत्र में जब समाज कार्यकर्ता, सेवार्थी से मिलता है तो वे एक दूसरे से अपने विचारों का आदान–प्रदान करते हैं तथा एक दूसरे को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। ऐसा करने का अभिप्राय समस्या–समाधान हेतु प्रयास करने से पूर्व एक ऐसा सम्बन्ध सेवार्थी एवं सामाजिक–कार्यकर्ता के मध्य स्थापित करने हेतु है जिससे दोनों समग्र प्रयास के साथ समस्या का हल कर सकें।

इस रूप में सामाजिक–कार्यकर्ता अपनी भागीदारी तो समस्या समाधान हेतु तो सुनिश्चित करता है, साथ ही वह सेवार्थी को भी पूर्ण यागदान देने हेतु प्रेरित करता है। समस्या हल करने हेतु यदि दोनों अपना समुचित योगदान नहीं देंगें तो जहाँ एक ओर सेवार्थी के योगदान न देने के कारण समस्या क्या है? उसका स्वरूप क्या है? उसका स्तर क्या है? उसका समाधान अपने स्तर पर सेवार्थी कर पाने में कितना सक्षम है? आदि बातों को जान पाने व समझ पाने में सेवा–प्रदाता अज्ञात रहेगा वही यदि सेवा–प्रदाता अपना उचित योगदान नहीं देता है तो समस्या का बाहरी वातावरण से क्या सम्बन्ध है? उसका उचित समाधान किस प्रकार किया जा सकता है? बाहरी संस्थायें समस्या समाधान में किस प्रकार का योगदान कर सकती हैं? समन्वय किस प्रकार स्थापित किया जाय तथा कैसे स्थापित किया जाय? आदि तत्व समस्या समाधान हेतु नहीं मिल पाते हैं तथा दोनों ही स्थितियों में समस्या हल करना बहुत ही कठिन होता है।

सामाजिक कार्यकर्ता, सेवार्थी तथा उसके सामाजिक पर्यावरण के बीच सन्तुलन तथा सामन्जस्य स्थापित करने हेतु प्रयासरत होता है। इस प्रक्रिया में सेवार्थी का सहयोग नितान्त आवश्यक है। सेवार्थी व सेवा–प्रदाता दोनों को उन सभी प्रयासों में भाग लेना चाहिये जो समस्या को समाप्त करने हेतु किये जा रहे हैं। सेवा–प्रदाता, सेवार्थी की जैविकीय एवं पारिस्थितिकीय दोनों परिस्थितियों को समझकर तथा उससे सम्बन्धित आकड़ों को एकत्रित करके पहले समस्या–समाधान करने हेतु रणनीति बनाता है तथा चरणबद्ध तरीके से समस्या को कई भागों में तोड़कर चरण दर चरण उसे समाधानित करने हेतु प्रयास करता है। साथ ही किस चरण पर किस जगह से सहायता प्राप्त करके समस्या–समाधान की प्रक्रिया को आसान बनाया जा सकता है, वह निरन्तर इस बात पर ध्यान रखता है तथा सही समय पर सही जगह सहायता प्राप्ति हेतु समन्वय स्थापित करके मदद प्राप्त करता है।

एक सामाजिक कार्यकर्ता तथा सेवार्थी के बीच यदि समन्वय का सम्बन्ध नहीं होगा तो दो भिन्न प्रकार की परिस्थितियों दोनों के बीच उत्पन्न हो सकती है। जहाँ एक तरफ सेवार्थी मानसिक तनाव व आत्मीय सम्बन्ध न हो पाने के कारण परिचय के पश्चात् ही तुरन्त साक्षात्कार व समस्या समाधान की प्रक्रिया को समाप्त करना चाहता है वहीं दूसरी ओर सेवा–प्रदाता अपनी बुद्धि, अनुभव तथा अपने व्यवसाय के महत्व व साख बचाने व अपने जीवनयापन हेतु आवश्यक इस प्रक्रिया को मजबूती प्रदान करने का प्रयास करता है। यदि इस प्रक्रिया में सेवार्थी सफल होता है तो समस्या का समाधान होना नामुमकिन हो जाता है जबकि यदि सेवा–प्रदाता अपने प्रयास में सफलता प्राप्त करता है तो समस्या समाधानित होती ही है, साथ ही सेवार्थी का आत्मविष्वास भी बढ़ता है तथा वह समस्या समाधान की आगे होने वाली प्रक्रिया में सकारात्मक व सक्रिय हिस्सेदारी प्रदर्षित करता है। इस प्रक्रिया में षुरू में तो सेवार्थी स्वयं को असहज महसूस करता है परन्तु सेवा–प्रदाता अपने भावात्मक व्यवहार, तल्लीनता व सहयोग की भावना का प्रदर्शन सेवार्थी के प्रति सेवार्थी को दर्षाकर उसका विष्वास व सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करता है। वह बिना किसी व्यवधान के ध्यान से सेवार्थी की बात सुनता, समझता है जिससे सेवार्थी को लगे कि वह सेवार्थी के प्रति समर्पित है तथा समस्या–समाधान के प्रयास हेतु गम्भीर है। वह सेवार्थी को समस्या–समाधान के उचित तरीकों को बताता है तथा उस पर विष्वास होने के बाद सेवार्थी उसके द्वारा सुझाये गये तरीकों का आत्मसात करता है। ऐसा करने से सेवार्थी को समस्या–समाधान में सहायता मिलती है। इस प्रकार यह प्रक्रिया मानवीय सम्बन्धों पर आधारित होती है। बिना मानवीय सम्बन्धों की स्वीकृति के सेवार्थी व सेवा–प्रदाता में समन्वय का व्यवहार कदापि उत्पन्न नहीं होगा तथा दोनों यदि एकल रूप से समस्या–समाधान का प्रयास करना चाहेंगे तो यह प्रयास कभी भी सफल नहीं हो सकेगा।

6.5.5 समाज कार्यकर्ता की भूमिका – एक प्रशासक के रूप में

एक प्रशासक के रूप में एक सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका अत्यन्त ही महत्वपूर्ण होती है। स्थितियॅा चाहे वो अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल हो नियन्त्रण का कार्य केवल एक अनुशासक ही अपनी प्रतिभा, बुद्धि व अनुभव द्वारा कर सकता है। एक अनुशासक के रूप में सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि समाज कार्यकर्ता स्वयं की परिस्थिति व स्वयं के गुणों, क्षमता आदि को भली प्रकार से जाने। सेवार्थी की भॉति ही वह भी एक पर्यावरण व समाज से सम्बन्ध रखता है तथा यह सम्भव है कि सेवार्थी से उसकी परिस्थितियॅा एवं वातावरण भिन्न हों। ऐसी स्थिति में यदि वह अपनी स्वयं की परिस्थितियों को बिना समझे समस्या समाधान का प्रयास करेगा तो

निश्चय ही वह सेवार्थी के लिए हितकर नहीं होगा। यहॉ पर भी ध्यान देना चाहिये कि हो सकता है कि सेवार्थी की समस्या का समाधान हो जाये परन्तु यह प्रक्रिया सेवा–प्रदाता के अनुसार ही सम्पन्न होगी तथा एक प्रशासक के लिये यह कतई ठीक नहीं है क्योंकि अच्छा प्रशासक वही माना जाता है जो सभी की भावनाओं, परिस्थितियों, क्षमताओं का ऑकलन करके, सभी के परस्पर सहयोग से, सामुदायिक विकास की तरफ प्रयास करें। सामाजिक कार्यकर्ता एक मानव होने के नाते भावनाओं से युक्त होता है परन्तु इसका मतलब कतई यह नहीं कि वह भावनाओं में पड़कर कठोर निर्णय लेने से बचेगा। एक प्रशासक के व्यवहार में लचीलापन आवश्यक है परन्तु कभी–कभी ऐसी परिस्थितियॉ उत्पन्न हो जाती है जब लचीलापन समस्या समाप्त करने के बजाय समस्या विकृत अथवा अन्य दूसरी समस्यायें उत्पन्न करने लगता है। ऐसी परिस्थितियों में सामाजिक–कार्यकर्ता की समझ इस स्तर की होनी चाहिये कि उसे कब और किस स्तर तक अपने व्यवहार में लचीलापन लाना है ? एक सामाजिक कार्यकर्ता अपने प्रशासक के रूप में कठोर व समुदाय/सेवार्थी के लिये आवश्यक व हितकारी फैसले ले सके, इस प्रकार के व्यक्तित्व का होना आवश्यक है नहीं तो समस्या समाधान के तरीके अपने लक्ष्य से भटकते रहेगे।

एक प्रशासक के रूप में सामाजिक कार्यकर्ता में नेतृत्व की क्षमता होनी चाहिये। उसके व्यक्तित्व में यह गुण हो कि वह आगे बढ़कर समस्याओं के समाधान पढ़ने व समन्वय स्थापित करने में सहायता उपलब्ध करा सके। वह इस प्रकार के व्यक्तित्व का मालिक होना चाहिये कि अगर वह लोगों से कुछ कहे तो लोग गम्भीरता से उसकी बातों, विचारों को आत्मसात करें। उसके द्वारा बताये व सुझाये गये समाधानों पर चले तथा उस पर विश्वास करें। उसके अन्दर ऐसी क्षमता हो कि वह अपनी ओर लोगो का ध्यान आकर्षित कर सके। उसके पास ऐसी क्षमता हो कि वह समाज एवं समस्या में समन्वय स्थापित करके परिस्थितियों को प्रबन्धित कर सके। लक्ष्य की तरफ अपना ध्यान केन्द्रित करके वह समस्या के अनुसार परिस्थितियों को बदलकर तथा उपलब्ध सम्पूर्ण संसाधनों को उनके अधिकतम स्तर तक प्रयोग करने में सहज हो। वह समस्या को लेकर शासन–प्रशासन स्तर तक जाने व अपनी बात को मजबूती से रखकर ठोस निर्णय प्रापत करने में माहिर हो।

इसके अतिरिक्त सामाजिक कार्यकर्ता अपने इस रूप में जो भी रणनीति समस्या को समाधानित करने हेतु बनाता है उसकों चरण बद्ध तरीके से सम्पन्न कराने मे स्वयं सक्षम होता है। एक प्रशासक के रूप में वह अनेक भूमिकायें जैसे ज्ञान–प्रबन्ध, पर्यवेक्षक, मूल्यांकनकर्ता निर्देशक आदि का भी समय–समय पर निर्वदन करता है।

एक ज्ञान –प्रबन्धक के रूप में वह सारी सूचनायें अपने पास संग्रहित करता है जैसे कि समस्या क्या है ? उसका स्वरूप क्या है? उससे सम्बन्धित बचाव के उपचार के क्या उपाय है ? सम्बन्धित समस्या दूर करने में संसाधन आवश्यक है व कौन से उपलब्ध है ? सेवार्थी समस्या को किस रूप में वह किस स्तर तक समझता है ? वह स्वयं इसका समाधान करने में किस स्तर तक सक्षम है ? आदि तथा इन जानकारियों से स्वयं के साथ–साथ अन्य संस्थाओं जो कि समस्या–समाधान में आवश्यक हस्तक्षेप करती है तथा साथ ही सेवार्थी को भी हस्तान्तरित करता है।

एक प्रशासक के रूप में वह सारी प्रक्रियाओं पर दूर से नजर रखता है तथा जहॉ भी प्रक्रिया अपने लक्ष्य से भटकती है वहॉ वह स्वयं प्रक्रिया में शामिल होकर उसे लक्ष्य की ओर उन्मुख करता है तथा प्रक्रिया में शामिल अन्य सदस्यों से भी इस प्रक्रिया से अवगत कराता है। वह लक्ष्य प्राप्ति की समीक्षा करके यह भी ज्ञात कर लेता है कि समस्या समाधान में कितना समय लगेगा ? वह प्रक्रिया का मूल्यांकन करके यदि आवश्यक हो तो वह उसमें मूलभूत परिवर्तन लाने का प्रयास करता है तथा हल को और प्रभावी ढंग से लाने का प्रयास करता है। वह समस्या समाप्ति हेतु नियोजन करता है, रणनीति बनाता है, समन्वय स्थापित करता है तथा सामाजिक सेवा कार्यक्रमों अथवा सामुदायिक सहायता प्रदान करने वाले संगठनों की सहायता लेकर समस्या समाधान प्रयास को आसान बनाने के प्रयास करता है। परियोजना में होने वाले धन व्यय का लेखा–जोखा रखता है तथा लाभ का मूल्यांकन भी करता है। वह समय–समय पर परियोजना से सम्बद्ध कार्यकर्ताओं, परामर्शदाताओं तथा परिवीक्षा अधिकारियों को दिशा–निर्देश भी प्रदान करता रहता है। वह अपनी भूमिका में परियोजना से जुड़ी सारी जिम्मेदारियों का स्वयं निर्वहन करता है तथा असफलता हेतु जिम्मेदार व त्रुटियों हेतु उत्तरदायी होता है।

वह समय–समय पर सामाजिक समस्याओं कुरीतियों हेतु जन सुनवायी, आन्दोलन जैसे कार्य भी करता है तथा समस्या – ग्रसितों की समस्या से लडने हेतु वकालत का कार्य भी करता है।

6.6 सार संक्षेप

भारतवर्ष में उपरिलिखित विभिन्न सामाजिक विधानों का मूल्यांकन अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि विभिन्न धर्मों एवं जातियों के विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के हितों का संरक्षण एवं संवर्द्धन करने के लिए अलग–अलग विधान बनाये गये हैं। इन विधानों की संख्या इतनी अधिक है कि इन्हें सम्पूर्णता में लागू करते हुए किसी एक श्रेणीविषेश की अभिरूचियों का संरक्षण एवं संवर्द्धन कर पाना

अत्यन्त कठिन कार्य है।यद्यपि ऐसे प्रयास सदैव से होते रहे हैं किन्तु इस दिशा में व्यवस्थित चेतन एवं योजनाबद्ध प्रयास स्वतंत्रता के पश्चात् ही प्रारम्भ किये जा सके जब राज्य एक कल्याणकारी राज्य के रूप में उभर कर सामने आया। ये प्रयास निर्बल एवं शोषण का सरलापूर्वक शिकार बनने वाले वर्गों के हितों के संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु सामाजिक विधानों के रूप में सामने आये।

इस प्रकार इस इकाई के माध्यम से हमे एक सामाजिक कार्यकर्ता के विभिन्न रूपों में भूमिकाओं का ज्ञान होता है। एक शिक्षक, शोधार्थी, नीति–निर्माता, समन्वयक तथा प्रशासक के रूप में सामाजिक कार्यकर्ता की जिम्मेदारी, भूमिका, उत्तरदायित्व समाज के साथ किस रूप में है ? यह स्पष्ट है। समाज की समस्याओं को दूर करने हेतु समाज कार्यकर्ता इन महत्वपूर्ण भूमिकाओं में सदा समन्वय स्थापित कर अपनी पूर्ण सहभागिता प्रदर्शित करता है। एक समाजकार्यकर्ता सेवार्थीविषेश के समस्या पर अपना ध्यान केन्द्रित कर उसकी सहभागिता समस्या–समाधान की प्रक्रिया में शामिल कराकर समेकित रूप से अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रयास करता है। स्पष्ट है कि एक सामाजिक कार्यकर्ता को सफलता पूर्वक लक्ष्य की ओर अग्रसर रहने के लिये जहॉ स्वयं के साथ–साथ सेवार्थी का भी सहयोग समाहित करना चाहियें, वही सरकारी व अन्य संस्थाओं का भी समन्वय स्थापित करके परियोजना को उत्कृष्ट रूप से प्रभावी बनाना चाहिये।

6.7 अभ्यास प्रश्न

1 सामाजिक विधान से आप क्या समझते हैं?

2 सामाजिक विधान की अवधारणा आप क्या समझते हैं?

3 सामाजिक विधान के अर्थ से आप समझते हैं?

4 सामाजिक नीति की परिभाषा दीजिए ?

5 सामाजिक नीति की आवश्यकता पर निबंध लिखिये?

6.सामाजिक नीति के क्षेत्र पर निबंध लिखिये।

7. एक शिक्षक के रूप में सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका को स्पष्ट करें?

8. समाज में सामाजिक कार्यकर्ता के महत्व को एक शोधार्थी की भॉति वर्णित करें।

9. नीति–निर्धारण प्रक्रिया में एक सामाजिक कार्यकर्ता का क्या योगदान है?

10. समाज के विकास में एक सामाजिक कार्यकर्ता किस प्रकार समन्वय स्थापित करता है? उसके योगदान को स्पष्ट करें।

11. एक प्रशासक के रूप में परियोजना प्रबन्धन व सामाजिक विकास हेतु सामाजिक कार्यकर्ता में कौन से गुण निहित होने आवश्यक है?

6.8 पारिभाषिक शब्दावली

Role	भूमिका	Agency	संस्था
Social worker	सामाजिक कार्यकर्ता	Techniques	त्कनीक
Educator	थ्शक्षक	Treatment	उपचार
Researcher	शोधार्थी	Psychiatric	मनोरोगी
Policy maker	नीति–निर्माता	Participatory	सहभागी
Coordinator	समन्वयक	Project manager	परियोजना प्रबन्धक
Administrator	प्रशासक	Social development	सामाजिक विकास
Client	सेवार्थी	Resources	संसाधन
Counselor	परामर्शदाता	Probation	परिवीक्षा
Planning	थ्नयोजन	Mutual	परस्पर
Indian penal code	भारतीय दण्ड संहिता	Employees state insurance	कर्मचारी राज्य बीमा

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7. डुवियोस ब्रेन्डा एवं मिले क्रोग्सख्ड कर्ता, सोशलवर्क एन इम्पावरिंग प्रोफेशन लाइब्रेरी ऑफ कान्टोस कैटालागिंग इन पब्लिकेशन डाटा, यू0एस0ए0 (1992)।

8. डब्ल्यू0डब्ल्यू0डब्ल्यू0डाट अबैकन डाट कॉम।

9. डॉ0 राय मनीष कुमार, रिसर्च थीसिस ऑन हेल्थ स्टेटस एण्ड प्राब्लम्स आफ सिड्यूल ट्राइब फेमिलीस, (2009)

10. रोथमैन जैक, एट आल, स्ट्रैटजीस आफ कम्यूनिटि इन्टरवेंशन, छठवॉ संस्करण एफ0ई0 पीकाक पब्लिसर्स, इटारका (2001)।

11. डब्ल्यू0डब्ल्यू0डब्ल्यू0डाट स्क्रिब्ड डाट काम/डाक

12. डब्ल्यू0डब्ल्यू0डब्ल्यू0डाट सोशल वर्कस्काटलैण्ड डाट ओआरजी

इकाई –7

नीति निर्माण

Policy Making

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 परिचय

7.2 नीति निर्माण

7.3 निर्णय करना

7.4 नियोजन

7.5 बजटिंग

7.6 वित्तीय नियंत्रण

7.7 संचार

7.8 संगठनात्मक विकास

7.9 समन्वय

7.10 सार संक्षेप

7.11 अभ्यास प्रश्न

7.12 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :–

- नीति निर्माण के विषय में जानकारी कर सकेंगे।
- नियोजन का ज्ञान कर सकेंगे।
- संचार एवं समन्वय का ज्ञान अच्छी तरह कर सकेंगे।
- संगठन एवं संगठनात्मक विकास का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

- निर्णय करने के बारे में जानकारी कर सकेंगे।
- मूल्य लाभ विश्लेषण की जानकारी कर सकेंगे।

7.1 परिचय

नीति–निर्धारण की प्रक्रिया शासन की केन्द्रीय प्रकियाओं में से एक है। पल्बी के कथनानुसार नीति–निर्माण ही लोक प्रशासन का है। किसी कार्यप्रणाली की योजना के कार्य में नीतियों का प्रयोग महत्वपूर्ण होता है। नीतियाँ ऐसी प्रामाणिक मार्गदर्शक हैं जो प्रबन्धकों को योजना बनाने, कानूनी आवश्यकताओं के अनुकूल कार्य करने तथा वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता देती हैं। नीतियाँ निष्पादक को अपने क्रियाकलापों को 'कार्य के एक निश्चित ढाँचे' के भीतर बनाये रखने में सहायता देती हैं सच तो यह है कि नीतियाँ उद्देश्यों को निश्चित अर्थ प्रदान करती हैं। किसी संगठन के उद्देश्य प्रायः सामान्य भाषा में लिखे रहते हैं। नीतियाँ इन्हीं उद्देश्यों को मूर्त रूप प्रदान करती हैं।

7.2 नीति–निर्माण

इस शब्द का प्रयोग प्रायः शिथिलता से किया जाता है। इसे गलती से नियम, रीति–रिवाज तथा विनिश्चय की खिचड़ी समझ लिया जाता है, जबकि सत्य यह है कि नियम मार्गदर्शक होते हैं, वे करने और न करने के योग्य कार्यों में अन्तर करते हैं, किन्तु नियम नीतियों के विपरीत कठोर तथा विशिष्ट होते हैं। रीति–रिवाज की परिभाषा 'कार्य के स्वाभाविक प्रवाह' के रूप में की जाती है। यही वह तरीका है जिसमें वस्तुतः कार्य किया जाता है। रीति–रिवाज विकसित होते हैं जबकि नीतियाँ जानबूझकर किये गये कार्य का परिणाम होती हैं। कुछ भी हो, यह आवश्यक नहीं है कि रीति–रिवाजों और नीतियों का संयोग सदा ही हो। निर्णय प्रायः नीति के भीतर की किया जाता है। यह बहुत सम्भव है कि किसी नीति के कारण लगातार कई प्रकार के निर्णय लेने पड़ जायें। इसी प्रकार नीति तथा रीति या प्रक्रिया के बीच अन्तर भी रखना चाहिए। नीति का सम्बन्ध मौलिक मामलों से है जबकि रीति का सम्बन्ध किसी रीति को प्रभावकारी बनाने के तरीके से होता है।

टैरी के शब्दों में, ''नीति से कार्यवाही की शाब्दिक, लिखित या विहित बुनियादी मार्गदर्शक हैं, जिसे प्रबन्धक अपनाता है तथा जिसका अनुगमन करता है।'' **डिमॉक** नीतियों की परिभाषा इस प्रकार करते हैं : ''नीतियाँ सजगता से निर्धारित आचरण के वे नियम हैं जो प्रशासकीय निर्णयकों को मार्ग दिखाते हैं।''

नीति एक ओर तो लक्ष्य या उद्देश्य से और दूसरी ओर कार्य–संचालन के लिए उठाये गये कदम से भिन्न होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, देश में अनेक मनुष्य को शिक्षित बनाना एक लक्ष्य है; अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा एक नीति है जो इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए बनायी गयी है; और स्कूल खोलना तथा अध्यापकों को प्रशिक्षित करना इत्यादि वे कदम हैं जो इस नीतियों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक हैं।

नीति तथा प्रशासन

नीति तथा प्रशासन के बीच एक सुनिश्चित भेद करने का प्रयत्न बुडरो विल्सन ने ही 1887 में प्रकाशित अपने लेख 'प्रशासन का अध्ययन' में किया था। उनके विचार में नीति–निर्माण एक राजनीतिक कार्य है, जबकि प्रशासन केवल नीतियों को लागू करने से सम्बन्ध रखता है। उनके अपने शब्दों में, ''प्रशासन का क्षेत्र व्यापार का क्षेत्र है। यह राजनीति की हड़बड़ी और कलह से अलग होता है।'' प्रशासन तो राजनीति का उचित क्षेत्र से बाहर ही रहता है। प्रशासकीय प्रश्न राजनीतिक नहीं होते। विल्सन का अनुगमन गुडनाउ ने भी किया। इन दोनों ने प्रशासकीय अध्ययन के प्रवाह को प्रभावित किया। 1926 में व्हाइट ने अपनी पुस्तक लोक प्रशासन के अध्ययन का परिचय, के प्रथम संस्करण में राजनीति तथा प्रशासन के बीच स्पष्ट विभाजक रेखा खींची।

फिर भी इतना स्पष्ट दोहरापन और अमान्य और अप्रामाणिक करार दे दिया गया है। लोगों की राय इस मत के अनुरूप रही है कि प्रशासन को नीति से पूर्णतः अलग नहीं किया जा सकता और न नीति किसी प्रशासन को त्याग सकती है। लूथर गुलिक इस दृष्टिकोण के अग्रणी पोषकों में था। इन सबके अतिरिक्त ऐपल का नाम प्रायः इस तर्क के साथ जुड़ा हुआ है कि राजनीति तथा प्रशासन अलग नहीं किये जा सकने वाले युगमन हैं। उसके अनुसार प्रशासन राजनीति है, क्योंकि लोकहित के प्रति उत्तरदायी होना उसके लिए आवश्यक होता है। उसके ही शब्दों में, ''प्रशासकगण निरन्तर भविष्य के लिए नियम निर्धारित करते रहते हैं, और प्रशासक ही निरन्तर यह निश्चित करते हैं कि कानून क्या है, कार्यवाही के अर्थ में इसका तात्पयै क्या है, तथा प्रचलित और भावी आदान–प्रदान सिलसिले में दोनों पक्ष अर्थात् प्रशासन और नीति के अपने अलग–अलग आविष्कार क्या होंगे। प्रशासक एक अन्य प्रकार से भी भावी नीति–निर्माण में भाग लेते हैं, वे विधानमण्डल के लिए प्रस्तावों एवं सुझावों का स्वरूप निश्चित करते हैं। यह नीति–निर्माण का एक भाग होता है।'' इस प्रकार सार्वजनिक अधिकारी आज नीति के निर्धारण तथा निष्पादन दोनों ही कार्यों में संलगन होते हैं, और सरकार ऊपर नीचे तक प्रशासन

एवं राजनीति का एक सम्मिश्रण बन गयी है। पीटर ओडेगार्ड का भी यही कथन है कि नीति तथा प्रशासन राजनीति के जुड़वाँ बच्चे हैं। वो एक–दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते।

किन्तु ऐसे असीम तर्क देना उचित नहीं है जिनसे यह विश्वास होने लगे कि नीति और प्रशासन के बीच कोई भेद नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि ये दोनों कार्य अलग–अलग हैं, भले ही इनको एक ही व्यक्ति या समान व्यक्तियों के समूह सम्पन्न कर रहे हों। इन दोनों के बीच एक सामान्य स्पष्ट तथा लोचदार भेद सम्भव न होते हुए भी वांछनीय है। सही अर्थ में व्हाइट ने लोक प्रशासन की परिभाषा 'लोक नीति के प्रवर्तन' के रूप में की। लुई ब्राउनलो ने इसी भेद पर बल देते हुए कहा है कि, ''राजनीति और प्रशासन के बीच अन्तर है, और वह भेद सदैव बना रहेगा, चाहे प्रजातन्त्रीय समाज में उनमें कितना ही निकट सम्बन्ध क्यों न हो।''

नीति का निर्माण

स्मरणीय है कि नीति कोई स्थिर वस्तु नहीं है और न यह स्थायी ही होती है। यह गतिशील है और निरन्तर बदलने की इसमें सतत् प्रवृत्ति होती है। जब उद्देश्य बदलते हैं, पर्यावरणों में परिवर्तन होता है तथा परिस्थितियों में भिन्नता आती है, तो उसी के अनुसार नीति का निर्धारण किया जाना स्वाभाविक हो जाता है। सेक्लर–हडसन नीति के प्रत्येक विनिश्चय को ठीक ही 'किसी प्रक्रिया में एक क्षण' मानते हैं। दूसरे शब्दों में, नीति–निर्धारण एक निरन्तर चलने वाला दायित्व है, और अनुभव के प्रकाश में नीति का पुनर्निर्धारण उतना ही महत्वपूर्ण है जितना प्रथम बार उसका निर्धारण। दूसरे, नीतियाँ 'शून्य में नहीं बनायी जातीं', अर्थात् नीति–निम्रता स्वच्छन्दता से नीतियों के निर्माण में स्वतन्त्र नहीं होता अपितु उसे कई तत्वों को ध्यान में रखना पड़ता है। उदाहरण के लिए संविधानों के प्रावधानों की जैसी व्याख्या न्यायपालिका तथा विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानूनों ने की है उसी के अनुसार नीति होनी चाहिए। प्रचलित सामाजिक रूढ़ियाँ, प्राचीन परम्पराएँ, रीति–रिवाज, प्रथाएँ तथा लोकमत भी नीति–निर्माण को प्रभावित करते हैं। कभी–कभी तो अन्तर्राष्ट्रीय कानून तथा नियम और विश्व लोकमत भी नीति–निर्माण को प्रभावित करते हैं। सरकार के किसी अभिकरण विशेष की नीति का दूसरे अभिकरणों से तालमेल बैठाने की आवश्यकता होती है। तीसरे, समाज में विविध प्रकार के असंख्य दबाव डालने वाले समूह होते हैं, जो नीतियों को अपने हितों के अनुरूप ढालने का निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं। परिणामतः नीतियों का एकीकरण एक आवश्यक किन्तु कठिन कार्य हो जाता है। अन्तिम बात यह है कि नीति लगभग सदैव ही बहुत से व्यक्तियों के सामूहिक प्रयत्न का फल होती है।

सेक्लर–हडसन के शब्दों में, ''तो फिर सभी प्रकार से नीतियाँ निश्चित की जाती हैं, और वे सभी प्रकार के मामलों से प्रभावित भी होती हैं।'' नीति–निर्माण की प्रक्रिया में योग देने वाले विभिन्न तत्व ये हैं : विधानमण्डल, कार्यपालिका, न्यायपालिका, प्रधान कार्यपालिका, सर्वोच्च प्रशासक, प्रशासन में पद–सोपान के सभी स्तर, राजनीतिक दल, दबाव समूह, जनता इत्यादि। यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी संगठन में यह आवश्यक नहीं कि केवल एक बिन्दु से ही नीतियाँ प्रस्फुटित होती हैं, अर्थात् शीर्ष से नीचे की तरफ नियमों का क्रियान्वयन तथा नीचे अर्थात् सम्बन्धित जनता से ऊपर की तरफ उनका क्रियान्वयन। ग्लैडन के अनुसार नीति–निर्माण में चार विभिन्न स्तर होते हैं – (1) संसद द्वारा निर्मित राजनीतिक या सामान्य नीति; (2) मन्त्रिमण्डल द्वारा निर्मित निष्पादन नीति; (3) प्रशासकीय नीति, अर्थात् वह नीति जिसमें प्रशासक शासन की इच्छा को क्रियान्वयन करते हैं; और (4) प्राविधिक नीति, अर्थात् नित्यप्रति के कार्य सम्बन्धी नीति जिसका प्रयोग अधिकारीगण प्रशासकीय नीति के क्रियान्वयन में करते हैं।

नीति–निर्माण करने वाले कुछ महत्वपूर्ण अंग निम्नलिखित हैं :

(1) **संविधान** – सभी नीतियाँ संवैधानिक ढाँचे के अनुरूप होनी चाहिए। संविधान की प्रसतावना में उल्लेखित उद्देश्य एवं नीति निदेशक तत्व नीतियों का निर्धारण करते हैं।

(2) **विधानमण्डल** – प्रमुख रूप में इसका कार्यविषेशाधिकार का प्रयोग करना, नियम बनाना तथा प्रभाव डालना है। अन्तिम रूप से कुछ नीतियों को निश्चित करने में यह केवल सहायता प्रदान करता है। नीतियों पर संसदीय नियन्त्रण के बहुत–से एवं विभिन्न अवसर होते हैं; जैसे – विधि–निर्माण, राष्ट्रपति का अभिभाषण, बजट कर सामान्य बहस, अनुदान देना, प्रश्न–विप्रश्न, स्थगन प्रस्ताव तथा अन्य प्रस्ताव। फिर भी इस नियन्त्रण की निम्नलिखित सीमाएँ हैं :

(अ) प्रत्येक सार्वजनिक नीति के लिए विधानमण्डलीय अधिनियम की आवश्यकता नहीं होती; तथा

(आ) विधानमण्डल सामान्यतः विधि–निर्माण के कार्य को प्रस्तावित करने में पहल नहीं करता।

(3) **मन्त्रिमण्डल** – लोक नीति का निर्धारण प्रमुखतः मन्त्रिमण्डल द्वारा ही किया जाता है। यही सर्वोपरि परिचालक तथा नियन्त्रक निकाय है। नीति सम्बन्धी सभी महत्वपूर्ण समस्याओं पर बहुधा मन्त्रिमण्डल द्वारा ही संचार किया जाता है। प्रत्येक मन्त्रालय की नीति का सूत्रपात तथा निर्धारण उस मन्त्रालय का

मन्त्री ही करता है। मन्त्रिमण्डल के भीतर प्रधान मंत्री ही नीति–निर्माण का केन्द्र होता है।

(4) **योजना आयोग** – विभिन्न दृष्टियों से यह केवल एक परामर्शदाता निकाय ही है, फिर भी लोक नीतियों के निर्धारण में, योजना तथा विकास के अतिरिक्त अन्य मामलों पर यह निकायविषेश प्रभाव डालने वाला होता है। इसके परामर्शदायी कार्य तो सम्पूर्ण प्रशासन तक विस्तृत हैं।

(5) **राष्ट्रीय विकास परिषद्** – यह प्रधान मंत्री तथा राज्यों के मुख्य मंत्रियों से मिलकर बनती है। यह योजना के क्षेत्र में नीति–निर्धारण का सर्वोच्च निकाय है।

(6) **लोक सेवाएँ** – नीति–निर्धारण में लोक सेवाओं का कार्य त्रिसूत्रीय है – (अ) कार्यपालिका द्वारा निर्धारित किसी उद्देश्यविषेश का निष्पादन करने के लिए कोई नीति निर्धारित करना और यह निश्चित करना कि वह नीति उद्देश्य की ठीक–ठीक व्याख्या करती है या नहीं; (आ) उस नीति को विधायी रूप प्रदान करना, तथा नीति को क्रियान्वित करना। वे नीति–निर्माण में परामर्श तथा सहायता भी प्रदान करते हैं।

(7) **न्यायपालिका** – यह लोक नीतियों पर दो प्रकार से प्रभाव डालती है – न्यायिक समीक्षा की शक्ति तथा उच्चतम न्यायालय की परामर्शदायी शक्ति द्वारा।

(8) **मन्त्रणा निकाय तथा परामर्शदायी समितियाँ** – जैसे, स्थायी श्रम समिति, भारतीय श्रम सम्मेलन, आयात–निर्यात मन्त्रणा समिति तथा शिक्षा का केन्द्रीय मन्त्रणा मण्डल आदि। ये निकाय एवं समितियाँ नीति–निर्माण में महत्वपूर्ण भाग लेती हैं।

(9) **दबाव समूह** – जैसे ट्रेड यूनियन, वाणिज्य मण्डल, विद्यार्थियों के तथा स्त्रियों का सम्मेलन। इनके द्वारा नीति–निर्माण प्रभावित किया जाता है।

(10) **राजनीतिक दल** – राजनीतिक दल चुनाव के घोषणा–पत्रों के माध्यम से अपनी–अपनी नीतियाँ घोषित करते हैं, और उन्हीं का परिपालन करने हेतु सत्ता प्राप्त करने का भी प्रयत्न करते हैं।

(11) **व्यावसायिक सभाएँ** – वकीलों के संगठन, अखिल भारतीय चिकित्सा परिषद्, अध्यापक संघ इत्यादि।

(12) **प्रेस** – लोकमत का सृजन करने, संगठित तथा व्यक्त करने में समाचार–पत्रों द्वारा जो भूमिका निभायी जाती है वह सर्वविदित है। ये नीति–निर्माण पर बहुत प्रभाव डालते हैं।

7.3 निर्णय करना

निर्णय करना सामान्य एवं नित्यप्रति की घटना है। हम में से सभी हर समय किसी न किसी मामले पर निर्णय लेते रहते हैं, चाहे वह मामला व्यक्तिगत हो या सार्वजनिक, महत्वपूर्ण हो या सामान्य। वस्तुतः बिना निर्णय लिये कोई भी संगठन चल नहीं सकता; और यदि उसे दृढ़तापूर्वक चलाना है तो निर्णय ठीक होने चाहिए तथा ऐसे होने चाहिए कि उन्हें समय पर पूरा भी किया जा सके। अतः निर्णय करना सभी ग्रन्थ का सार है, चाहे वह निजी हो या सार्वजनिक। निर्णय करने की शक्ति को प्रबन्ध करने की शक्ति के स्वरूप मानना ठीक है। कोई भी सफल निष्पादक बनने की कल्पना नहीं कर सकता यदि वह निर्णय देने के योग्य नहीं है, या गलत निर्णय देने की प्रवृत्ति पायी जाती है। एक बड़ा नेता एक विलक्षण सूझबूझ का विकास कर लेता है। इसका कारण प्रायः ठीक निर्णय लेने की क्षमता होती है।

फिर भी निर्णय लेना जितना महत्वपूर्ण है उतना ही कठिन भी है। लोग निर्णय करने से जी चुराते हैं। कदाचित यह ठीक ही कहा गया है कि निर्णय करने की अपेक्षा व्यक्ति तोप का सामना करना अधिक अच्छा समझते हैं। समाधान करने के लिए समस्याओं का बड़ा समूह, थोड़ा समय, बुरे परिणामों का भय और क्या निर्णय दिया जाय, आदि कुछ असाधारण कठिनाइयाँ हैं। समस्याएँ बहुत अधिक होती हैं और उनकी दृष्टि से समय बहुत कम होता है। बहुधा होता यह है कि कम समय के साथ–साथ अति तीव्र गति से कार्य करने वाले व्यस्त व उत्पीड़ित निष्पादकों पर निर्णयों का पूर्ण दायित्व रहता है। वास्तव में यह समस्या अत्यधिक कार्य की है, जिसमें अत्यन्त कम समय में पूर्ण करना होता है। निर्णयों के पश्चात् परिणामों का भय भी निष्पादकों के समक्ष रहता है। कोई भी निर्णय सम्भवतः किसी को प्रसन्न नहीं कर सकता, और प्रशासन को प्रायः ऐसे कार्य करने पड़ते हैं कि वह प्रसन्न तो थोड़े ही व्यक्तियों को कर पाता है किन्तु अप्रसन्न बहुतों को कर लेता है। यही नहीं, सम्भवतः ठीक–ठीक यह ज्ञान नहीं होता कि उसे क्या निर्णय करना चाहिए, अर्थात् सम्भव है कि विविध विकल्पों में से वह अपना मार्ग ढूँढ़ने में असमर्थ हो। प्रोफेसर मार्च के शब्दों में, ''व्यापारिक संगठन के जटिल पर्यावरण में निष्पादक के समक्ष निर्णय की तीन चरणों वाली समस्या सदैव विद्यमान रहती है – (1) बहुत–सी समस्याओं से जो उसके समक्ष हैं, कि समस्याविषेश की ओर वह अपना ध्यान ले जाय; (2) किसी समस्याविषेश की अनिश्चितता को हल करने में वह कितना समय, प्रयत्न और धन लगाये; तथा (3) समस्या के किस समाधान को वह अपनाये।''

निर्णय करना : अर्थ

वेब्स्टर शब्दकोश में 'निर्णय करना' शब्द की परिभाषा देते हुए कहा गया है : 'कि अभिमत या कार्यवाही के विषय में अपने मन में निश्चित कर लेने का कार्य'। टैरी के शब्दों में, ''दो या अधिक सम्भावित विकल्पों में से एक व्यवहार्य विकल्प को चुन लेना ही निर्णय देना है।'' संक्षेप में, निर्णय करने का सिी एक निष्कष्र पर पहुँचना है। निर्णय प्रायः नीति द्वारा निश्चित किये गये मार्ग के अन्तर्गत ही किये जाते हैं। नीति अपेक्षाकृत विस्तृत होती है, बहुत – सी समस्याओं को प्रभावित करती हैं, और उसका प्रयोग बार–बार किया जाता है। इसके विपरीत निर्णय तो किसीविषेश समस्या पर लागू होता है, और वह निरन्तर न होने वाला व्यवसाय है। निर्णय के विषय में यह ठीक ही कहा गया है कि वह ''नीति–निर्धारण की प्रक्रिया में एक क्षण होता है।'' फिर भी नीति स्वयं भी किसी निर्णय का ही परणिाम होती है। निर्णय के विषय में याद रखने योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि यह केवल साध्य की ओर ले जाने वाला साधन मात्र है, स्वयं में एक साध्य नहीं है; और फिर निर्णय देना कोई बात नहीं होती है और न कुछ स्थायित्व ही होता है। अब्राहम लिंकन तथा एक समिति से सम्बन्धित एक कथा द्वारा यह बात स्पष्ट हो जाती है। इस समिति के सदस्यगण अब्राहम लिंकन से सेनापति ग्राण्ट सेनापतित्व के विषय में शिकायत कर रहे थे। समिति के सभापति ने कहा : ''क्यों राष्ट्रपति जी! यह तो आप निश्चय ही जानते हैं कि सेनापति ग्राण्ट बहुत–से निर्णय देते हैं। वे एक के बाद दूसरा सही निर्णय देते हैं, परन्तु उनमें से कुछ तो बिलकुल गलत होते हैं।'' लिंकन ने अपना सिर उठाया, एक मिनट चुप रहे और तब उन्होंने उत्तर दिया : ''अच्छा, सभापति जी! मेरा ख्याल है कि आप बिल्कुल ठीक कहते हैं, किन्तु मेरा अनुमान है कि यदि कोई बुरा फैसला देते भी हैं तो शीघ्र ही उन्हें वह मालूम भी हो जाता है और तब वे उसे अविलम्ब बदल देते हैं, सज्जनों! मैं सेनापति ग्राण्ट का समर्थन करना ही उचित समझता हूँ।''

मिलेट के अनुसार प्रक्रिया को समझने के लिए निर्णय सम्बन्धी निम्नलिखित तीन पहलुओं की समीक्षा आवश्यक है :

(1) व्यक्तिगत अन्तरों में कुछ को निर्णायक और दूसरों को अनिर्णायक मानता है – कुछ लोग ऐसे हैं जो निर्णय लेने में देर लगाते हैं, अस्थायी निर्णय करते हैं, उन्हें स्थापित कर देते हैं, तथा उनसे किनारा काटते हैं। वे किसी भी निर्णय पर दृढ़ नहीं रह सकते और सदा उनमें कोई न कोई ऐसी कमी रखते हैं जिसमें से बाद में स्वयं बचकर निकल जायें। दूसरी ओर कुछ लोग निर्णय लेने में कृतसंकल्प, दृढ़ तथा शीघ्रगामी होते हैं। किसी कारण लोग एक या दूसरी तरह का आचरण करते हैं। यह इस अध्ययन के क्षेत्र से परे की समस्या है। कदाचित सामाजिक तथा

व्यावसायिक पृष्ठभूमि का इससे कुछ सम्बन्ध है। उदाहरणस्वरूप, वकील की अपेक्षा न्यायधीशों में निर्णयात्मक प्रवृत्ति अधिक होती है। इस प्रकार यह भी अनुमान है कि बुद्धिजीवी लोग, जिन्हें किसी विषय का गहन ज्ञान होता है, प्रायः निर्णय देने की कम ही योग्यता रखते हैं। उदाहरण के लिए, ''नेतृत्व के मामलों में वे अनुत्तरदायी (शून्य–मनस्क, समय के पाबन्द नहीं) निर्णय न कर सकने वाले (अतिनयिक, इतने अधिक पहलुओं पर गौर करते हैं कि वे निश्चय नहीं कर पाते) तथा विश्वास न दिला सकने वाले (कुछ 'विचित्र' से, जिन्हें लोगों में रूचि नहीं रहती) सिद्ध होते हैं।

(2) निर्णय करने में मन का योग – मिलेट के अनुसार, ''विस्तृत तथ्यों का सावधानी के साथ संचय, उनका विश्लेषण तथा व्याख्या, भाव विकासों का पूर्वानुमान, मानवीय तथा भौतिक आचरण की सामान्य अवधारणाओं का प्रयोग ऐसे तत्व हैं जो निर्णय करने में ज्ञान का प्रयोग करते समय भिन्न–भिन्न मात्रा में प्रभावित करते हैं।'' निर्णय लेने के लिए ठीक विवरण एकत्र करने हेतु सांख्यिकी, कार्य अध्ययन, प्रवर्तन, अनुसन्धान तथा प्रबन्ध सर्वेक्षण का प्रयोग हितकर होता है।

(3) सीमाएँ – व्यक्तिगत तथा संस्थागत – जो निर्णय करने में प्रतिबन्ध लाती हैं – मिलेट का मत है कि एक ओर निर्णय करने में महत्वाकांक्षाओं, परम्पराओं तथा कार्य को सम्पन्न करने वाले अभिकरण के दृष्टिकोणों को समझना आवश्यक है दूसरी ओर प्रशासकों में निहित व्यक्तिगत रूचि एवं भावना भी निर्णय करने के कार्य को सीमित कर देती है।'' इस अध्याय के अन्त में इस पहलू पर पुनः विचार करेंगे।

निर्णय कौन करता है?

किसी भी संगठन में निर्णय बहुत से लोगों द्वारा किया जाता है। अतः निर्णय सहकारी रूप में सहयोगपूर्वक ही किये जाते हैं। सार्वजनिक विश्लेषण सम्बन्धी प्रश्नों का निर्णय कदाचित ही एक मनुष्य करता है। सेक्लर–हडसन के शब्दों में, ''शासन में निर्णय करना एक ऐसा कार्य है जिसे एक से अधिक लोग मिलकर करते हैं। अकेला व्यक्ति जो निर्णय की घोषणा भले ही कर दे किन्तु निर्णय तक पहुँचने की प्रक्रिया में बहुत से व्यक्तियों का योग रहता है यह कार्य राजनीतिक प्रणाली का ही एक भाग है।'' फिर भी, जब निर्णय के अन्तिम विश्लेषण का समय आता तब संगठन के प्रबन्धक या मुख्य निष्पादक को ही अन्तिम निर्णय करना होता है। कोई भी प्रशासक जो अपने पद के योग्य हो, अपने इस उत्तरदायित्व से पीछे नहीं हट सकता। या तो वह निर्णय करता है या उसे पद–त्याग करना पड़ता है। व्यस्त तथा कार्यभार से दबे एक निष्पादक को निस्सन्देह सहायता और कर्मचारी वर्ग के सहयोग की आवश्यकता होती है। उसे ये सारी सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए। निर्णय देते समय प्रशासक को प्रश्न से सम्बन्धित आवश्यक पूर्व उदाहरणों का ज्ञान प्राप्त

कर लेना चाहिए, और उसे भावी परिस्थितियों तथा घटनाओं और उन पर निर्णय के प्रभाव का पूर्वानुमान कर लेने का प्रयत्न करना चाहिए।

निर्णय करने के आधार

निर्णय करने में सहायता देने वाले तत्वों के सम्बन्ध में सभी एकमत नहीं दिखाई पड़ते। कदाचित ऐसे कोई निश्चित आधार नहीं है। पर निर्णय ऐसे मानदण्ड या आधार पर निर्भर करता है जो उस परिस्थितिविषेश में महत्वपूर्ण होता है। निर्णय तक पहुँचने के साधन विवेकपूर्ण, विमर्शित, भावनात्मक, आवेगशील या अभ्यासानुसार हो सकते हैं। प्रज्ञा तथ्य अनुभव तथा सत्ता ऐसे सामान्य आधार हैं जो निर्णय तक पहुँचने में प्रयोग किये जाते हैं। सेक्लर–हडसन ने ऐसे तरह तत्व गिनाये हैं जो निर्णय करते समय अवश्य विचारणीय हैं : ''कानूनी मार्यदाओं, बजट, लोकाचार, तथ्य, इतिहास, मनोबल, अनुमानित भविष्य, उच्च श्रेणी, निपीड़ सह–कर्मचारी वर्ग, कार्यक्रम प्रकृति तथा अधीनस्थ कर्मचारीगण।'' निर्णय करते समय जिस बात पर जोर दिया जाना चाहिए वह यह है कि निर्णय का आधार कल्पना न होकर व्यावहारिक होना चाहिए। हमारे देश में शासक के विरूद्ध दुर्भाग्य से प्रायः कोई शिकायत सुनी जाती है कि निर्णय योग्यता पर आधारित न होकर जाति, धर्म, प्रदेश, राजनीति, इत्यादि पर अधिक आधारित होते हैं। अन्य शब्दों में, निर्णय पक्षपातपूर्ण होते हैं।

निर्णय कैसे लेना चाहिये?

इस प्रश्न का कदाचित कोई भी रूप से सही उत्तर नहीं दे सकता कोई भी ऐसा नियम नहीं है जो सम्भवतः सभी अवसरों में ठीक प्रकार से प्रयुक्त हो सके। फिर भी इस प्रक्रिया में एक बातविषेश रूप से सहायक होती है; वह है निर्णय लेने का अभ्यास। यह ठीक ही कहा गया है कि कोई भी मनुष्य तैरने के विषय में पुस्तकें पढ़कर या दूसरों को तैरते देखकर तैरना नहीं सीख सकता है। तैरना सीखने के लिए उसे पानी में तैरने का अभ्यास करना ही पड़ेगा यह कथन निर्णय लेने के सम्बन्ध में भी पूरी तरह लागू होता है। इसीलिए प्रशासन को निर्णय देने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। टैरी ने इस विषय में निम्नांकित उपाय निर्धारित किये हैं जिनका क्रमवार अनुगमन करने से निर्णय लेने में बड़ी सहायता मिलती है :

(1) यह निश्चय करना चाहिए कि समस्या क्या है;

(2) समस्या की सामान्य पृष्ठभूमि से सम्बन्धित सूचना तथा विभिन्न दृष्टिकोण एकत्र करने चाहिए;

(3) कार्य–साधना सर्वोत्तम मार्ग बताना चाहिए;

(4) योजना तथा कामचलाऊ निर्णय निश्चित करने का प्रयास करना चाहिए;

(5) इस कामचलाऊ निर्णय का मूल्यांकन करना चाहिए;

(6) निर्णय करना चाहिए और उसे क्रियान्वित करना चाहिए; तथा

(7) प्राप्त परिणामों के प्रकाश में भावी कदम निश्चित करना, और यदि आवश्यक हो तो निर्णयों में संशोधन करना चाहिए।

7.4 नियोजन

नियोजन साधारणतः व्यक्ति के सीमा तक सहकारी या सामूहिक प्रयत्न का एक स्वभाविक अंग है। यह ''एक ऐसी विवेकपूर्ण प्रक्रिया है जो सम्पूर्ण मानव व्यवहार में पायी जाती है।'' नियोजन की आवश्यकता को व्यापक रूप से स्वीकार कर लिया गया है। इसका विरोध पूँजीवादी या स्वतन्त्र अर्थ–व्यवस्था वाले देशों में भी शीघ्रता से मिटता जा रहा है। नियोजन को अब साम्यवादी विचारधारा तथा साम्यवादी प्रणाली के स्वरूप में नहीं रखा जाता। संक्षेप में, इसने लोकप्रियता प्राप्त कर ली है। किसी अर्द्ध–विकसित देश के लिए, जहाँ सीमित साधनों द्वारा और निश्चित समय के भीतर बहुत सा काम करना है, नियोजन काविषेश महत्व है इस प्रकार हमारे देश में और विकासोन्मुख अर्थ–व्यवस्था वाले देशों में नियोजन ही कदाचित ऐसा मार्ग है जो अर्थ–व्यवस्था को पूर्ण तथा पूरक अवस्था तक ले जा सकता है। प्रायः यह निश्चित है कि ''सभी संगठनों को, या वे अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त करना चाहते हैं, योजना का निर्माण करना चाहिए।''

नियोजन क्या है?

डिमॉक के अनुसार, नियोजन ''आकस्मिक संयोग नहीं; बल्कि तर्कसम्मत अभिप्राय का प्रयोग है; कार्य प्रारमी हो जाने के बाद सुधार करने के बजाय, कार्य की क्रियाविधि प्रारम्भ होने से पहले निर्णय पर पहुँचना है।'' सेक्लर – हडसन ने नियोजन की परिभाषा देते हुए कहा है कि नियोजन ''भावी कार्य के लिए आधार की रूपरेखा बनाने की प्रक्रिया है।'' मिलेट के शब्दों में, ''प्रशासकीय प्रयत्न के उद्देश्यों को निश्चित करने तथा उनको प्राप्त करने के लिए उपयुक्त साधनों की प्राकल्पना करने वाली प्रक्रिया ही नियोजन है।'' संक्षेप में, किसी निर्धारित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए सर्वोत्तम मार्ग के चुनाव तथा विास की चेतन प्रक्रिया ही नियोजन कहलाती है। यह एक व्यापक शब्द है, और इसके अन्तर्गत निम्नांकित क्रियाएँ आती हैं :

(1) उद्देश्य के निश्चय करना – इसमें उपलब्ध आधारभूत सामग्री के संग्रह तथा समस्या के सभी पहलुओं के विषय की जाँच की आवश्यकता पड़ सकती है।

विभिन्न विकल्पों का परीक्षण करके अन्तिम निर्णय किया जाता है। यह नीति का निर्णय है और इस कारण इसका स्वरूप राजनीतिक है।

(2) उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कार्य के सम्भावित मार्गों पर विचार करना – एक बार उद्देश्य निश्चित कर लिया जाता है तो दूसरी समस्या नहीं होती है कि इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए सर्वोत्तम साधनों को ढूँढ़ा जाये। इसमें सम्भावित वैकल्पिक रीतियों को यथास्थान लगाना और फिर इनमें से प्रत्येक का परीक्षण करना अन्तर्निहित है। इन विकल्पों में से प्रत्येक की परीक्षा वास्तविक प्रवर्तनों द्वारा करना आवश्यक हो सकता है।

(3) सर्वोत्तम कार्रवाई का चुनाव करना – इससे तात्पर्य विभिन्न विकल्प के अनुसंधानों तथा परीक्षणों के परिणामों का मूल्यांकन तथा अन्त में उनमें से सर्वोत्तम का चयन कर लेना है।

नियोजन एक विवेकपूर्ण, गतिशील तथा पूर्ण प्रक्रिया है। **पहले** तो नियोजन कोई झटपट होने वाली हर प्रकार की वस्तु नहीं है और न हो ही सकती है। वह दैवयोग का अचेतन प्रयत्न का परिणाम कभी नहीं होती और न इसे ''शून्य – मनसकता के दौरे'' में ही प्राप्त किया जा सकता है। नियोजन एक विवेकपूर्ण, चेतन तथा जानबूझकर किया गया प्रया है। ''नियोजन विवेकपूर्ण है, क्योंकि इसमें कई सम्भावित साधनों तथा उद्देश्यों के क्रमबद्ध विश्लेषण की आवश्यकता होती है। तदन्तर इसमें उन साधनों का चयन किया जाता है जो निर्धारित उद्देश्य सबसे अधिक उपयुक्त समझे जाते हैं।'' **दूसरे**, नियोजन कोई स्थिर प्रक्रिया नहीं है। यह गतिशील है, और अनुभव के प्रकाश में इसे निरन्तर परिवर्तित करने की आवश्यकता होती है। निरन्तर मूल्यांकन, समीक्षा, अनुवर्तन तथा आवश्यकतानुसार पुनर्निर्णय अच्छी योजना के लिए अपरिहार्य होते हैं। परिणामतः किसी भी योजना में लचीलापन अवांछनीय नहीं है। किसी भी नियोजन के विषस में नितान्त कठोरता नहीं अपनानी चाहिए। **तीसरे**, नियोजन व्यापक तथा पूर्ण प्रक्रिया। यह राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र तथा यान्त्रिकी जैसे ज्ञान की किसी एक शाखा तक सीमित नहीं है। इसमें बहुत–से विषय सम्मिलित होते हैं। नियोजन समन्वय का अभ्यास तथा विभिन्न कार्यक्रमों और साधनों का एकीकरण एवं संश्लेषण है। अन्त में, एक बात यह है कि बहुधा यह प्रश्न पूछा जाता है कि नियोजन कोई नीति कार्य है या मन्त्रणा कार्य। प्रशासन के सभी स्तरों पर नियोजन की कुछ मात्रा अपरिहार्य है; और योजनाओं के उचित कार्यान्वयन के लिए प्रवर्तन के स्तरों पर योजना की चेतना आवश्यक है। इस स्थिति में निर्धारण तथा मूल्यांकन की प्रक्रिया के रूप में नियोजन प्रमुखतया मन्त्रणा कार्य है।

नियोजन के प्रकार

नियोजन के कई प्रकार हो सकते हैं – समग्र, सीमित तथा प्रशासकीय। इनमें से पहला, जिसे सामान्यतः सामाजिक–आर्थिक नियोजन कहते हैं, सबसे अधिक व्यापक होता है। यहाँ पर यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सामाजिक – आर्थिक नियोजन केवल कुछ आर्थिक लक्ष्यों और कुछ भौतिक लक्ष्यों के प्रयास से कहीं अधिक है। यह देश का सर्वव्यापी विकास प्राप्त करने का सर्वोपरि प्रयास है। चतुवर्षीय, पंचवर्षीय तथा सप्तवर्षीय योजनाएँ इस प्रकार के प्रयास के उदाहरण है। ऐसा सुदूरगामी, दीर्घकालीन तथा सर्वव्यापक नियोजन प्रायः मतभेद का विषय बन जाता है। ऐसे नियोजन में विषमता उत्पन्न होती है और सन्देह उठ खड़े होते हैं। अनेक प्रश्न पूछे जाते हैं; जैसे – क्या नियोजन प्रजातन्त्र के अनुरूप है?, नियोजन का क्या तात्पर्य है? क्या नियोजन शब्द की परिभाषा से ही यह स्पष्ट नहीं है कि राजनीतिक तथा आर्थिक, दोनों ही क्षेत्रों में नियोजन निश्चित रूप से हस्तक्षेप न करने की नीति या मुक्त व्यापार नीति का निषेध है। किन्तु मुक्त व्यापार नीति तथा प्रजातन्त्र को एक ही अवधारणा नहीं माना जा सकता। उन्नीसवीं शताब्दी का उदार पूँजीवादी प्रजातन्त्र अब पुराना पड़ गया है। इन बातों से इनकार नहीं किया जा सकता कि साम्यवादी देशों में नियोजन के परिणामस्वरूप प्रायः व्यक्ति की स्वतन्त्रता का दमन किया गया है, और उसके साथ उग्र उपाय तथा आतंक संलग्न रहे हैं किन्तु यह दोष नियोजन का उतना नहीं है जितना कि साम्यवाद का है। जो भी हो, भारत प्रजातन्त्रीय पद्धति के द्वारा योजना बनाकर समाजवादी समाज की स्थापना करने का प्रयत्न कर रहा है।

दूसरी ओर, आर्थिक तथा भौतिक लक्ष्यों को पूरा करने से समुदाय के जीवन के केवल कुछ पहलुओं के विकास के एकाकी, पृथक्, सीमित तथा असमन्वित कार्यक्रम का ही निरूपण होता है। इस प्रकार, भारत में 1947 से पूर्व वस्त्र उद्योग काफी उन्नति कर चुका था, और जमशेदजी टाटा ने जमशेदपुर में एक बड़ा लोहे का कारखाना खोला था। उसी प्रकार सरकार ने स्कूल, औषधालय, अस्पताल इत्यादि स्थापित करने के कार्यक्रम अपने हाथ में ले लिया। सड़कें बनाना तथा सिंचाई की सुविधाओं का प्रबन्ध विकास के शान्तिपूर्ण प्रयासों के उदाहरण हैं। सड़कें बनाना तथा सिंचाई की सुविधाओं का प्रबन्ध विकास के शान्तिपूर्ण प्रयासों के उदाहरण हैं। दूसरे शब्दों में, सरकार ने कृषि, शिक्षा, लोक स्वास्थ्य, उद्योग, लोक निर्माण इत्यादि के क्षेत्रों में विकास के बहुत से कार्यक्रमों को अपने हाथ में ले लिया तथा उन्हें कार्यान्वित किया। कुछ आर्थिक, भौतिक तथा वित्तीय लक्ष्य निस्सन्देह निश्चित किये

गये और उन्हें पूरा करने के लिए प्रयत्न किये गये। किन्तु 'नियोजन' शब्द का जो अर्थ आज समझा या लगाया जाता है वैसा अर्थ उस समय नहीं लगाया गया था।

योजना सरकारी और गैर–सरकारी, दोनों प्रकार की हो सकती है। लगभग सभी बड़ी–बड़ी औद्योगिक व्यापारिक एवं वाणिज्यिक संस्थाएँ, चाहे वे भारत में हों या विदेशों में, अपने–अपने विकास की योजना स्वयं बनाती हैं तथा उनका निष्पादन करती हैं। हमारा सम्बन्ध सरकारी या प्रशासकीय नियोजनों से ही है। कुछ लोग सरकारी नियोजन को 'प्रशासकीय' (नीति तथा कार्यक्रम नियोजन) तथा 'प्रबन्ध' (प्रवर्तनीय नियोजन) में वर्गीकृत करते हैं। इस प्रकार के शाब्दिक मतान्तर के लिए यहाँ परेशान होने की जरूरत नहीं है। जैसा ऊपर कहा गया है, हम नियोजन को प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण कृत्य मानते हैं। प्रशासकीय नियोजन में सरकार की चेष्टाएँ आ जाती हैं। फिफ्नर एवं प्रेस्थस के अनुसार, ''मोटे तौर पर उन्हें नीति नियोजन, कार्यक्रम नियोजन तथा प्रवर्तनीय नियोजन में बांटा जा सकता है। यह विभाजन स्तर मुख्यतः उद्देश्यों तथा उस विषय वस्तु पर आधारित है जिनसे वे सम्बद्ध हैं।'' फिर भी इनके बीच बहुत सूक्ष्म विभाजन रेखा खींचने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए, क्योंकि ये नियोजन की एक ही प्रक्रिया के दो चरण हैं। नीति नियोजन सर्वोच्च स्तर पर होता है – विधानमण्डल, राष्ट्रपति या प्रधान मन्त्री। इनमें से कोई एक या सब या इनमें से कुछ मिलकर नीति सम्बन्धी नियोजन बनाते हैं। लोक अधिकारियों द्वारा नीति–निर्धारण में कितना ही योगदान एवं सहायता की जाय किन्तु वे स्वयं नीतियों की रचना नहीं करते। नीतियां स्वभाव से राजनीतिक होती हैं, इसलिए इनका निर्धारण उन्हें ही करना चाहिए जिन पर राजनीतिक उत्तरदायित्व होता है। नीति स्वयं तब तक प्रभावहीन रहती है जब तक उसे ठोस कार्यक्रम का रूप नहीं दिया जाता। ऐस विशिष्ट कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं को बनाना चोटी के तथा बीच के निष्पादकों का उत्तरदायित्व होता है। भारत में यह कार्य मुख्यतः सचिवालय करता है और नीति विभाग के प्रधान उसे सहायता एवं मन्त्रण देते हैं। अन्तिम किन्तु महत्वपूर्ण बात है योजना का कार्यान्वयन या निष्पादन। यह नीति या प्रवर्तन अभिकरणों का ही उत्तरदायित्व है जो परियोजनाओं के कार्यक्रमों के कार्यान्वयन का आवश्यक कार्य एवं नियोजन का निर्धारण करते हैं। किसी नियोजन की सफलता की कसौटी उसका ठीक–ठीक कार्यान्वयन हे; और प्रायः ऐसा होता है कि इस कार्य में लगे अभिकरण सर्वोच्च स्तर पर प्रतिपादित की गयी नीतियों में संशोधन कर देते हैं, और कभी–कभी तो वे उन्हें पलट भी देते हैं।

योजना विभिन्न अवधियों की – अल्पकालीन या दीर्घकालीन – हो सकती है। वार्षिक बजट स्वयं एकवर्षीय योजना है। फिर चतुर्वर्षीय, पंचवर्षीय तथा सप्तवर्षीय

योजनायें भी होती हैं। निश्चित अवधियों वाली ये योजनायें दीर्घकालीन या दृश्य सम्बन्धी योजनाओं के सन्दर्भ में बनायी जाती हैं। ऐसा नियोजन 15 से 25 वर्षों के लिए होता है और उस अवधि के अन्त तक प्राप्त किये जाने वाले लक्ष्यों का निश्चय करने का प्रयत्न करता है। वर्तमान परियोजनायें तथा कार्यक्रम इन लक्ष्यों को प्राप्त करने की दृष्टि से बनाये जाते हैं; और भविष्य में पैदा होने वाली आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रशिक्षित मानव शक्ति का सृजन करने तथा साधन जुटाने की तैयारियां आरम्भ कर दी जाती हैं। इस प्रकार नियोजित दृष्टिकोण वर्तमान योजनाओं के निर्धारण में तथा एक योजनाकाल से दूसरे योजनाकाल तक उन्हें जारी रखने तथा बनाये रखने में सहायता करता है। भारत में पूर्वानुमानित नियोजन का महतव समझ लिया गया है, और फरवरी 1957 में नियोजन आयोग को पूर्वानुमानित नियोजन सम्भाग की स्थापना की गयी। यह सम्भाग विभिन्न कार्यकलापों के सम्बन्ध में देश की आवश्यकताओं का अनुमान लगाता है ताकि भविष्य में 20–25 वर्षों से भी आगे की योजना बनायी जा सके। इस प्रकार नियोजन किसी भी प्रबन्धक के लिए कभी न समाप्त होने वाली एक प्रबन्धकीय समस्या कही जा सकती है।

नियोजन की प्रगति

नियोजन विभिन्न चरणों का एक अनुक्रम है जिनमें होकर योजना बनाने वाले को चलना चाहिए। ये चरण हैं : जिन उद्देश्यों को प्राप्त करना है उन्हें समझना, परिस्थिति या स्थिति का मूल्यांकन करना, सम्भावित कार्रवाई पर विचार करना और सर्वोच्च कार्रवाई का चयन करना। सेक्लर–हडसन व्यवस्थित नियोजन में छह चरण मानते हैं : (1) सम्भावित सीमा तक सावधानी से की गयी समस्या की परिभाषा तथा उनकी सीमा; (2) समस्याओं से सम्बन्धित सभी उपलब्ध सूचनाओं की खोजबीन; (3) समस्या को निपटाने के लिए सम्भावित विभिन्न समाधान या रीतियां निश्चित करना; (4) एक या अधिक कामचलाऊ साधनों की व्यावहारिक रूप से जांच करना; (5) अनुभव, निरन्तर अनुसन्धान तथा नवीन विकासों के प्रकाश में परिणामो का मूल्यांकन करना; (6) समस्या तथा परिणामों पर पुनर्विचार और यदि न्यायसंगत हों तो उन पर पुनर्निर्णय। मिलेट के अनुसार नियोजन में तीन मुख्य चरण होते हैं : (1) लक्ष्यों का निर्धारण; (2) उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उपलब्ध साधनों का आकलन; तथा (3) निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए बनाये गये कार्यक्रम की तैयारी। संक्षेप में, नियोजन की प्रक्रिया में तीन चरण होते हैं – नियोजनों का निर्धारण, निष्पादन तथा मूल्यांकन। अब हम संक्षेप में भारत में नियोजन के उपरोक्त तीनों रूप की विद्यमान व्यवस्था का वर्णन करेंगे।

योजना का निर्धारण

हमारे यहां राष्ट्रीय योजना बनाने की दृष्टि से योजना आयोग एक कुशल निकाय है। अभी तक सीमित निर्मित सभी योजनायें भली प्रकार लिखित प्रलेख हैं। आयोग का कार्य इस प्रकार है : राष्ट्र के साधनों का निर्धारण करना, उचित प्राप्त लक्ष्य तथा बंटवारों का ध्यान रखकर उनके प्रयोग की योजना बनाना, योजना को सफल बनाने के लिए प्रतिबन्धों, तन्त्र तथा आवश्यक समायोजनाओं को निश्चित करना एवं समय–समय पर योजना की प्रगति का मूल्यांकन करना और उसे सुगम बनाने के लिए आवश्यक सिफारिशें करना।

भारत में योजना की निर्धारण प्रक्रिया का प्रथम चरण यह है कि योजना आयोग मोटे तौर पर कुछ योजनाओं तथा परियोजनाओं में केन्द्रीय मन्त्रालयों तथा राज्य सरकारों के परामर्श से पूर्वानुमानित नियोजन की पृष्ठभूमि तैयार करता है; कुछ प्राथमिकताओं को निश्चित करता है; उपलब्ध साधनों का अनुमान लगाता है; और इन साधनों को अनुमान के अनुसार केन्द्रीय तथा राज्य के विभिन्न अभिकरणों में वितरित करता है। ये प्राक्कलन तथा परियोजनायें इसके पश्चात् राष्ट्रीय विकास परिषद् के समक्ष विचार हेतु रखी जाती है। योजनायें तथा परियोजनायें राष्ट्रीय विकास परिषद् की सिफारिशों के सन्दर्भ में संशोधित होकर प्रारम्भिक अनुदेशों के रूप में संघीय मन्त्रालयों तथा राज्य सरकारों के पास भेज दी जाती है।

इसके पश्चात् प्रत्येक संघीय मन्त्रालय या विभाग तथा प्रत्येक राज्य सरकार अपनी–अपनी योजनायें तैयार करती हैं। यह नियोजन का दूसरा चरण है। नियोजन को कार्यान्वित करने वाली राज्य–स्तरीय तन्त्र भी पर्याप्त विकसित होती हैं। बहुधा नियोजन तथा विकास का कार्य संभालने के लिए पूर्णकालिक सचिव होते हैं, जिनमें से बहुत से तो राष्ट्रीय प्रसार तथा सामुदायिक परियोजनाओं के निष्पादन सम्बन्धी उत्तरदायित्व को भी संभालते हैं एवं राज्यों के नियोजन विभागों द्वारा राज्यों के अन्य विभागों के साथ योजनाओं के सम्बन्ध में विभिन्न मात्रा में तालमेल बैठाते हैं। राज्य के मुख्यालयों में सचिवों की एक अन्तर्विभागीय समिति होती है जो प्रशासन में नियोजन सम्बन्धी तालमेल स्थापित करती है। ये सचिव विभिन्न विकास विभागों के प्रभारी अधिकारी होते हैं। समिति का सभापति मुख्य सचिव या नियोजन विभाग का सचिव होता है। सामान्यतः नियोजन के लिए तथा जिला कार्यक्रमों के परिपालन एवं समन्वय के कार्य एक ही पदाधिकारी को सौंपे जाते हैं जिसे सामान्यतः विकास आयुक्त कहते हैं। राज्य मन्त्रिमण्डल की एक समिति मुख्य मन्त्री के अधीन होती है जो व्यापक मार्गदर्शन तथा निदेशन प्रदान करती है। प्रमुख गैर–सरकारी व्यक्ति राज्य नियोजन मण्डलों के माध्यम से राज्य–स्तरीय योजनाओं के निर्धारण तथा

परिपालन में सम्मिलित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त सामान्यतः राज्य विकास समिति होती है, जिसमें मुख्यमंत्री तथा विकास विभागों के प्रभारी मन्त्री होते हैं। यह समिति पंचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में सामान्य नीति तथा अन्य बातें निर्धारित करती है। उत्तर प्रदेश जैसे कुछ राज्यों में एक नियोजन मण्डल भी है, जिसमें गैर–सरकारी व्यक्ति भी होते हैं।

सामान्य धारणा यह है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के निर्माण के समय यह निश्चित किया गया था कि योजना का निर्माण नीचे से होना चाहिए। योजना आयोग तथा राज्य सरकारों द्वारा विस्तृत अनुदेश इस सम्बन्ध में भेजे गये थे कि किस प्रकार जिलों के स्तर पर सामान्य ढाँचे के अन्तर्गत स्थानीय तथा ग्रामीण योजनायें तैयार की जायें, और किस प्रकार जिले के भीतर नियोजन का कार्य संगठित किया जाये। इस प्रकार पृथक–पृथक गांवों तथा ग्राम समूहों, जैसे तहसीलों, राष्ट्रीय प्रसार विकास खण्डों इत्यादि के लिए योजनायें बनायी गयीं। प्रारम्भ में नीचे की ओर से योजना बनाने का अथक प्रयास किया गया था; किन्तु जब राज्य योजनाओं को काट–छाँटकर दुरूस्त किया गया तो जिला तथा स्थानीय योजनाओं के रूप में न तो समुचित ढंग से विभाजन किया जा सका और न ही उनका तदनुसार समुचित क्रियान्वयन सम्भव हुआ। अतः राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थायी समिति ने अब यह निश्चय किया है कि जिले के अन्दर जन–प्रतिनिधियों को विकास सम्बन्धी उत्तरदायित्व सौंप देने के सिद्धान्त को मान्यता दी जाये। इसे स्वीकार कर लिया है। 'प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण' का जो नया स्वरूप स्थापित हुआ है उसके अनुसार पंचायत समितियों तथा जिला परिषदों को अपनी निजी–योजनायें बनाने का अधिकार पूरी तरह से प्राप्त हो जायेगा।

विगत अनुभवों से शिक्षा ग्रहण करके तीसरी योजना बनाने में दो कदम उठाये गये हैं; पहला, ग्रामीण तथा खण्ड नियोजन की प्रक्रिया प्रारमी करने से पहले सामान्य तौर पर समग्र परिणाम निश्चित किये जाते हैं। दूसरे, विकास सम्बन्धी सम्पूर्ण क्षेत्र के कार्य को हाथ में न लेकर ग्रामीण तथा खण्ड स्तर के ही कार्य को हाथ में लेना चाहिये।विषेशतः खण्ड स्तर पर कुछ ऐसे विषयों को भी शामिल कर लिया जाता है जो योजना लागू करने के लिए अधिक उपयुक्त प्रतीत होते हैं। इस प्रकार से निश्चित किये गये विषय हैं – कृषि, सहकारिता, ग्रामीण उद्योग, प्रारम्भिक शिक्षा, ग्राम जलप्रदाय, ग्राम क्षेत्रों की कुछ सुविधाओं का पर्यवेक्षण तथा ग्रामीण क्षेत्रों की मानव शक्ति को और अधिक काम में लगाने का कार्य।

राज्य तथा संघीय मन्त्रालयों द्वारा अपनी–अपनी योजनायें आयोग को प्रस्तुत करने के पश्चात् विभिन्न योजनाओं, कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं को एकीकृत

योजना में गूंथे जाने की प्रक्रिया आरम्भ होती है। योजना का रूप निश्चित करते समय आयोग संसद के विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों से परामर्श करता है। उसके पश्चात् 'योजना का प्रारूप' प्रकाशित कर दिया जाता है, जो लोक–चर्चा का विषय बन जाता है। विश्वविद्यालय, प्रेस, राजनीतिक दल, व्यापार–मण्डल, वाणिज्यि संगठन तथा अन्य समूह और व्यक्ति उस प्रारूप के विषय में अपनी–अपनी टिप्पणियां देने को स्वतंत्र होते हैं।

इससे अगली अवस्था में योजना आयोग तथा विभिन्न राज्य सरकारों के मध्य दीर्घकालीन एवं विस्तृत चर्चा चलती है, जिसके परिणामस्वरूप राज्यों की योजनाओं के आकार तथा प्रकृति सम्बन्धी समझौता होता है। केन्द्रीय सरकार योजना को अन्तिम रूप देने के लिए संघीय मन्त्रालयों से भी राज्यों की भांति ही परामर्श करती है। ये कामचलाऊ समझौते इसके पश्चात् संघीय मंत्रिमंडल के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं, और उसके अनुमोदन के पश्चात् राष्ट्रीय विकास परिषद के पास भेज दिये जाते हैं। इसके पश्चात् योजना आयोग राष्ट्रीय विकास परिषद की सिफारिशों के सन्दर्भ में योजना को अन्तिम रूप प्रदान करता है। तत्पश्चात् योजना को संसद में प्रस्तुत किया जाता है, और उसका अनुमोदन पाने के बाद यह सरकारी योजना बन जाती है; और तत्पश्चात् उसे सरकारी योजना के रूप में प्रकाशित कर दिया जाता है।

7.5 बजटिंग

बजट से अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा सार्वजनिक अभिकरण की वित्तीय नीति का निर्माण, विधिकरण एवं क्रियान्वयन किया जाता है। व्यक्तिवाद के युग में, बजट अनुमानित आय एवं व्यय का साधारण विवरण मात्र था। परन्तु आधुनिक कल्याण राज्य में सरकार के क्रियाकलापों में तेजी से वृद्धि हो रही है जो सामाजिक जीवन के सभी पक्षों को आबंटित करती है। सरकार अब सकारात्मक कार्यों द्वारा नागरिकों के सामान्य कल्याण को उन्नत करने का एक अभिकरण है। अतएव, बजट को अब एक प्रमुख प्रक्रिया समझा जाता है जिसके द्वारा जनसंसाधनों के प्रयोग को नियोजित एवं नियंत्रित किया जाता है। बजट निर्माण वित्तीय प्रबन्ध का एक प्रमुख घटक है जिसमें विनियोग अधिनियम, व्यय का कार्यकारिणी द्वारा निरीक्षण, लेखा एवं रिपोर्टिंग प्रणाली का नियंत्रण, कोष प्रबन्ध एवं लेखा परीक्षण सम्मिलित हैं।

केन्द्रीय सरकार के बजट में कल्याण मंत्रालय एवं मानव संसाधन विकास मंत्रालय के महिला एवं बाल विकास विभाग तथा अन्य मंत्रालयों यथा स्वास्थ्य एवं

परिवार कल्याण मंत्रालय, गृह मंत्रालय आदि द्वारा किये जाने वाले सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों से सम्बन्धित उपबन्धों तथा केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड के माध्यम से स्वयंसेवी संगठनों को दी जाने वाली सहायता अनुदानों का उल्लेख होता है। इसी प्रकार, राज्य सरकारें, अपने–अपने बजट में समाज कल्याण विभाग के लिए वित्तीय प्रावधानों की व्यवस्था करती हैं। इसके अतिरिक्त, संयुक्त राष्ट्र एवं इसकीविषेशीकृत एजेंसियों, यथा यूनेस्को, डब्ल्यू0 एच0. ओ0 आदि एवं अन्तर्राष्ट्रीय अशासकीय संस्थायें भी विभिन्न कल्याणकारी प्रोग्रामों के लिए वित्तीय प्रावधानों को निरन्तर बढ़ा रहे हैं, परन्तु ये जरूरतमंदों की बढ़ती हुई संख्या की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए काफी अपर्याप्त है। वस्तुतः ये केवल हिमशैल बिन्दु को केवल छूती हैं। अतएव, कल्याणकारी प्रोग्रामों के लिए राशि की मात्रा बढ़ाने के लिए वित्त के अतिरिक्त साधनों को जुटाने की आवश्यकता है। स्वयंसेवी संगठनों के पास धन की अपार कमी है; उन्हें भी विभिन्न क्षेत्रों में कल्याण सेवाएं प्रदान करने की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त धनराशि जुटाने हेतु विभिन्न स्रोतों को खोजना होगा।

वित्तीय प्रबन्ध में उन विधियों एवं संयंत्र की भी व्यवस्था होती है जिनके द्वारा यह सुनिश्चित हो सके कि कल्याण प्रोग्रामों हेतु प्रदान विधियों का प्रयोग निष्ठा, बुद्धिमत्ता एवं मितव्ययिता से हो रहा है, लेखों को ठीक प्रकार से रखा जा रहा है तथा लेखा परीक्षण फंडों के दुरूपयोग, गबन एवं अपयोजन को रोकने के लिए किया जा रहा है। यह देखा गया है कि विनियोग का अधिकांश भाग बिचौलियों द्वारा जेब में रख लिया जाता है तथा बहुत कम अंश ही लाभ भोक्ताओं तक पहुंच पाता है। स्वयंसेवी संगठनों में भ्रष्टाचार एवं अपव्यय की रिपोर्ट आती है। अतएव, वित्तीय प्रशासन को सुधारने की आवश्यकता है ताकि विभिन्न प्रोग्रामों के लिए निर्धारित निधियों का ठीक प्रकार और ईमानदारी से उपयोग हो सके।

7.6 वित्तीय नियंत्रण

निष्पादकीय प्रबन्ध तथा विधायी नियन्त्रण का सबसे महत्वपूर्ण उपकरण होने के साथ ही बजट वित्तीय प्रशासन का प्रधान उपादान है। इस दृष्टि से यह प्रजातांत्रिक सरकार का आधार कहा जा सकता है। बजट बनाते समय वित्तीय निर्णय करने के दौरान सर्वाधिक प्रश्न नीति विषयक होते हैं। यदि शब्द–विन्यास किया जाये तो बजट शब्द की उत्पत्ति पुराने अंग्रजी शब्द से हुई है जिसका अर्थ है थैला या झोला, जिसमें से ब्रिटेन का राजकोष महामात्र, शासन की आगामी वर्ष की

वित्तीय योजना के कागजात संसद के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु, निकाला करता था। अब 'बजट' शब्द वित्तीय कागजात का निर्देश करता है, न कि झोला इत्यादि का।

बजट प्रणाली कुशल राजस्व प्रबन्ध का आधार है। समाज–विज्ञान विश्वकोष के अनुसार, ''बजट प्रणाली का वास्तविक महत्व इस कारण है कि यह किसी सरकार के वित्तीय मामलों के क्रमबद्ध प्रशासन की व्यवस्था करता है।'' राजस्व सम्बन्धी प्रबन्ध में अनेक क्रियाओं की एक निरन्तर श्रृंखला रहती है, जैसे राजस्व तथा व्यय का अनुमान, राजस्व तथा विनियोजन अधिनियमों का लेखा, लेखा–परीक्षण तथा प्रतिवेदन। इन क्रियाओं का संचालन किस प्रकार होता है, इसका वर्णन डब्ल्यू0 एफ0 विलोबी ने इस प्रकार किया है : ''पहले तो एक निश्चित समय – प्रायः एक वर्ष – के लिए सरकारी प्रशासन को ठीक प्रकार से चलाने हेतु जिन व्ययों की आवश्यकता होती है, उनका अनुमान लगाया जाता है, और इन व्ययों की पूर्ति हेतु धन के प्रबन्ध सम्बन्धी प्रस्ताव होते हैं। इस अनुमान के आधार पर राजस्व तथा विनियोजन अधिनियम पारित किये जाते हैं, जो स्वीकृत कार्यों के लिए वैध अधिकार प्रदान करते हैं। इसके आधार पर विभिन्न कार्यरत विभागों द्वारा राजस्व तथा विनियोजन अधिनियमों के अनुसार राजस्व एवं विनियोजन लेखे खोले जाते हैं; और इस प्रकार स्वीकृत द्रव्य का व्यय प्रारम्भ होता है। लेखा–परीक्षण तथा लेखा विभाग यह देखने के लिए इन लेखाओं का परीक्षण करता है कि वे ठीक हैं या नहीं, वास्तविक तथ्यों से संगति रखते हैं या नहीं, और विधि के सभी प्रावधानों अनुरूप हैं या नहीं। तदुपरान्त इन लेखाओं से प्राप्त सूचनाओं का सारांश निकाला जाता है और प्रतिवेदनों के रूप में उनको प्रकाशित किया जाता है। अन्त में इसके आधार पर अगले वर्ष के लिए नये अनुमान तैयार कियो जाते हैं, और फिर वही चक्र पुनः आरम्भ हो जाता है। इस प्रक्रिया में बजट ही वह तंत्र है जिसके द्वारा एक ही समय में कई क्रियायें पारस्परिक रूप से सम्बद्ध की जाती हैं, और उनकी तुलना तथा परीक्षा की जाती है। इस प्रकार बजअ राजस्वों तथा व्ययों का अनुमान मात्र न होकर कुछ और अधिक होता है। यह एक प्रतिवेदन, एक अनुमान तथा प्रस्ताव, एक प्रलेख होना चाहिए जिसके माध्यम से मुख्य कार्यपालिका, जो सरकारी प्रशासन के वास्तविक संचालन के लिए उत्तरदायी सत्ता है, धन एकत्र करने तथा विधियों को स्वीकार करने वाली सत्ता (संसद) के समक्ष इस आशय का सम्पूर्ण प्रतिवेदन उपस्थित करती है कि किस ढंग से उसने तथा उसके अधीनस्थों ने विगत वर्ष के दौरान प्रशासनिक कार्य कियसा है। साथी ही साथ, वह सार्वजनिक कोषागार की वर्तमान दशा का एक विवरण भी प्रस्तुत करती है। इस सूचना के आधार पर

कार्यपालिका आगामी वर्ष के लिए अपना कार्यक्रम बनाना प्रारम्भ करती है, और ऐसे कार्यों के लिए वित्तीय प्रबन्ध सम्बन्धी प्रस्ताव प्रस्तुत करती है।

अतः बजट कार्य सम्बन्धी एक योजना है। वह आगामी वित्तीय वर्ष के लिए मुख्य कार्यपालिका के कार्यक्रम को प्रतिबिम्बित तथा स्पष्ट करता है। यह सरकार के राजस्व तथा व्यय के विवरण मात्र से कहीं अधिक व्यापक वस्तु है। इसके तीन कार्य हैं : नियन्त्रण, प्रबन्धन और नियोजन।

बजट– निर्माण प्रशासकीय व्यवस्था का हृदय या प्राण है। यह समन्वय के एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में काम करता है। नकारात्मक रूप में यह अपव्यय को कम करने की एक प्रभावशाली युक्ति है। ये समस्त उद्देश्य अनेक तरीकों से प्राप्त किये जाते हैं, जैसे अनुमानों का औचित्य, विनियोजित निधियों के प्रयोग का निरीक्षण, व्ययों की दर एवं समय निश्चित करना, आदि। बजट बनाने की क्रिया व्यय के प्रति जागरूकता की भावना का संचार करती है। उसे ऐसा करना भी चाहिए, क्योंकि इस भावना को प्रशासन के सभी स्तरों यहां तक कि प्रवर्तन स्तर तक में प्रविष्ट करना चाहिए। सरकार जिस धनराशि को व्यय करना चाहती है उसका पूर्ण औचित्य होना चाहिए। बजट प्रक्रिया इस महत्वपूर्ण कार्य का सम्पादन करती है। अन्त में बजट निर्माण की प्रक्रिया नीतियों तथा कार्यक्रमों के मूल्यांकन का एक अवसर प्रदान करती है। यह हमें अनावश्यक क्रियाकलापों की सूचना देती है, तथा ऐसे कार्यों को समाप्त करने का अवसर प्रदान करती है। इस अर्थ में यह पूर्व–लेखापरीक्षण है। इस प्रकार, बजट निर्माण की प्रक्रिया अनुशासन सिखाती है और अनुशासन की रूपरेखा बनाती है, तथा कार्यक्रम और योजना के साथ कन्धा मिलाकर चलती है। पूर्वगामी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सभी संगठनात्मक स्तरों का बजट के उत्तरदायित्व में भाग लेना आवश्यक होता है। किन्तु व्यवहार में प्रवर्तन स्तर का बजट निर्माण में अधिक भाग नहीं होता है, क्योंकि ''मुख्य कार्यपालिका से संलग्न एक शक्तिशाली बजट कार्यालय होता है जो अपनी ही चलाता है, और बजट निर्माण में नीचे के संगठनों को काई स्वतन्त्रता या महत्व नहीं देता।'' इसके अतिरिक्त बजट बनाने में अत्यधिक विशिष्टता एवं दक्षता होने पर उसकी प्रभावशीलता को हानि पहुंच सकती है। उसी लेखक के शब्दों में, ''कुछ सरकारों में बजट बनाने का कार्य गणना तथा सांख्यिकी कौशल के रूप में इतना जटिल तथा अन्तर्विभाजित हो गया है कि कार्यक्रम योजना तथा मूल्यांकन के साथ इसका एकीकरण कठिन होता जा रहा है। इन अभिकरणों में बजट–निर्माण प्रक्रियाविषेशज्ञों के लिएविषेश क्षेत्र नहीं बन जानी चाहिए। स्मरणीय है कि इनविषेशज्ञों की इन अभिकरणों के वास्तविक कार्यक्रमों में न तो रूचि होती है और

न उनका इनसे परिचय ही होता है। विभिन्न संगठनों व अभिकरणों में भी लेखाकारों, सांख्यिकों तथा प्रक्रियाओं का विश्लेषण करने वालों की आवश्यकता होती है। अतः केन्द्रीय बजट कार्यालय (वित्त मंत्रालय व अन्य सचिवालय विभाग) को चाहिए कि वह कार्य करने का एक वातावरण उत्पन्न करे, जिससे अभिकरण में विद्यमान विशिष्ट एवं दक्षता–प्राप्त व्यक्ति कार्य कर सकें।''

उपरोक्त कृत्यों को पूर्ण करने के लिए कुछ सिद्धान्तों को अपनाने तथा विकसित करने की आवश्यकता है। बजट सम्बन्धी मामलों में कार्यपालिका को समुचित अधिकार, सुविधायें तथा स्वविवेक प्राप्त होना चाहिए, ताकि बजट यथार्थ में प्रशासकीय प्रबन्ध का एक प्रभावशाली उपकरण बन सके। हेरॉल्ड डी0 स्मिथ ने बजट कार्य के निदेशन तथा सहायता के लिए निम्नलिखित आठ सिद्धान्तों का उल्लेख किया है :

- कार्यपालिका का कार्यक्रम बनाना।
- कार्यपालिका का उत्तरदायित्व।
- प्रतिवेदन।
- समुचित उपकरण।
- विविध प्रक्रियायें।
- कार्यपालिका का स्वविवेक।
- समय में लाभ।
- द्विमार्गी बजट संगठन

वित्त का आहरण एवं नियंन्त्रण की व्यवस्था की जबावदेही सम्बन्धित संगठन में पृथक खण्ड वित्त विभाग की होती है परन्तु सीधे वित्त विभाग किसी भी प्रकार का लेनदेन नहीं कर सकता, क्योंकि प्रशासनिक एवं वित्त के नियंत्रण की जिम्मेदारी प्रशासनिक अध्किारी की होती है। क्योंकि किसी भी प्रकार का संगठन अथवा संस्था क्यों न हो, प्रशासनिक अधिकारी राज्य अथवा केन्द्र सरकार या अन्य वैधानिक संस्थाओं के नियमानुसार संगठन में उच्च कोटि का कार्य करने के लिए प्रशासनिक अधिकारी नियोजन करता है। इसलिए सम्पूर्ण रूप से वित्तीय जबावदेही भी संगठन के सर्वोच्च अधिकारी की होती है।

वित्त : विधायी नियन्त्रण का एक उपकरण

बजट सार्वजनिक धन पर नियंत्रण का सबसे महत्वपूर्ण उपकरण है। विधानमण्डल सार्वजनिक धन पर नियन्त्रण करके कार्यपालिका पर नियन्त्रण रख सकते है। इस नियन्त्रण का इतिहास स्वयं प्रजातन्त्र के ही विकास के अनुरूप है।

आरम्भ में यह नियन्त्रण केवल राजस्व वृद्धि तक ही सीमित था, किन्तु कालान्तर में नियन्त्रण विस्तृत होता गया और व्यय भी उसकी परिधि में आ गये। इस प्रकार विधायी नियन्त्रण यह प्रकट करता है कि कोई भी कर उसकी पूर्वानुमति के बिना एकत्र नहीं किया जा सकता, और न कोई व्यय ही उसके पूर्वानुमोदन के बिना किया जा सकता है। यह विधायी नियन्त्रण कुछ सिद्धान्तों के रूप में प्रकट हुआ है, जो कार्यपालिका को नियन्त्रण में रखने की संसदीय महत्वाकांक्षा पर प्रकाश डालता है। हैरॉल्ड ए. स्मिथ ने इन सिद्धान्तों को निम्नवत् स्पष्ट किया है :

(1) **प्रचार** – बजट का प्रथम चरण – कार्यपालिका की सिफारिश, विधायी विचार–विमर्श और बजट का निष्पादन – आदि बजट सम्बन्धी सभी बातों को जनसाधारण के समक्ष रखना चाहिए।

(2) **स्पष्टता** – बजट ऐसा होना चाहिए कि प्रत्येक नागरिक की समझ में आ सके। 1964 में एक ब्रिटिश लेखक ने कहा था कि 'प्रशासन ने कृपा करके ...... बजट को अधिकतम स्पष्ट कर दिया है।'

(3) **व्यापकता** – बजट में अपवाद के बिना सभी सरकारी कार्यकलापों पर प्रकाश डालते हुए व्यय तथा राजस्व का उल्लेख समग्र रूप में होना चाहिए। इसमें ऋण से मुक्ति पाने के लिए उपलब्ध बचत या घाटा पूरा करने हेतु नवीन राजस्व विधान या ऋण से पूरे किये जाने वाले घटक पृथक–पृथक रूप में प्रदर्शित होने चाहिए।

(4) **बजट की एकता** – सभी व्ययों को पूरा करने के लिए सभी प्रापत राजस्व एक सामान्य निधि या कोष में जमा किया जाना चाहिए। यह सिद्धान्त राजस्व कोविषेश उद्देश्यों के लिए पहले से निर्धारित करने के विरूद्ध है।

(5) **विस्तृत विवरण** – आय तथा विनियोग को स्पष्ट एवं विस्तृत रूप से प्रकट करना चाहिए और मदों में केवल अपवादस्वरूप ही परिवर्तन किया जाना चाहिए।

(6) **पूर्व–प्राधिकरण** – जिस अवधि के लिए बजट पारित किया जाता है, उसके प्रारम्भ के पूर्व ही बजट प्रस्तुत किया जाना चाहिए एवं उस पर विचार भी पूर्ण हो जाना चाहिए तथा कार्य आरम्भ कर दिया जाना चाहिए। इसमें उन सभी आवश्यकताओं के लिए भी अनुमान होने चाहिए जिनके बारे में पूर्वानुमान सम्भव हो सकें, ताकि जहां तक सम्भव हो, अनुरूप या घाटे के विनियोजनों के लिए प्रार्थना कम ही करनी पड़े। बजट निष्पादन का अधिकार विधायी सत्ता के अधीन होना चाहिए और एक ऐसे लेखा–परीक्षण करनी पड़े। बजट निष्पादन का अधिकार विधायी सत्ता के अधीन होना चाहिए और एक ऐसे लेखा–परीक्षण अभिकरण द्वारा उसकी जांच की जानी चाहिए जो विधानमण्डल को प्रतिवेदन प्रस्तुत करे।

(7) **आवर्तिता** – विनियोजन एक निश्चित अवधि के लिए होना चाहिए। यदि कोई विनियोजन निर्धारित अवधि के अन्त तक प्रयोग नहीं किया जाता तो सामान्यतः वह समाप्त हो जाना चाहिए या उसका पुनर्विनियोजन किया जाना चाहिए।

(8) **शुद्धता** – बजट के अनुमान, जहां तक सम्भव हो, शुद्ध होने चाहिए। व्ययों के अनुमानों में व्यर्थ के आंकड़े नहीं होने चाहिए, तथा राजस्व का अवमूल्यन करके धन की व्यवस्था करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

7.7 संचार

संचार प्रशासन का प्रथम सिद्धान्त माना जाता है। अभिकरण के उद्देश्यों की सफलता के लिए प्रभावशाली संचार व्यवस्था आवश्यक होती है। किसी संगठन के लिए कार्य करने वाले लोग यदि संगठन के उद्देश्यों, नीतियों तथा परिस्थितियों को समझते हैं, तो उनका उसके प्रति अधिक लगाव होगा, वे अपने कार्य में अधिक रूचि लेंगे तथा संगठन के साथ अधिक एकरूपता होगी। किसी व्यक्ति के उत्साहपूर्ण तथा क्रियात्मक सहयोग को प्राप्त करने का यही मार्ग है कि उस अभिकरण का प्रधान उसका विश्वास प्राप्त करे। संचार को मिलेट ने ''प्रशासकीय संगठन की रक्तधारा'' ठीक ही कहा है। फिफ्नर इसी को ''प्रबन्ध का हृदय'' कहते हैं।

यह संचार व्यवस्था का युग है। आज औसत दर्जे का आदमी भी अपनी सरकार तथा पड़ोसियों के अधिक निकट हैं। वह अपने चारों ओर के जीवन से अधिक एकरूपता का अनुभव करता है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी अब हम 'एक विश्व' की दिशा में अग्रसर हो रहे हैं। समूह प्रौद्योगिकी तथा मानव मनोविज्ञान में हुए अनुसन्धानों ने सिद्ध कर दिया है कि किसी भी संगठन का सफल संचालन उसमें काम करने वाले व्यक्तियों के सहयोग पर निर्भर करता है। लोकतन्त्र की यही प्रथम आवश्यकता है कि जनता प्रशासन से अधिकाधिक सम्बद्ध होनी चाहिए। इसी कारण व्यापार तथा शासन, दोनों क्षेत्रों के संगठनों में अति उत्तम संचार–व्यवस्था को स्थापित करने की आवश्यकता को स्वीकार कर लिया गया है। मिलजुलकर कार्य करने में संचार द्वारा निभायी गयी भूमिका को प्रबन्ध स्वीकार करता है। इसके पर्याप्त प्रमाण भी हैं। आज लगभग सभी सभ्य सरकारों ने सूचना, प्रकाशन तथा जन सम्पर्क विभाग स्थापित कर लिये हैं। प्रबन्ध सम्बन्धी साहित्य संचार से सम्बन्धित लेखों से भरा पड़ा है। संचार कौशल को विकसित करने के लिए विशेशतः सभाएँ, कार्यशालाएँ तथा अन्य प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे

हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में यहविषेश रूप से हो रहा है। कम्प्यूटरों ने तो विश्व में क्रान्ति ला दी है। इण्टरनेट ने तो मानो संसार भर को हमारे घर में समा दिया है।

'संचार' का अर्थ

'संचार' शब्द का प्रयोग प्रायः ज्ञान के प्रसार या सूचना भेजने के अर्थ में किया जाता है। फिर भी यहां इस शब्द का कहीं अधिक विस्तृत अर्थ है। इसमें विचारों का आदान–प्रदान, विचारों की साझेदारी तथा भाग लेने की भावना सम्मिलित है। इस प्रकार, संचार का मूल अर्थ सूचना नहीं बल्कि समझ है। मिलेट ने इसकी परिभाषा ठीक ही ''किसी साझे के प्रयोजन की साझा समझ'' के रूप में की है। टीड भी ऐसे ही विचार प्रकट करता है : ''संचार का मूल लक्ष्य समान विषयों पर मस्तिष्कों में मेल स्थापित करना है।''

किसी संगठन में संचार आन्तरिक, बाह्य तथा अन्तः वैयक्तिक होता है। प्रथम, अर्थात् आन्तरिक संचार का सम्बन्ध संगठन तथा कर्मचारियों के मध्य के सम्बन्धों से होता है। द्वितीय, अर्थात् बाह्य संचार का सम्बन्ध जनता और संगठन के अभिकरणों के सम्बन्धों से होता है, और इसे 'लोक सम्बन्ध' कहते हैं। तृतीय, अर्थात् अन्तःवैयक्तिक संचार का सम्बन्ध अभिकरणों के कर्मचारियों के अपने आपस के ही अन्तःसम्बन्धों से होता है। संचार को तीन वर्गों – 'ऊर्ध्व', 'अधो' तथा 'अधो–पार्श्व' – में भी वर्गीकृत किया गया है। 'ऊर्ध्व' संचार कार्य करने तथा प्रगति के विषय में लिखित, मौखिक तथा व्यवस्थित प्रतिवेदन की रीतियों से प्राप्त होता है; कार्य के सम्बन्ध में सांख्यिकी तथा गणना सम्बन्धी प्रतिवेदन, मार्गदर्शन, सुझावों तथा चर्चाओं सम्बन्धी लिखित तथा मौखिक निवेदन किये जाते हैं। इस प्रकार कार्य की समस्याओं के विषय में साक्ष्य प्रापत करने के लिए उच्च स्तर के अधिकारियों को साधन प्राप्त हो जाते हैं। 'अधो' संचार निदेश पुस्तिका, लिखित या मौखिक विशिष्ट आदेश या अनुदेश कर्मचारी वर्ग के सम्मेलन, बजट अनुमोदन तथा स्थापना प्राधिकरण जैसे साधनों से सम्भव होता है। उच्चतम स्तर पर इन युक्तियों का प्रयोग केवल समादेश तथा नियन्त्रण के लिए ही नहीं किया जाता, बल्कि नीचे के सभी स्तरों एवं कर्मचारियों को अपने रूख तथा विचारों की सूचना देने तथा मन्त्रणा, मार्गदर्शन तथा निदेशन देने के लिए भी 'अधो–पार्श्व' संचार लिखित या मौखिक सूचना तथा प्रतिवेदन के आदान–प्रदान, औपचारिक तथा अनौपचारिक व्यक्तिगत सम्पर्कों, कर्मचारी वर्ग की बैठकों तथा समन्वय करने वाली समितियों द्वारा सम्भव होता है। संगठन के अलग–अलग किन्तु सम्बन्धित भागों को एक जगह लाना संचार का लक्ष्य होता है।

माध्यम

संचार अनेक माध्यमों द्वारा सम्भव है। इन्हें तीन मुख्य वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है – श्रव्य, दृश्य, तथा श्रव्य–दृश्य अर्थात् सुनना, देखना और सुनना–देखना दोनों। श्रव्य संचार – माध्यम के उदाहरण सम्मेलन, समितियां, साक्षात्कार, टेलीफोन, रेडियो प्रसार, जनसाधारण की सभायें इत्यादि है। दृश्य संचार – माध्यम के अन्तर्गत लिखित संचार (परिपत्र, पुस्तिकाएँ, प्रतिवेदन, विवरणिका तथा हस्त–पुस्तकें) तथा चित्रण (चित्र, फोटो, पोस्टर, व्यंग्यचित्र, झण्डे, अधिचिह्न, स्लाइड इत्यादि) आते हैं। सवाक् चलचित्र, टेलीविजन तथा व्यक्तिगत प्रदर्शन श्रव्य–दृश्य संचार – माध्यम के उदाहरण हैं। इनमें से प्रत्येक माध्यम के अपने अलग–अलग गुण तथा सीमाएँ हैं। यह प्रबन्धक या निष्पादक के हाथों में है कि वह निश्चित करे कि कब कौन–सा संचार–माध्यम प्रभावशाली सिद्ध होगा।

व्यापारिक और शासकीय, दोनों ही प्रकार के संगठनों में सम्मेलन प्रणाली का संचार को प्रोत्याहित करने के साधन के रूप में अधिकाधिक प्रयोग किया जा रहा है, क्योंकि इससे विलम्ब नहीं होता, पत्र–व्यवहार भी कम होता है तथा लालफीताशाही में कमी आती है। मिलेट के अनुसार सम्मेलन प्रणाली के महत्वपूर्ण उपयोग निम्नलिखित हैं :

(1) समस्या सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है;

(2) समस्या के समाधान में सहायता होती है;

(3) निर्णय की स्वीकृति तथा निष्पादन सम्भव होता है;

(4) संगठन में काम करने वाले अधिकारियों में एकता की भावना उत्पन्न करने में सहायता होती है;

(5) कर्मचारी वर्ग के मूल्यांकन में सहायता होती है; तथा

(6) प्रशासकीय कर्मचारियों को सूचना का आदान–प्रदान सम्बन्धी प्रोत्साहन मिलता है।

सम्मेलन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

(1) व्यक्तियों को उनके वर्तमान उत्तरदायित्वों को अधिक सफलता के साथ निभाने में सहायता देना;

(2) उनके कार्य–सम्बन्धों में समन्वय करना;

(3) दूसरों के अनुभव से लाभ उठाना;

(4) निजी अनुभव को एकीकृत करना;

(5) दूसरों के सामने आने वाली समस्याओं को समझना;

(6) अपने दृष्टिकोण का विस्तार करना; और

(7) संगठनात्मक संचार को औपचारिक रूप प्रदान करना।

सम्मेलन प्रणाली का एक लाभ यह है कि इससे लोगों की रूचि बहुत बढ़ जाती है। समूह के सदस्य इससे पूरी तरह तथा समान रूप से भाग ले सकते हैं और पारस्परिक सफलता द्वारा उन्हें सन्तोष होता है, संगठन के सभी सदस्य परिणामों को स्वीकार कर लेते हैं, विश्लेषण तथा एकीकरण की आदतें उत्पन्न होती हैं, सामूहिक हौसले का विकास होता है तथा अनौपचारिकता आती है।

लेकिन सम्मेलन प्रणाली की अपनी सीमाएँ हैं। प्राक्कलन समिति (नवाँ प्रतिवेदन) के मतानुसार, ''सम्मेलनों में काफी वृद्धि हुई है। कभी–कभी तो वे इतने दुरूह हो जाते हैं कि उनमें भाग लेने वाले अधिकारियों के लिए सम्बन्धित विषय–वस्तु के साथ न्याय करना असम्भव हो जाता है, और व्यवहार में चर्चाओं एवं टिप्पणी लिखने के कार्यों में कमी होने के स्थान पर कभी–कभी तो पत्र–व्यवहार काफी लम्बे समय तक चलते रहते हैं, क्योंकि सम्बन्धित विषय पर प्रकट किये गये विभिन्न दृष्टिकोणों पर टिप्पणी करनी पड़ती है, उन्हें सुधारना पड़ता है तथा उनका समाधान करना पड़ता है। इसीलिए सर्वसम्मत विवरण तैयार करने में विलम्ब हो जाता है तथा कभी–कभी तो चर्चाएँ अधूरी रह जाने के फलस्वरूप आगे फिर सम्मेलनों में भाग लेना पड़ता है, और ऐसी दशा में वह प्रत्येक सभा के लिए पूरी तैयारी नहीं कर पाता। परिणाम यह होता है कि वह चर्चाओं में पूरा योग नहीं दे पाता। संक्षेप में, सम्मेलन प्रणाली नस्तियों या मिसिलों पर नोट लिखने की मूल प्रक्रिया की अपेक्षा अधिक व्यापक सिद्ध हो रही है।''

अतः सम्मेलन के लाभदायक सिद्ध होने के लिए उनका प्रबन्ध सावधानी से किया जाना चाहिए। किसी प्रारम्भिक योजना,विषेशज्ञों की सेवा, किन्हीं नियमों तथा प्रभावपूर्ण कार्य के लिए समुचित संगठन के बिना सम्मेलन प्रारम्भ ही नहीं करने चाहिए। किसी भी सम्मेलन के लिए प्रारम्भिक योजना अत्यावश्यक है। सम्मेलन के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों को चाहिए कि वे अपना पूरा समय योजना में लगायें और सम्मेलन की कार्रवई प्रारम्भ होने से पहले ही योग्य व्यक्तियों को उसके कार्य सौंप दें। सम्मेलन का संगठन भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। ठीक आकार का कमरा, घूम सकने वाली आरामदेह कुर्सियां, अच्छे प्रकाश एवं वायु–संचार की व्यवस्था, उपयुक्त साजसज्जा, श्यामपट, अभिलेखन, प्रोजेक्टर तथा स्लाइड जैसी वस्तुओं का प्रबन्ध, बैठने में सहायक होती है। इसी प्रकार, कार्रवाई की प्रणाली तथा सभापति का व्यक्तित्व भी सम्मेलन को सफल या असफल कर सकते हैं।

7.8 संगठन विकास

संगठन विकास से तात्पर्य किसी निश्चित उद्देश्य हेतु मानवी प्रयासों का सचेतन समेकन है। इसमें अन्तनिर्भर अंगों को क्रमबद्ध तौर पर इकट्ठा करके एक एकीकृत समष्टि का रूप दिया जाता है जिसके माध्यम से सत्ता, समन्वय एवं नियन्त्रण का प्रयोग देय उद्देश्य की प्राप्ति हेतु किया जाता है। भूतकाल में समाज कल्याण न्यूनाधिक एक छितरायी एवं तदर्थ राहत क्रिया थी जिसका प्रशासन किसी व्यापक संगठनात्मक संरचनाओं के बिना किया जाता था। जो कुछ भी कार्य किया जाना होता था, उसका प्रबन्ध सरल, तदर्थ, अनौपचारिक माध्यम से सामुदायिक अथवा लाभभोक्ताओं के स्तर पर ही हो जाता था। एक अन्य तत्व जो समाज कल्याण की अनौपचारिक एवं असंगठित प्रकृति का कारण बना, वह अशासकीय एवं स्वयंसेवी कार्य पर निर्भर था। सरकारी क्रियाएँ जो विशाल संगठनात्मक संरचना तथा भारी नौकरशाही का रूप ले लेती हैं, से भिन्न अशासकीय क्रिया समाज कल्याण का मुख्य आधार रही जो अपनी प्रकृति के कारण अत्यधिक औपचारिक संगइित संयंत्र पर कम आश्रित थी। परन्तु समाज कल्याण प्रोग्रामों के विस्तार तथा प्रभावित व्यक्तियों की संख्या एवं व्यथित धनराशि की मात्रा के कारण संगठन अपरिहार्य हो गया है।

संगठन विकास औपचारिक एवं अनौपचारिक हो सकता है। औपचारिक संगठन में सहकारी प्रयासों की नियोजित प्रणाली है जिसमे प्रत्येक भागीदार की निश्चित भूमिका, कर्तव्य एवं कार्य होते हैं। परन्तु कार्यरत व्यक्तियों में सद्भावना एवं पारस्परिक विश्वास की भावनाएँ विकसित करने हेतु अनौपचारिक सम्बन्ध समाज कल्याण प्रोग्रामों के सुचारू संचालन के लिए आवश्यक है।

संगठन विकास के अन्तर्गत इसकी प्रभावी क्रियाशीलता के लिए कुछेक सिद्धान्तों पर बल दिया जाता है। यह अपने सदस्यों के मध्य कार्य विभाजन करता है; यह विस्तृत प्रक्रियाओं द्वारा मानक प्रयोगों की संस्थापना करता है, यह संचार प्रणाली की व्यवस्था करता है। इसकी पदसोपानीय प्रक्रिया होती है जिसमें सत्ता एवं दायित्व की रेखाएं विभिनन स्तरों के मध्य से शीर्ष तथा नीचे की ओर आती–जाती है तथा आधार चौड़ा एवं शीर्ष पर एक अकेला अध्यक्ष होता है। इसमें आदेक की एकता होती है जिसका अर्थ है कि कोई भी व्यक्ति कर्मचारी एक से अधिक तात्कालिक वरिष्ठ से आदेश प्राप्त नहीं करेगा, ताकि दायित्व स्पष्ट रहे और भ्रॉंति उत्पन्न न हो। इसमें 'लाइन' एवं 'स्टाफ' के मध्य कार्यकारी सिद्धान्त के रूप में अन्तर होता है।

समाज कल्याण का संगठन कल्याण मंत्रालय के संगठन में देखा जा सकता है। इसमें मंत्री इसका राजनीतिक अध्यक्ष तथा सचिव प्रशासकीय मुख्य कार्यकारी है। विभिन्न स्कीमों के लिए विभिन्न प्रभाग हैं; केन्द्रीय स्तर पर अधीनस्थ संगठन तथा राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा संस्थान विकलांगों के लिए राष्ट्रीय आयोग एवं अल्पसंख्यक आयोग हैं। राज्यों एवं संघ क्षेत्रों के स्तरों पर समाज कल्याण विभागों का संगइन किया गया है तथा केन्द्रीय एवं राज्य दोनों स्तरों पर समाज के विभिन्न वर्गों, यथा महिला, बालक, अनुसूचित जातियां/जनजातियां, भूतपूर्व सैनिक के कल्याण हेतु निगमों की स्थापना की गयी है; स्वयंसेवी संगठनों में भारतीय बाल कल्याण परिषद् मुख्य संस्था है। कल्याण मंत्रालय कल्याणकारी क्रियाकलापों में मूल एवं मुख्य रूप से संलग्न स्वयंसेवी संगठनों को संगठनात्मक सहायता देती है जिनका क्रियाक्षेत्र उनकी विभिन्न गतिविधियों के समन्वय हेतु केन्द्रीय कार्यालय की मांग करता है। स्थानीय स्तर पर कल्याणकारी सेवाओं का संगठन विदेशों में उनके प्रतिभागों की तुलना में कमजोर हैं।

7.9 समन्वय

समन्वय संगठन का प्रथम सिद्धान्त है। यह प्रबन्ध का भी प्रथम सिद्धान्त है। अतः आधुनिक प्रशासन की यह बहुत महत्वपूर्ण समस्या भी है। कुछ लेखक तो 'प्रबन्धक' के स्थान पर 'समन्वयकर्ता' शब्द के प्रयोग के समर्थक हैं। फिर भी यह ध्यान रखना चाहिए कि समन्वय तो केवल साध्य या लक्ष्य की ओर ले जाने वाला एक साधन मात्र है, वह स्वयं साध्य नहीं है। न्यूमैन के शब्दों में, ''यह कोई पृथक क्रिया नहीं है बल्कि एक ऐसी अवस्था है जो प्रशासन के सभी चरणों में रम गयी है।'' समन्वय की आवश्यकता निम्न तीन मुख्य कारणों से उत्पन्न होती है : (1) किसी संगठन की इकाइयों का कर्मचारियों के कार्य में अतिच्छादन या झगड़ों से बचाव या निपटारा करना; (2) कार्य के अन्य पहलुओं की अपेक्षा करके एक ही पहलू पर अत्यधिक ध्यान देने की प्रकृति को रोकना या निरूत्साहित करना; तथा (3) किसी अभिकरण की विभिन्न इकाइयों में विद्यमान अधिकार–लिप्सयता साम्राज्य निर्माण की प्रवृत्ति को रोकना। क्लास का टाइम–टेबल समन्वय का उत्तम उदाहरण है। इसमें सभी पढ़ने वाले विषयों का स्थान होता है और किस विषय में कितना महत्व देना चाहिए, यह भी टाइमटेबल से दर्शित होता है।

समन्वय का अर्थ

निषेधात्मक अर्थ में समन्वय लक्ष्य प्रशासन से अतिच्छादन तथा संघर्ष को हुआ है। वस्तुतः यह किसी संगठन के कर्मचारियों में सामूहिक कार्य तथा सहयोग की

भावना के संचार का प्रयत्न करता है। प्रशासन क्षेत्र के प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा दी गयी। इस शब्द की कुछ परिभाषाएँ निम्नवत् हैं :–

समन्वय ''प्रयत्नों की ऐसी व्यवस्थित समकालिकता है जिसे किसी कार्य के निष्पादन का उचित परिणाम, समस्या यथा निदेशन प्राप्त होता है, जिसके फलस्वरूप का उद्देश्य के लिए सामंजस्यपूर्ण तथा एकीकृत क्रियायें सम्भव होती हैं।''

''विभिन्न भागों का परस्पर समायोजन, विभिन्न हिस्सों की गतिविधियों तथा प्रवर्तन का समय–समय पर समायोजन ही समन्वय है, ताकि समय के उत्पादन के लिए प्रत्येक भाग अपना अधिकतम योग दे सकें।''

समन्वय एक प्रक्रिया है, ''जो विमुक्त को शक्तियों तथा प्रभाव के आधार पर केन्द्रीभूत करती है, और जिसके फलस्वरूप स्वतन्त्र तत्व परस्पर एकसाथ काम करने लगते हैं।''

समन्वय ''उद्यम का प्रयोजन पूरा करने के लिए हिस्सों की एक व्यवस्थित समग्रता का एकीकरण है।''

मेरी पार्कर–फॉलेट ने समन्वय की परिभाषा इस प्रकार दी है : ''यह किसी स्थिति में सभी तत्वों का पारस्परिक सम्बन्ध है।'' वह आगे कहती हैं : ''आगे यह सोचकर किसी प्रक्रिया की यथार्थ कल्पना नहीं कर सकते कि *क* अपना समायोजन *ख, ग* और *घ* के साथ स्वयं कर लेता है। *क* अपना समायोजन *ख* के साथ करता है........ इत्यादि, इत्यादि। इस प्रकार पारस्परिक सम्बन्ध, प्रत्येक भाग की प्रत्येक अन्य भाग द्वारा या व्याख्या और दूसरों के प्रभाव के परिणामस्वरूप प्रत्येक अन्य भाग द्वारा इस प्रकार रमना ही समन्वय के सभी कार्यों का लक्ष्य होना चाहिए।''

समन्वय की एक सरल संक्षिप्त सी परिभाषा सेक्लर–हडसन द्वारा भी दी गयी है : ''समन्वय कार्य के विभिन्न भागों को परस्पर सम्बद्ध करने का सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य है।'' सामान्यत : समन्वय का अर्थ ऐसी व्यवस्थाओं से है कि किसी संगठन के सभी हितों के निर्धारित लक्ष्यों की ओर बिना काम दुहराये, खालीपन छोड़े या बिना टकराये कदम मिलाते हुए साथ–साथ आगे बढ़ें। उच्च श्रेणी के समन्वय के कुछ अच्छे उदाहरण ये हैं : किसी घड़ी के पुर्जों को आपस में फिट करना अथवा किसी नाव को खेना। वाद्यवृन्द कदाचित् समन्वय की निकटतम पूर्णता प्रस्तुत करता है।

समन्वय को कभी–कभी गलती से सहयोग समझ लिया जाता है। दोनों का एक ही अर्थ नहीं होता। टैरी के शब्दों में, सहायोग ''किसी सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक व्यक्ति का दूसरे या दूसरों के साथ सामूहिक कार्य है।'' समन्वय सामूहिक

कार्य से कहीं अधिक है और इसका अर्थ है ''प्रयत्नों की समकालिक'' अर्थात् प्रयत्न एक ही समय होने चाहिए। इस अन्तर को स्पष्ट करने के लिए टैरी एक मनोरंजक कहानी का उल्लेख करता है : ''एक लड़का था। वह एक दिन प्रातः ही रेलगाड़ी पकड़ना चाहता था। तदनुसार उसने सोने से पहले अपनी घड़ी आधा घण्टे बढ़ा दी ताकि वह निश्चित रूप से काफी समय पहले उठ बैठे। बिस्तर के पास ही मेज पर घड़ी रखकर व ह आराम करने लिए जल्दी सो गया। उसका पिता जिसे मालूम था कि लड़का तड़के ही रेलगाड़ी पकड़ना चाहता है, अपने बेटे के शयनागार में गया और यह सोचकर कि लड़के को उठने तथा कपड़े पहनने के लिए अतिरिक्त समय मिल जाये, उसने लड़के की घड़ी आधा घण्टा बढ़ा दी। इसी प्रकार, लड़के की माता भी सोने से पहले लड़के के शयनागार में गयी और घड़ी को आधा घण्टा आगे कर दिया ताकि लड़के को प्रातः जल्दी न करनी पड़े, परिणाम यह हुआ कि आधा घण्टा पहले उठने की अपेक्षा लड़का डेढ़ घण्टा पहले उठ गया और उसकी एक घण्टे की नींद मारी गयी। यहाँ माता, पिता तथा बेटे के कार्यों में सहयोग तो था किन्तु समन्वय नहीं था।''

समन्वय के दो रूप हैं : (i) आन्तरिक (कार्यात्मक), और (ii) बाह्य (संरचनात्मक)। आन्तरिक समन्वय किसी संगठन के कार्य करने वाले व्यक्तियों के व्यक्तिगत कर्तव्यों के समन्वय से सम्बन्ध रखता है। दूसरी ओर, बाह्य समन्वय का सम्बन्ध विभिन्न संघात्मक इकाइयों की क्रियाओं के समन्वय से होता है। ऐपल्बी के शब्दों में, ''यह पद–परम्परा लम्बवत् तथा क्षैतिज दोनों ही प्रकार से काम करती है। क्षैतिज सम्बन्ध इकाइयों तथा अभिकरणों के बीच होता है। समन्वय और प्रशासकों के बीच भेद करने के लिए हम इसे समन्वय कहेंगे। जो समन्वय एक ही निष्पादक के प्रति उत्तरदायी इकाइयों के मध्य होता है उसे इकाइयों के स्तर का समन्वय कहेंगे। यही समन्वय उस निष्पादन के स्तर पर जिसके प्रति वे इकाइयां उत्तरदायी होती हैं, प्रशासन बन जाता है, जबकि निष्पादन स्वयं अपने स्तर पर समन्वय मे अन्य अभिकरणों के साथ भाग लेता है।''

समन्वय किस प्रकार करना चाहिए?

समन्वय के साधन अनेक तथा विभिन्न प्रकार के हैं। उदाहरण के लिए, नियोजन समन्वय का एक आदर्श तरीका है। नियोजन में जन, धन तथा सामग्री के सभी प्राप्त साधनों का अधिकतम उपयोग होता है। उसका उद्देश्य यह है कि नियोजित लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को एक सीमित अवधि के भीतर प्राप्त किया जाय। यह राष्ट्रीय स्तर पर समन्वय के एक प्रयोग के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। दूसरे, समन्वय की प्रविधियों के संगठनात्मक तरीके होते हैं, अर्थात् उनका स्थायीकरण

होता है। ये सम्मेलनों, समितियों, संगोष्ठियों, अन्तर्विभागीय समितियों, कर्मचारी–वर्ग की इकाइयों, समन्वय स्थापित करने वाले अधिकारियों, इत्यादि के रूप में हो सकते हैं। किसी भी संगठन में पद–परम्परा एक समन्वयकारी अभिकरण है, क्योंकि इसका मुख्य प्रयोजन अभिकरण में मतैक्य उत्पन्न करना है। सत्य तो यह है कि संगठन स्वयं ही समन्वय का एक साधन है। भारत में समन्वयकारी संगठन अनेक है। केन्द्रीय सरकार स्वयं ही सर्वोपरि समन्वयकारी अभिकरण है। केन्द्रीय सचिवालय, मन्त्रिमण्डल, मन्त्रिमण्डल समितियां, योजना आयोग, क्षेत्रीय परिषदें, राष्ट्रीय विकास परिषद तथा प्रधान मन्त्री सभी तो उसी प्रक्रिया में संलग्न हैं। जिला स्तर पर जिलाधीश शीर्षस्तरीय समन्वयकर्ता है। प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण लागू होने पर उसकी प्रवृत्ति के साथ ही यह कार्य निश्चित रूप से बल पकड़ता जायेगा। फिर इसी श्रेणी में सहायक मण्डल तथा आयोग भी हैं, जैसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अन्तर–विश्वविद्यालय मण्डल तथा भारतीय ऐतिहासिक अभिलेख आयोग। समन्वय हेतु सम्मेलनों का भी स्वतंत्रता के साथ उपयोग किया जाता है। ये सम्मेलन योजनाओं के शीघ्र निपटान तथा कठिनाइयों के व्यावहारिक समाधान के लिए केन्द्र तथा राज्यों के बीच समन्वय का प्रयत्न करते हैं। वे वाद–विवाद के प्रकाश में विचारों का आदान–प्रदान तथा निश्चित नीति का निर्धारण करने के लिए वाद–विवाद सभाओं के रूप में भी कार्य करते हैं। वे सामान्य कार्यक्रमों के विकास में मदद देते हैं तथा इनके द्वारा ऐसे कार्यक्रमों के परिपालन एवं उनकी प्रगति की समीक्षा सम्भव होती है। ऐसे सम्मेलन राजनीतिक, सरकारी तथा व्यावसायिक स्तरों पर आयोजित किये जाते हैं। राज्यपालों, मुख्य मंत्रियों तथा विभिन्न विभागों के मन्त्रियों के सम्मेलन राजनीतिक स्तर पर समन्वयात्मक सम्मेलनों के ही उदाहरण हैं। सरकारी स्तर के सम्मेलनों के अन्तर्गत सरकारी सचिवों के सम्मेलन तथा विभागाध्यक्षों के सम्मेलन आते हैं। इनके अतिरिक्त, कुछ विशिष्ट कार्यों से सम्बन्धित सम्मेलन भी हैं, जैसे उपकुलपतियों के सम्मेलन तथा सिंचाई और शक्ति विचारगोष्ठी। इस विचारगोष्ठी में विभिन्न राज्यों के मुख्य अभियन्ता तथा नदी–घाटी परियोजनाओं के प्रधान सम्मिलित होते हैं।

प्रक्रियाओं तथा रीतियों का प्रमापीकरण समन्वय का तीसरा तरीका है। उन समस्त प्रक्रियाओं को, जिनका सम्बन्ध बहुत–से मनुष्यों से होता है और जो पुनरावर्ती स्वभाव की होती हैं, सामानयतः प्रमापीकृत कर दिया जाता है। कार्यप्रणालियों के प्रमापीकरण के अच्छे उदाहरण प्रपत्र हैं। नियमावली, विनियम तथा नियम ऐसे प्रमापीकरण के ही अन्य उदाहरण हैं।

केन्द्रीकृत गृह–पालन समन्वय का चौथा तरीका है। प्रशासन में गृह–पालन समस्या के अन्तर्गत प्रायः प्रदाय, भण्डारगार, भवनों की सफाई तथा मरम्मत, छपाई तथा प्रतिलिपिकरण के उपकरणों का नियन्त्रण, केन्द्रीय डाक, परिवहन तथा खाद्य और टेलीफोन सेवा आते हैं। प्रथम हूवर आयोग ने 1949 में सिफारिश की थी कि सामान्य सेवाओं के एक कार्यालय की स्थापना की जानी चाहिए जिसे इस प्रकार की गृह–पालन सेवायें सौंप दी जायें। यह सिफारिश स्वीकार कर ली गयी, और उसी वर्ष संयुक्त राज्य अमरीका में सामान्य सेवा प्रशासन की स्थापना कर दी गयी। भारत में केन्द्रीकृत गृह–पालन के बहुत–से अभिकरण हैं, जैसे महालेखा परीक्षक के अधीन लेखांकन तथा लेखा परीक्षा; लोक निर्माण विभाग के अन्तर्गत भवनों का निर्माण, मरम्मत तथा उनका जीर्णोद्धार; प्रदाय महासंचालनालय के अधीन प्रदाय, इत्यादि; लोक सेवाओं के चयन तथा भर्ती के लिए संघीय लोक सेवा आयोग इसी उद्देश्य से कार्य करता है।

7.10 सार संक्षेप :

प्रस्तुत इकाई में नीति निर्माण एवं निर्णय करना, का उल्लेख विस्तृत रूप से किया गया है। जिसमें अर्थ, प्रकृति नीति निर्माण आदि बिन्दु शामिल तथा इसी इकाई में नियोजन, बजटिंग संगठनात्मक विकास, समन्वय, मूल्य लाभ विश्लेषण, संचार की भी विस्तृत रूप में चर्चा की गयी है। जिससे कि छात्र/छात्रायें इकाई में शामिल सभी बिन्दुओं को जान सकें।

7.11 अभ्यास प्रश्न

(i) नीति निर्माण क्या है?

(ii) नियोजन क्या है?

(iii) संचार क्या है?

(iv) समन्वय से क्या समझते हो?

(v) बजटिंग किस कहते हैं?

1. नीति निर्माण किन–किन बिन्दुओं को ध्यान रखकर की जाती है। समाज कल्याण विकास में नीतिनिर्माण प्रक्रिया को समझाइये।
2. संचार किसे कहते हैं? द्विगामी संचार प्रक्रिया को समझाइये।
3. नीति निर्माण करते समय समाज कल्याण एवं विकास को ध्यान में रखकर किस प्रकार के समन्वय की आवश्यकता होती है। विस्तार से चर्चा करें।

7.12 पारिभाषिक शब्दावली

Policy making	नीति निर्माण	Planning	नियोजन
Budgeting	बजटिंग	Folkways	लोकाचार
Financial control	वित्तीय नियंत्रण	Morale	मनोबल
Communication	संचार	Nature of Programme	कार्यक्रम प्रकृति
Decision making	निर्णय करना	Forecasting	अनुमानित
Organizational development	संगठनात्मक विकास	Colleagues	सह–कर्मचारी
Coordination	समन्वय	Facts	तथ्य
Cost-benefit analysis	मूल्य लाभ विश्लेषण	employees	कर्मचारीगण।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डुवियोस ब्रेन्डा एवं मिले क्रोग्सख्ड कर्ता, सोशलवर्क एन इम्पावरिंग प्रोफेशन लाइब्रेरी ऑफ कान्टोस कैटालागिंग इन पब्लिकेशन डाटा, यू0एस0ए0 (1992)।
- डब्ल्यू0डब्ल्यू0डब्ल्यू0डाट अबैकन डाट कॉम।
- डॉ0 राय मनीष कुमार, रिसर्च थीसिस ऑन हेल्थ स्टेटस एण्ड प्राब्लम्स आफ सिड्यूल ट्राइब फेमिलीस, (2009)
- रोथमैन जैक, एट आल, स्ट्रैटजीस आफ कम्यूनिटि इन्टरवेंशन, छठवॉ संस्करण एफ0ई0 पीकाक पब्लिसर्स, इटारका (2001)।
- डब्ल्यू0डब्ल्यू0डब्ल्यू0डाट स्क्रिब्ड डाट काम/डाक
- डब्ल्यू0डब्ल्यू0डब्ल्यू0डाट सोशल वर्कस्काटलैण्ड डाट ओआरजी

इकाई –8

परियोजना प्रबन्धन

Project Management

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्‌देश्य

8.1 परिचय

8.2 परियोजना प्रबन्धन

8.3 परियोजना के उद्‌देश्य

8.4 समस्त विशेषीकृत आवश्यकताओं की पहचान :

8.5 मॉनीटरिंग

8.6 मूल्यांकन

8.7 उत्तरदायित्व

8.8 सार संक्षेप

8.9 अभ्यास प्रश्न

8.10 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.0 उद्‌देश्य :

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :–

7. परियोजना की जानकारी कर सकेंगे।
8. प्रबन्धन का ज्ञान कर सकेंगे।
9. परियोजना में समस्त आवश्यकताओं की पहचान कर सकेंगे।
10. परियोजना का निर्माण कैसे होता है उसका ज्ञान कर सकेंगे।
11. मूल्यांकन की जानकारी हो सकेगी।
12. अभिलेखन कैसे किया जाता है उसका ज्ञान हो सकेगा।
13. उत्तरदायित्व एवं अनुश्रवण का ज्ञान हो सकेगा।

8.1 परिचय

परियोजना प्रबन्धन से तात्पर्य एक ऐसी प्रक्रिया से है जिसके अन्तर्गत परियोजना निर्माण से लेकर परियोजना समाप्ति तक परियोजना से सम्बन्धित सम्पूर्ण तथ्यों, आंकड़ों, कार्यक्रम नियोजन, अनुश्रवण एवं मूल्यांकन का क्रमवद्ध एवं व्यवस्थित रूप से क्रियान्वयन एवं रिकोर्डिंग (अभिलेखन) किया जाता है।

इसलिए कहा जा सकता है कि परियोजना प्रबन्धन एक व्यवस्थित एवं क्रमवद्ध चलने वाली प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत परियोजना निर्माण से लेकर परियोजना के अन्तर्गत किये गये कार्यक्रमों का समन्वय, लक्ष्य प्राप्ति, कार्यक्रम सम्पन्न होना से लेकर अभिलेखन तक की प्रक्रिया सम्मिलित है।

8.2 परियोजना प्रबन्धन

परियोजना प्रबन्धन की निम्नलिखित विशेषताएं हैं :

1. किसी भी परियोजना से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन करना
2. परियोजना से सम्बन्धित रणनीति बनाना
3. परियोजना का निर्माण कार्य करना
4. परियोजना का क्रियान्वयन करना
5. सम्पूर्ण परियोजना क्रियान्वयन के दौरान परियोजना का अनुश्रवण एवं मूल्यांकन करना
6. परियोजना के लक्ष्यों के अनुरूप व्यवस्था करना
7. परियोजना की अभिलेखन करना

8.3 परियोजना के उद्देश्य :

1. किसी समस्या समाधान हेतु
2. किसी कार्य के क्रियान्वयन हेतु
3. सामाजिक विकास हेतु
4. नीति–निर्माण हेतु
5. उद्देश्य की प्राप्ति हेतु

8.4 समस्त विशेषीकृत आवश्यकताओं की पहचान :

- सबसे पहले समस्या का चुनाव करते हैं।
- समस्या के चुनाव के उपरांत सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन करते हैं।

- परियोजना के क्रियान्वयन हेतु क्षेत्र का चुनाव करते हैं एवं क्षेत्र का अध्ययन करते हैं कि उसकी भौगोलिक एवं सामाजिक स्थिति कैसी है।
- परियोजना के क्रियान्वयन में आने वाली बाधाओं की अनुश्रवण के माध्यम से पहचान करते हैं।

8.5 मॉनीटरिंग

- परियोजना की प्रगति के साथ–साथ जानकारियों को व्यवस्थित रूप से एकत्रित कर विश्लेषण करने को मॉनीटरिंग कहते हैं।
- मॉनीटरिंग का उद्‌देश्य किसी परियोजना या विभाग के परिणामों की कार्यकुशलता और प्रभावशीलता को बढ़ाना होता है।
- मॉनीटरिंग किसी भी कार्यक्रम की योजना तैयार करते समय निर्धारित लक्ष्यों और नियोजित गतिविधियों पर आधारित होती है।
- मॉनीटरिंग के अंतर्गत कार्यक्रम की प्रगति का समय–समय पर आंकलन किया जाता है, जिससे कि कार्यक्रम अपनी निश्चित दिशा में प्रगति करता है और कोई भी कमी या त्रुटि होने पर प्रबंधकों को इसकी जानकारी मिल जाती है।
- इसे प्रबंधकों को यह निर्धारित करने में सहायता मिलती है कि क्या कार्यक्रम के लिए उपलब्ध संसाधन पर्याप्त हैं और उनका उचित प्रयोग किया जा रहा है। उन्हें यह भी पता चलता है कि क्या उपलब्ध क्षमतायें पर्याप्त व उचित हैं और क्या यह योजनानुसार प्रगति कर रहा है।
- मॉनीटरिंग से मूल्यांकन गतिविधियों के लिए सहायक आधार प्राप्त होता है।

8.6 मूल्यांकन

- मूल्यांकन की प्रक्रिया में कार्यक्रम की योजना और इसके वास्तविक प्रभावों की तुलना की जाती है। इसके अंतर्गत यह देखा जाता है कि आपने क्या लक्ष्य रखे थे, आपने क्या परिणाम प्राप्त किए और किस तरह से किए।
- मूल्यांकन की प्रक्रिया रचनात्मकक हो सकती है जिसका उद्‌देश्य कार्ययोजना में सुधार लाना या स्वास्थ्य सेवाओं को बेहतर बनाना हो सकता है। इसे समवर्ती मूल्यांकन भी कहा जाता है।

- मूल्यांकन की प्रक्रिया के अंतर्गत पूरे हुए किसी कार्यक्रम के अनुभवों के आधार पर जानकारियों का सारांश तैयार किया जाता है।

मूल्यांकन के उद्देश्य

- इस बात की जानकारी प्राप्त करना कि परियोजना या विभाग द्वारा किन लक्ष्यों को प्राप्त किया जाना था? इसके द्वारा वे क्या परिवर्तन लाना चाहते थे या क्या प्रभाव डालना चाहते थे?
- इन लक्ष्यों या उद्देश्यों को पूरा करने की दिशा में की गई प्रगति का आंकलन करना।
- परियोजना या विभाग द्वारा अपनाई गई कार्ययोजना की समीक्षा करना। क्या कोई कार्ययोजना बनाई गई थी और क्या इस कार्ययोजना का पालन किया गया था। क्या यह कार्ययोजना सफल हुई? यदि नहीं तो क्यों नहीं?

कार्ययोजना की प्रभावशीलता का आंकलन :

- क्या उपलब्धता संसाधनों का उचित प्रयोग किया गया?
- क्या इस कार्ययोजना के अंतर्गत किए गए कार्य के तरीके सटीक थे?
- परियोजना या विभाग द्वारा किए गए कार्य कितने दीर्घकालिक हैं?
- विभाग की कार्यशैली से विभिन्न पणधारियों (स्टेकहोल्डर) पर क्या प्रभाव होंगे?

मूल्यांकन की प्रक्रिया द्वारा :

- समस्याओं व उनके कारणों की पहचान करने में सहायता मिलनी चाहिए।
- समस्याओं के संभावित उत्तर सुझाये जाने चाहिए।
- अनुमानों और कार्ययोजनाओं के बारे में प्रश्न पूछे जाने चाहिए।
- आपके द्वारा किए जा रहे कार्यों और कार्यशैली पर प्रतिक्रियायें की जानी चाहिए।
- आपको जानकारी मिलनी चाहिए।
- प्राप्त जानकारी पर आगे की प्रतिक्रिया करने के लिए आपको प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

- इस बात की संभावनायें बढ़ जानी चाहिए कि आप विकास कार्यों में सकारात्मक परिवर्तन कर पाये।

मूल्यांकन के प्रकार

आंतरिक मूल्यांकन : आंतरिक मूल्यांकन कार्यक्रम प्रबंधकों द्वारा आयोजित एवं पूर्ण किया जाता है।

सकारात्मक विषेशतायें :

- कार्यक्रम लागू किये जाने के साथ ही आंतरिक मूल्यांकन करने से अधिक जानकारियाँ और सूचनायं मिलती हैं जो बाहरी तौर पर मूल्यांकन में प्राप्त नहीं हो पाती।
- मूल्यांकन से प्राप्त परिणामों पर स्वामित्व रहता है जिससे कि प्राप्त नतीजों को सुधार के लिए प्रयोग किया जा सकता है।
- समस्याओं और सम्भावनाओं के बारे में बेहतर जानकारी मिलती है जिससे विश्लेषण और अनुशंसायें व्यावहारिक हो सकती हैं।
- आंतरिक मूल्यांकन कम खर्चीला होता है और यह मॉनीटरिंग प्रक्रिया को भी समृद्ध करता है।

आंतरिक मूल्यांकन की कमियाँ

- आंतरिक मूल्यांकन के अंतर्गत पहले से प्राप्त जानकारियों या पूर्वाग्रह के आधार पर विश्लेषण करने की प्रवृत्ति रहती है।
- आंतरिक मूल्यांकन के अन्तर्गत अपनाई जा रही कार्ययोजनाओं को सही ठहराने की प्रवृत्ति आमतौर पर देखी जाती है।

1. **बाहरी मूल्यांकन** : मूल्यांकन अध्ययनों का अनुभव रखने वाली किसी एजेन्सी या व्यक्ति द्वारा किए जाते हैं।

सकारात्मक विषेशतायें :

- इससे कार्यक्रम के बारे में नई जानकारी मिलती है और इनमें पूर्वाग्रह की कोई संभावना नहीं होती। कार्यक्रम के बारे में बाहरी मूल्यांकन के अपने दृष्टिकोण हो सकते हैं परन्तु एक ही कार्यक्रम को अलग नजरिए से देखना लाभप्रद हो सकता है।
- इससे उन समस्याओं और कारणों का भी पता चलता है जिस पर संभवतः आंतरिक मूल्यांकन के दौरान ध्यान न दिया गया हो।

- अधिक उत्तरदायित्व प्रक्रिया है।

बाहरी मूल्यांकन की कमियाँ :

- यह प्रक्रिया अधिक मंहगी होती है।
- इसमें उठाये गये विषय सीमित होते हैं।
- यद्यपि विश्लेषण बहुत अधिक विस्तृत और विवेचनात्मक हो सकता है फिर भी यह आवश्यक नहीं कि दी गई अनुशंसायें अधिक व्यवहार्य विकल्प हों।
- किसी बड़े कार्यक्रम में यह एक तरह के विषयों और कारणों पर अधिक ध्यान दिया जाता है और केवल उस समय उपलब्ध परिस्थितियों को ही ध्यान में रखा जाता है।

2. **प्रक्रिया का मूल्यांकन** : प्रक्रिया के मूल्यांकन में पूरी प्रक्रिया पर ध्यान दिया जाता है। इसमें यह देखा जाता है कि प्रक्रिया को किस प्रकार बनाई गई योजना के अनुसार क्रियान्वयन किया गया और इसकी गुणवत्ता कैसी थी।

3. **परिणामों का मूल्यांकन** : इसमें कार्यक्रम के परिणामों में ध्यान दिया जाता है और यह देखा जाता है कि क्या कार्यक्रम से वांछित परिणाम प्राप्त हुए और किस स्तर तक।

4. **कार्यक्रम का मूल्यांकन** : इसके अन्तर्गत कार्यक्रम की प्रक्रिया और नतीजों दोनों का ही मूल्यांकन किया जाता है। इसमें यह देखा जाता है कि क्या कार्यक्रम से वांछित परिणाम प्राप्त हुए और किस गुणवत्ता के साथ वे परिणाम मिल पाये। इसमें परिणामों को प्राप्त करने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया और जानकारियाँ भी कार्यक्रम के आंकलन का एक भाग होती है।

5. **प्रभाव का मूल्यांकन** : इसके अन्तर्गत कार्यक्रम के परिणामों का मूल्यांकन किया जाता है और यह देखा जाता है कि इस कार्यक्रम के उद्देश्य पूरे हो पाये अथवा नहीं।

6. **समवर्ती मूल्यांकन, रचनात्मक मूल्यांकन** : कार्यक्रम के दौरान बार–बार कई स्तरों पर यह मूल्यांकन किया जाता है ताकि इसका प्रभाव चलाये जा रहे कार्यक्रम पर पड़े। आमतौर पर समवर्ती मूल्यांकन बाहरी एजेन्सियों द्वारा किया जाता है। यदि इसके आंतरिक तौर पर किया जाये तो इस मॉनीटरिंग का ही एक भाग माना जायेगा।

7. **कार्यक्रम के अंत में किया जाने वाला मूल्यांकन** : इसे कार्यक्रम की समाप्ति के बाद किया जाता है ताकि कार्यक्रम के नये चरण को आरंभ करने से

पहले वर्तमान कार्यक्रम के अनुभवों से सीखा जा सके या फिर इसी कार्यक्रम को दूसरे स्थान पर दोहराने की योजना तैयार की जा सके।

8.7 उत्तरदायित्व :

1. समस्त परियोजना निर्माण के दौरान परियोजना का निर्माण क्रमवद्ध व्यवस्थित तरीके से करते हैं।
2. समस्त परियोजना प्रबन्धन के समय अनुश्रवण के माध्यम से सम्पूर्ण परियोजना पर केन्द्रित रहते हैं।
3. बिना भेद–भाव के परियोजना का प्रबन्धक करना।
4. विशेषीकृत विषयविषेशज्ञों को शामिल करना।
5. सम्पूर्ण परियोजना के दौरान लक्ष्य पर केन्द्रित रहना।

8.8 सार संक्षेप :

प्रस्तुत इकाई में परियोजना प्रबन्धन क्या है। एक परियोजना का निरूपण करते समय किन–किन आवश्यकताओं की पहचान करना चाहिए आदि की चर्चा विस्तार से की गई है। :

परियोजना निर्माण कैसे एवं विभिन्न चरणों, एवं मॉनीटरिंग मूल्यांकन का विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। इस इकाई में परियोजना का कार्यलेखन एवं उत्तरदायित्व को भी परिभाषित किया गया है इसमें लघु एवं विस्तृत प्रश्नों को भी शामिल किया गया है।

8.11 अभ्यास प्रश्न

- परियोजना किसे कहते हैं?
- परियोजना प्रबन्धन क्या है?
- मूल्यांकन क्या है?
- मॉनीटरिंग क्या है?
- अभिलेखन से क्या समझते हो?
- परियोजना प्रबन्धन क्या है? एक अच्छी परियोजना निर्माण में किन–किन तत्वों को शामिल करना चाहिए? विस्तार से चर्चा कीजिए।
- परियोजना निरूपण के विभिन्न चरणों की चर्चा कीजिए।

- भारत में ग्रामीण समस्या पर एक परियोजना का निरूपण कीजिए।
- मूल्यांकन क्या है? परियोजना के मूल्यांकन कैसे किया जाए जिससे अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकें।
- अभिलेखन पर एक निबन्ध लिखिए?

पारिभाषिक शब्दावली

Project management	परियोजना प्रबन्धन	Centered	केन्द्रित
Project objectives	परियोजना के उद्देश्य	Evaluation of process	प्रक्रिया का मूल्यांकन
Needs	आवश्यकता	Internal evaluation	आंतरिक मूल्यांकन
Evaluation	मूल्यांकन	Monitoring	अनुश्रवण
Monitoring		Goal oriented	लक्ष्य पर केन्द्रित
Responsibility	उत्तरदायितव	Implementation	क्रियान्वयन
Characterstics	विशेषताएं	Various steps	विभिन्न चरणों
Specific	विशेषीकृत	Elements	तत्वों

8.0 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

(i) सचदेव, डी0 आर0, भारत में समाज कल्याण प्रशासन, किताब महल प्रकाशन इलाहाबाद, 2008

(ii) टी0 लक्ष्मा, समाज कार्य में, व्यवसायिक प्रशिक्षण, डिस्कवरी पब्लिकेशन, नई दिल्ली – 2010

(iii) डुवियोस ब्रेन्डा एवं मिले क्रोग्सख्ड कर्ता, सोशलवर्क एन इम्पावरिंग प्रोफेशन लाइब्रेरी ऑफ कान्टोस कैटालागिंग इन पब्लिकेशन डाटा, यू0एस0ए0 (1992)।

(iv) डब्ल्यू0डब्ल्यू0डब्ल्यू0डाट अबैकन डाट कॉम।

(v) डॉ0 राय मनीष कुमार, रिसर्च थीसिस ऑन हेल्थ स्टेटस एण्ड प्राब्लम्स आफ सिड्यूल ट्राइब फेमिलीस, (2009)

(vi) रोथमैन जैक, एट आल, स्ट्रैटजीस आफ कम्यूनिटि इन्टरवेंशन, छठवॉ संस्करण एफ0ई0 पीकाक पब्लिसर्स, इटारका (2001)।

(vii) डब्ल्यू0डब्ल्यू0डब्ल्यू0डाट स्क्रिब्ड डाट काम/डाक

(viii) डब्ल्यू0डब्ल्यू0डब्ल्यू0डाट सोशल वर्कस्काटलैण्ड डाट ओआरजी

इकाई –9

कार्मिक नीतियाँ एवं मानव संसाधन विकास

Personnel Policies and Human Resource Development

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्‌देश्य

9.1 परिचय

9.2 कार्मिक नीति की आवश्यकता, विकास एवं सिद्धान्त

9.3 मानव संसाधन नियोजन और विकास

9.4 समाज कल्याण प्रशासन के सन्दर्भ में नियोजन

9.5 कर्मचारी विकास

9.6 प्रशिक्षण

9.7 कर्मचारी परामर्श

9.8 सार संक्षेप

9.9 अभ्यास प्रश्न

9.10 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.0 उद्‌देश्य :

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :–

- कार्मिक नीति का अर्थ एवं अवधारणा को समझ सकेंगे।
- मानव संसाधन विकास एवं नियोजन का ज्ञान कर सकेंगे।
- कर्मचारी विकास एवं समाज कल्याण के संदर्भ में नियोजन को समझ सकेंगे।
- प्रशिक्षण का अर्थ एवं अवधारणा समझ सकेंगे।
- कर्मचारी परामर्श के बारे में जानकारी कर सकेंगे।

9.1 परिचय

सेविवर्गीय प्रबन्ध का विकास 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ से शुरू हुआ। इसके पूर्व तक सेविवर्गीय प्रबन्ध से सम्बन्धित नीतियाँ प्रबन्धकों के लिये अपरिचित रही थीं। सेविवर्गीय प्रबन्ध के सभी कार्य कर्मचारियों पर प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण रखने वाले व्यक्तियों पर ही निर्भर करते थे, उनके सम्बन्ध में कोई निश्चित नीति नहीं थी। सेविवर्गीय प्रबन्ध को समस्त कार्यक्रम सेविवर्गीय नीतियों से प्रारम्भ होता है। कार्यक्रम की श्रेश्ठता नीतियों के गुणों पर निर्भर करती हैं। नीतियाँ इस बात की घोशणा करती हैं कि आप क्या करना चाहते हैं और ये नीतियां उपक्रम की आयोजन एवं कार्यक्रमों का मार्गदर्शन करती हैं। सामान्यतया नीति को हम पथप्रदर्शक नियमों की एक रूपरेखा के रूप में स्वीकार करते हैं।

9.2 कार्मिक /सेविवर्गीय नीति का अर्थ एवं परिभाषाएं

योडर : ने नीति को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, ''यह एक ऐसा पूर्व निर्धारित एवं चुना हुआ मार्ग है जो स्वीकृत उद्देश्यों की प्राप्ति से हमारा पथ–प्रदर्शन करता है।'' **फिलिप्पो** : ''नीति एक मानवकृत नियम अथवा पूर्व निश्चित कार्यप्रणाली है जो संगठन के निहित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किये जाने वाले कार्यों का मार्ग–दर्शन करती है। यह एक दीर्घकालीन योजना है जो कर्मचारियों को अपना कार्य करने के लिये मार्गदर्शन देती है।'' **रिचर्ड पी0 केल्हन** : ''सेविवर्गीय नीतियां कार्य को कार्यान्वित करने के लिये मार्गदर्शन करती हैं। ये सामान्य प्रभाव अथवा आधार प्रस्तुत करती हैं जिनके द्वारा निर्णय लिये जा सकें। इनका अस्तित्व संगठन के मूल्यों, दर्शन, विचार अथवा उद्देश्यों में पाया जाता है।''

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि **सेविवर्गीय नीतियां लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के विवरण हैं जो सेविवर्गीय प्रबन्ध के सम्बन्ध में संगठन के संकल्पों को परिभाशित करते हैं। सेविवर्गीय नीतियां सामान्यतः लिखित निर्देश होते हैं जो प्रबन्ध को उन उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता करते हैं जिनके लिये औद्योगिक संगठन की स्थापना की गई है।**

9.3 सेविवर्गीय /कार्मिक नीति की आवश्यकता, विकास एवं सिद्धान्त

- **कार्मिक नीति की आवश्यकता,**:उपक्रम के उद्देश्यों की प्राप्ति में सेविवर्गीय नीतियों का पर्याप्त महत्व होता है। इन नीतियों के अभाव में कोई भी उपक्रम अपने पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकता है। सेविवर्गीय नीति की

आवश्यकता को प्रतिपादित करने के सम्बन्ध में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं –

(1) **औद्योगिक शान्ति** – विभिन्नत सेविवर्गीय नीतियों के पूर्व निर्धारण एवं उनके अनुरूप आचरण से संगठन में शान्तिपूर्व वातावरण बना रहता है तथा श्रम एवं पूँजी के मध्य मधुर सम्बन्धों की स्थापना हो जाने से संगठन एवं औद्योगिक विकास के लक्ष्यों को आसानी के साथ प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार सेविवर्गीय नीतियां औद्योगिक सम्बन्धों को मधुर बनाये रखकर औद्योगिक जगत में शान्तिपूर्व वातावरण को बनाये रखती हैं, जो कि औद्योगिक विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

(2) **निर्णयों का आधार** – कर्मचारियों से सम्बन्धित विभिन्न मामलों में सेविवर्गीय नीतियां निर्णयों के आधार का कार्य करती हैं, अतः प्रबन्धक उचित निर्णय को समय पर लेकर संगठन को गति प्रदान कर सकता है।

(3) **अत्यधिक कार्य करने की प्रेरणा** – पदोन्नति, वेतन एवं इसी प्रकार की अन्य नीतियां पूर्व निश्चित होने से व्यक्ति स्वविकास हेतु प्रयत्नशील रहता है परिणामस्वरूप व्यक्ति (कर्मचारी) को अधिक कार्य करने के लिये प्रेरणा मिलती है और कर्मचारियों को कार्य के लिये प्रेरणा मिलने से संगठन के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को प्राप्त करने में भी सुविधा रहती है।

(4) **अधिकतम व्यक्तिगत विकास** – सेविवर्गीय नीतियों से संगठन में कार्यरत् विभिन्न व्यक्तियों को विकास के पूर्ण अवसर प्राप्त होते हैं। फलतः संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करना और भी आसान हो जाता है।

(5) **निर्णयों में एकरूपता एवं मितव्ययिता** – लगभग सभी सेविवर्गीय मदों एवं पहलुओं के सम्बन्ध में पहले से ही नीतियां निर्धारित होने से कार्यप्रणाली में नियमितता आती है तथा संगठन द्वारा लिये जाने वाले निर्णयों में भी एकरूपता आती है।

(6) **कार्य संतुष्टि** – सेविवर्गीय नीतियों से संगठन में कार्यरत कर्मचारियों को कार्य से सन्तुश्टि भी प्राप्त होती है। परिणामस्वरूप वे प्रसन्न मन से संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में जुट जाते हैं।

(7) **परिवार का छोटा प्रकार** – सेविवर्गीय नीतियां कर्मचारियों को अपने परिवार का आकार छोटा रखने के लिये भी प्रेरित करती हैं, जिससे कर्मचारी का परिवार छोटा हो जाता है। जब कर्मचारी का परिवार छोटा होता है तो वह अपेक्षाकृत अधिकतम सन्तुश्टि प्राप्त कर सकता है और एक सन्तुश्ट कर्मचारी संगठन के लक्ष्यों को अधिक आसानी से एवं शीघ्रता के साथ प्राप्त कर सकता है।

(8) **श्रमसंघों द्वारा विरोध नहीं** – कर्मचारियों से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं पर नीतियां निर्धारित करते समय श्रम संघों की राय ली जाती है एवं उनके द्वारा दिये गये उचित सुझावों को मान्यता भी प्रदान की जाती है जिससे वे संगठन के कार्यों में अनावश्यक रूप से बाधायें उत्पन्न करने की अपनी प्रवृत्ति को छोड़ देते हैं, इससे कार्य संचालन एवं संगठन को अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में अधिक सुगमता रहती है।

(9) **परिवर्तनों का विरोध नहीं** – सेविवर्गीय नीतियों के कारण श्रमिक अनावश्यक रूप से परिवर्तनों का विरोध भी नहीं करते हैं, फलतः संगठन के उद्‌देश्यों को प्राप्त करने में सहायता एवं सुविधा मिलती है।

(10) **पक्षपात की अधिक सम्भावना नहीं** – सेविवर्गीय नीतियां के होने से पक्षपात की अधिक सम्भावना नहीं रहती है। निश्पक्ष कार्य संचालन से कर्मचारियों के उत्साह एवं मनोबल में वृद्धि होती है तथा संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

(11) **विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन** – सेविवर्गीय नीतियों से विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन मिलता है, क्योंकि सेविवर्गीय नीतियों के द्वारा उचित व्यक्ति को उचित कार्य प्राप्त हो जाता है।

(12) **सुरक्षा की गारण्टी** – सेविवर्गीय नीतियां उन कर्मचारियों को सुरक्षा की गारण्टी प्रदान करती हैं किसी श्रम संघ के सदस्य नहीं हैं, क्योंकि सेविवर्गीय नीतियां सभी श्रमिकों पर समान रूप से लागू होती हैं।

(13) **व्यवहार का एक सामान्य स्तर** – सेविवर्गीय नीतियां कर्मचारियों से व्यवहार का एक सामान्य स्तर निर्धारित करती है। सेविवर्गीय नीतियों का निर्धारण हो जाने के पश्चात् उसके विकास एवं विस्तार का उत्तरदायित्व उपक्रम अधिकारियों पर आता है। सेविवर्गीय नीतियां काफी लचीली होती हैं उनमें परिस्थिति के अनुरूप संशोधन किया जा सकता है। प्रबन्धक वर्ग के समक्ष जैसे–जैसे नयी–नयी परिस्थितियां एवं समस्यायें उत्पन्न होंगी वैसे – वैसे सेविवर्गीय नीतियों का विकास एवं विस्तार होगा। इन नीतियों का विकास निर्णयों को लेने एवं दैनिक समस्याओं के समाधान हेतु कार्यवाही करने से होता है। यदि दैनिक कार्यवाही को सम्पन्न करने में इन नीतियों में कोई सहायता नहीं प्राप्त होती है तो उसमें परिस्थितियांवश संशोधन एवं परिवर्तन किये जा सकते हैं। कर्मचारियों के सुझाव एवं परामर्श, प्रबन्धकीय समस्यायें एवं कठिनाइयां, सामाजिक, राश्ट्रीय एवं अन्तर्राश्ट्रीय परिवर्तन आदि घटक सेविवर्गीय नीतियों के विकास में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

9.4 सेविवर्गीय / कार्मिक नीति की विकास

नीतियों के विकास में प्रबन्धक के लिये यह जरूरी है कि वह संगठन की आवश्यकताओं, लक्ष्यों, उद्देश्यों, मूल्यों एवं कर्मचारियों की अपेक्षाओं के मध्य इस प्रकार सामंजस्य सीापित करे कि ये नीतियां संगठन की आर्थिक उद्देश्यों की अवहेलना न करें और उपक्रम के उद्देश्यों की पूर्ति में विरोधी प्रतीत न हों। नीति के कार्यान्वयन में आने वाली बाधाओं पर पहले से ही विचार कर लिया जाना चाहिये। नीति निर्धारण करते समय सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के प्रयास किये जाने चाहिये और इस प्रकार की नीति निर्धारित की जानी चाहिये कि वह बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित की जा सके अर्थात् उसमें बदलती हुई परिस्थितियों के साथ परिवर्तन की क्षमता हो। नीति निर्धारण करते समय निम्न तीन तत्वों का विशेश रूप से ध्यान रखना चाहिये – (i) न्याय, (ii) कर्मचारियों की आवश्यकता एवं उनकी स्वीकृति तथा (iii) प्रजातांत्रिक एवं समानता की विचारधारा।

9.5 कार्मिक / सेविवर्गीय नीति के प्रमुख सिद्धान्त

सेविवर्गीय नीतियां संगठन की संवैधानिक आधारशिला होती हैं। इन नीतियों का उद्देश्य सम्बन्धित पक्षकारों के साथ न्याय एवं समानता का व्यवहार करना होता है और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये इन नीतियों का कुछ निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर निर्धारित करना आवश्यक सा हो जाता है। सेविवर्गीय नीतियों के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं –

(1) **सामूहिक हित का सिद्धान्त** – सेविवर्गीय नीतियां सामूहिक हित के सिद्धान्त पर आधारित होनी चाहिये अर्थात् कर्मचारी एवं सेवा नियोजक दोनों को ही यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिये कि उनके हित अलग–अलग नहीं हैं, अपितु एक ही हैं। कर्मचारी एवं नियोजक इन दोनों वर्गों के सहयोग एवं समन्वय पर ही संगठन की सफलता एवं सामूहिक हितों की सुरक्षा आश्रित है और सामूहिक हितों के विकास एवं सुरक्षा पर ही उनकी समृद्धि तथा खुशहाली निर्भर करती है।

(2) **श्रम संघों की मान्यता का सिद्धान्त** – सेविवर्गीय नीतियों में श्रम संघों को मान्यता देना अति आवश्यक है। इन श्रम संघों की अवहेलना करना स्पष्ट रूप से विनाश की ओर कदम बढ़ाने के समान है, क्योंकि श्रम संघ काफी सशक्त होते हैं एवं अपने साथ कर्मचारियों की एक बड़ी संख्या को लेकर

चलते हैं। इन नीतियों द्वारा उच्च प्रबन्ध के दृष्टिकोण को स्पष्टतापूर्वक प्रकट किया जाना चाहिये और श्रम संघों के कार्यों, उत्तरदायित्वों और उनकी भूमिका की प्रशंसा की जानी चाहिये। श्रम संघों के साथ अच्छे, मधुर एवं सहयोगपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लेना सेविवर्गीय नीतियों की एक महान उपलब्धि मानी जाती है। दूसरे शब्दों में, सेविवर्गीय नीतियों की सार्थकता ही इसी में है कि वे श्रम संघों के साथ सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने में सफल रहें। श्रम संघों एवं सेविवर्गीय नीतियों के सुमधुर सम्बन्धों से ही औद्योगिक जगत में शान्ति की स्थापना होती है और औद्योगिक शान्ति कायम रह सकती है।

(3) **प्रबन्ध में भागीदार का सिद्धान्त** – सेविवर्गीय नीतियों का निर्धारण इस प्रकार से किया जाना चाहिये कि उससे कर्मचारियों को प्रबन्ध में भाग लेने के अवसर प्राप्त हों। कर्मचारियों को प्रबन्ध में हिस्सेदारी प्रदान करने से कर्मचारियों से सम्बन्धित एवं अन्य प्रबन्धकीय सम्बन्धी अनेक समस्याओं का स्वतः ही समाधान हो जाता है। प्रबन्ध में कर्मचारियों को भागीदारी प्रदान करके आधुनिकीकरण, स्वचालन, विवेकीकरण तथा ऐसी ही अनेक समस्याओं के प्रति कर्मचारियों के विरोध की समस्याओं का स्वतः ही समाधान हो जाता है, क्योंकि प्रबन्धकीय क्षेत्र के काफी निकट रहने से कर्मचारियों को स्वयं वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान रहता है और वे अनावश्यक रूप से किसी भी प्रबन्धकीय कदम का विरोध नहीं करते हैं।

(4) **विकास का सिद्धान्त** – सेविवर्गीय नीतियों का निर्धारण करते समय कर्मचारियों के विकास के सिद्धान्त की ओर पर्याप्त ध्यान रखा जाना आवश्यक है अर्थात् सेविवर्गीय नीतियां इस प्रकार की होनी चाहिये कि उससे कर्मचारियों को अपनी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में उन्नति करने के पर्याप्त अवसर प्राप्त हों। प्रत्येक श्रमिक को स्वतः विकास (Self-development) के अवसर दिये जाने चाहिये ताकि श्रमिक स्वयं को एक उत्तरदायी व्यक्ति मानने लगे तथा उद्योग के प्रति स्वयं के उत्तरदायित्व को भली–भाँति समझने लगे।

(5) **कार्य व निष्पत्ति का सिद्धान्त** – सेविवर्गीय नीतियों का निर्माण व विकास करते समय कार्य और निष्पत्ति के प्रति मान्यता के सिद्धान्त को ध्यान में रखा जाना चाहिये। यह सिद्धान्त पर्याप्त एवं उचित मजदूरियों तथा वेतनों, कार्य की सुरक्षा, एक निश्चित जीवन–स्तर, कर्मचारियों की अपेक्षाओं, प्रबन्धकों का सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार, कार्य की प्रशंसा एवं कार्य–सन्तुष्टि

आदि से सम्बन्धित है। प्रत्येक कर्मचारी कार्य सुरक्षा के साथ–साथ पर्याप्त वेतन एवं कार्य से सन्तुष्टि तथा अपने द्वारा किये गये कार्य की प्रशंसा भी चाहता है, अतः सेविवर्गीय नीति इस प्रकार की होनी चाहिये कि वह उपरोक्त समस्त उद्देश्यों की पूर्ति करने में सक्षम हों। उक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिये नीति में भेंट, पुरस्कार पदोन्नति, कार्य प्रशंसा, योग्यता प्रमाण–पत्र आदि की व्यवस्था की जानी चाहिये।

(6) **परिवर्तन का सिद्धान्त** – सेविवर्गीय नीतियां इस प्रकार की होनी चाहिये कि वे कर्मचारियों को समय–समय पर होने वाले परिवर्तनों से अवगत कराती रहें। नीतियों के द्वारा कर्मचारियों में इतना मनोबल उत्पन्न कर देना चाहिये कि वे तकनीकी एवं वैज्ञानिक परिवर्तनों से होने वाली हानि को सहन कर सकें तथा वे परिवर्तनों का विरोध करने के स्थान पर परिवर्तनों के प्रति जागरूक बनें और परिवर्तनों के प्रति आस्था रखें। इसके लिये प्रबन्ध को परिवर्तनों के सम्बन्ध में विभिन्न माध्यमों से उचित जानकारी देनी चाहिये और उस सम्बन्ध में उनके मन में उत्पन्न शंकाओं का समाधान किया जाना चाहिये।

9.6 मानव संसाधन नियोजन और विकास

सेविवर्गीय नीतियों की क्षमता का निर्धारण यासेविवर्गीय नीति के उद्देश्य

सेविवर्गीय नीतियों का प्रमुख उद्देश्य संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये उपक्रम में कार्य कर रहे कर्मचारियों का मार्गदर्शन करना है। सेविवर्गीय नीति की सफलता अथवा असफलता की कसौटी यह है कि उससे उन उद्देश्यों की पूर्ति किस सीमा तक की गई जिसके लिये उसका निर्माण किया गया है। यदि सेविवर्गीय नीति अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहती है तो सेविवर्गीय प्रबन्धक एवं अन्य उच्चाधिकारियों का यह कर्तव्य है कि उसमें आवश्यक संशोधन एवं परिवर्तन करें जिससे कि सेविवर्गीय नीति अपने उद्देश्यों के अनुरूप बन सके। अतः सेविवर्गीय नीतियों की क्षमता को उसके उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। एक सेविवर्गीय नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

(1) **व्यक्तियों (कर्मचारियों) का अधिकतम विकास** – सेविवर्गीय नीति के अनेक उद्देश्यों की अनुसूची में व्यक्तियों अर्थात् उपक्रम में कार्य कर रहे कर्मचारियों का अधिकतम विकास करना एक सर्वोपरि उद्देश्य है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सेविवर्गीय नीति का निर्माण इस प्रकार से किया जाना चाहिये कि कर्मचारियों में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का तथा अधिकतम सहयोग

की भावना का जन्म हो। **टेलर** ने वैज्ञानिक प्रबन्ध का विकास करते समय व्यक्तियों के अधिकतम विकास की धारणा को अत्यधिक महत्व प्रदान किया है।

(2) **मानवीय प्रसाधनों का अधिकतम उपयोग –** सेविवर्गीय नीति का दूसरा मुख्य उद्देश्य मानवीय साधनों का अधिकतम एवं श्रेश्ठतम उपयोग करना है। श्रमिकों का विकास करने के साथ–साथ उनकी योग्यता का पूरा लाभ उठाना भी आवश्यक है। श्रमिकों के अधिकतम विकास एवं उनकी योग्यताओं का भरपूर उपयोग ये दोनों क्रियायें साथ – साथ तभी चल सकती हैं जबकि कर्मचारियों को नियुक्ति एवं उनके मध्य कार्य का विभाजन वैज्ञानिक तरीके से किया जाये।

(3) **मधुर श्रम सम्बन्ध –** श्रमिकों एवं नियोजकों के मध्य मधुर सम्बन्धों की स्थापना करके उसे बनाये रखना सेविवर्गीय नीति का एक प्रमुख उद्देश्य है। अधिकतम व्यक्तिगत विकास एवं मानवीय प्रसाधनों का अधिकतम उपयोग इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति भी तभी सम्भव है जबकि श्रम एवं पूंजी के सम्बन्ध मधुर बने रहें। टेलर ने अपने वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों में मानसिक क्रांति पर अधिक बल दिया है। उनके अनुसार, ''वैज्ञानिक प्रबन्ध में तात्विक दृश्टि से श्रमिकों एवं व्यवस्थापकों के प्रति पूर्ण मानसिक क्रांति समाविश्ट है।'' अर्थात् दोनों पक्षों में एक–दूसरे पर विश्वास करने की भावना होनी चाहिये।

(4) **अन्य उद्देश्य – उपरोक्त उद्देश्य के अतिरिक्त सेविवर्गीय नीति के कुछ अन्य उद्देश्य और भी होते हैं –**

(i) कार्य के प्रति सुरक्षा प्रदान करना।

(ii) श्रम एवं पूंजी के हितों की रक्षा करना एवं उनके कार्य को मान्यता प्रदान करना।

(iii) उचित वित्तीय एवं अवित्तीय प्रेरणाओं का विकास करना।

(iv) अभिप्रेरण एवं मनोबल में वृद्धि करना तथा उन्नति के अवसर प्रदान करना।

9.7 सेविवर्गीय नीति में सम्मिलित बातें

एक श्रेष्ठ सेविवर्गीय नीति में निम्नलिखित बातों समावेश होना चाहिये –

(1) अपनाई गई अनयथा अपनाई जाने वाली सेविवर्गीय नीति से कम्पनी के नाम, इतिहास विकास का पूर्ण परिचय तथा प्रबन्ध के बारे में पर्याप्त जानकारी का बोध हो।

(2) सेविवर्गीय नीति में कर्मचारियों की भर्ती के स्रोत, चयन प्रक्रिया तथा तकनीकों का उल्लेख होना चाहिये।

(3) सेविवर्गीय नीति में कार्य दशाओं, अवकाश, कार्य–घण्टे, पदोन्नति, सेवानिवृत्ति, वरिष्ठ अधिकार आदि बातों का उल्लेख होना चाहिये।

(4) नवीन कर्मचारियों तथा विद्यमान कर्मचारियों के लिये प्रशिक्षण कार्यक्रमों, योजनाओं तथा प्रशिक्षण उद्देश्यों से सम्बन्धित जानकारियां।

(5) परिवेदना के अर्थ का स्पष्टीकरण, परिवेदना पद्धति का विस्तृत उल्लेख, जिससे परिवेदना को दूर करने के लिये उचित अधिकारी व क्रम आदि का स्पष्टतः उल्लेख।

(6) श्रम कल्याण एवं सामाजिक सुरक्षा से सम्बन्धित योजनाओं का उल्लेख।

(7) दुर्घटनाओं, अनुचित रूप से कर्मचारियों को निकालना, अनुशासन को बनाये रखना एवं स्थायी ओदशों के सम्बन्ध में लागू होने वाला नियम एवं उपनियमों का स्पष्ट उल्लेख।

(8) औद्योगिक सम्बन्धों के बारे में स्पष्ट जानकारी।

(9) जन सम्पर्क के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी।

(10) सामूहिक सौदेबाजी के सम्बन्ध में पूर्ण विवरण अर्थात् सामूहिक सौदेबाजी के लिये श्रम–प्रतिनिधि कौन होगा, इस बात का स्पष्ट उल्लेख।

(11) संयुक्त परामर्श समितियों एवं पद्धतियों की पूर्ण विवेचना।

(12) श्रमिकों एवं अधिकारियों के मध्य आदेशों एवं प्रार्थनाओं के सम्प्रेषण के क्रम का विवरण।

एक वृहत् स्तरीय उपक्रम की सेविवर्गीय नीति में उक्त वर्णित बातों का उल्लेख होना चाहिये। उपक्रम के आकार के हिसाब से उक्त वर्णित बातें कम तथा संशोधित रूप में हो सकती हैं।

- **मानव संसाधन नियोजन**

1. नियोजन से आशय

नियोजन का उद्देश्य मानवीय श्रम का सदुपयोग करना है। इसके अन्तर्गत एक उपक्रम की मानव–शक्ति की अधिकतम प्राप्ति, उसका विश्वास, उसकी रक्षा एवं उपयोग आदि को सम्भव किया जाता है। वे सभी व्यक्ति जो काम जानते हैं या काम करने के योग्य हैं, किन्तु किसी कारणवश अभी काम पर नहीं हैं, जनशक्ति के अन्तर्गत आते हैं। जनशक्ति उत्पादन का एक ऐसा सक्रिय साधन है, जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती है। जनशक्ति नियोजन से आशय उसकी मांग व

पूर्ति में उचित सन्तुलन स्थापित करना है अर्थात् मानवशक्ति की मांग और पूर्ति में शीघ्र निश्चित और सफल सामंजस्य स्थापित करना ही जनशक्ति नियोजन है।

जनशक्ति नियोजन की विषय–वस्तु के अन्तर्गत जनशक्ति एवं उसका पूर्वानुमान लगाना, उपलब्धि के क्षेत्रों को खोजना आदि आते हैं, वर्तमान प्रतियोगिता के युग में जनशक्ति नियोजन में माध्यम से ही उत्पादन लागत एवं अन्य लागतों को नियन्त्रित रखा जा सकता है।

2. नियोजन के आधार

एक उपक्रम में मानव शक्ति नियोजन को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं –

(1) **विद्यमान जनशक्ति** (Existing Stock of Manpower) – एक नियोजन जन की सफलता की कामना तभी की जा सकती है, जबकि उसका आधार सुदृढ़ हो। विद्यमान जनशक्ति की जाँच करना इस नियोजन का पहला आधार है। नियोजन से पहलजे इस बात का अध्ययन कर लेना चाहिये कि उपक्रम में कितने कर्मचारी कार्य करते हैं, ताकि भविष्य में मानव शक्ति की आवश्यकता का ठीक–ठीक अनुमान लगाया जा सके। इसके अध्ययन के लिये कुल मानव शक्ति को समान विभागों में विभाजित करके व्यावसायिक आधार पर वर्गीकृत कर लिया जाता है। इनमें से किनको पदोन्नति दी जानी है अथवा निवृत्ति होने वाली है, इसकी जानकारी लेनी चाहिये। इस तरह से सभी सूचनाओं के माध्यम से विद्यमान मानव–शक्ति की सही जानकारी हासिल कर ली जाती है।

(2) **भावी आवश्यकताओं का अनुमान** (Estimation of Future Manpower Needs) – वर्तमान जनशक्ति के साथ ही भावी जनशक्ति का भी अनुमान होने पर नियोजन की सफलता निर्भर होती है। प्रत्येक उपक्रम में बदलती हुई परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुये भविष्य के लिये अनुमान करना आवश्यक है। उद्योगों की उत्पादन क्रिया तथा संचार की सुविधाओं में होने वाले परिवर्तनों के अलावा मानवशक्ति की कमी या वृद्धि का सही अनुमान उद्योग को विकसित करने के कार्यक्रम को अधिक प्रभावशाली बना सकता है।

(3) **दुरूपयोग** (Wastage) – यह भी जनशक्ति आयोजन का एक आधार है। इसके लिये संगठन में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों के फलस्वरूप मानव–शक्ति के दुरूपयोग का पता लगाया जाता है। इसके लिये श्रम

निकासी की दरों को मालूम किया जाता है तथा श्रमिकों के कार्य करने की अवधियों का विश्लेषण किया जाता है। यदि श्रमिक अधिक समय उद्योग में रहता है, तो जनशक्ति का दुरूपयोग कम होता है। मानव–शक्ति के दुरूपयोग का अध्ययन करते समय दो प्रकार के परिवर्तनों को ध्यान में रखना चाहिये – प्रथम वे परिवर्तन हैं, जिनके अन्तर्गत प्रबन्ध स्वयं उत्तरदायी हैं, जैसे – संयन्त्र का विस्तार, आधुनिकीकरण, श्रम–निकासी, छंटनी, बर्खास्तगी, पदोन्नति आदि। दूसरे परिवर्तन के लिये श्रमिक उत्तरदायी होते हैं, जैसे – इस्तीफा आदि।

3. मानवशक्ति नियोजन की आवश्यकता

बिना मानवशक्ति नियोजन के उपक्रम के उद्देश्यों को पूरा नहीं किया जा सकता है। इसका नियोजन करना अनेक प्रकार से महत्वपूर्ण एवं लाभप्रद होता है। मानवशक्ति नियोजन की आवश्यकता को निम्न बातों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है –

(1) **व्यवसाय के आकार में वृद्धि** – जब व्यवसाय के आकार में वृद्धि की जाती है, तो अधिक मानव शक्ति की आवश्यकता होती है। इस मानव शक्ति की आवश्यकता को पूरा करने के लिये नियोजन की जरूरत होती है, क्योंकि व्यवसाय के आकार में वृद्धि करने का निर्णय जिस समय लिया जाता है उस समय इस बात की आवश्यकता होती है कि वर्तमान में कितने श्रमिक कार्यरत हैं तथा भविष्य में कितने और श्रमिकों की आवश्यकता होगी, अतः इसके लिये नियोजन अति आवश्यक है।

(2) **प्रभावपूर्ण भर्ती एवं चयन नीति के लिये** – उपक्रम के प्रबन्धकों का लक्ष्य सही कार्य पर सही व्यक्ति का चयन एवं नियुक्ति करना होता है। जनशक्ति आयोजन के द्वारा आवश्यक मात्रा में भर्ती करना तथा भर्ती के लिये उचित व्यक्तियों का चयन करना सम्भव होता है। इससे कर्मचारियों के प्रशिक्षण पर कम व्यय करना पड़ता है तथा शक्ति, समय व धन का अपव्यय भी नहीं होता।

(3) **श्रम लागत में कमी करने के लिये** – जनशक्ति आयोजन होने से प्रति इकाई श्रम लागत में कमी आती है। साथ ही साथ इससे उत्पादन विवेकपूर्ण ढंग से होता है। इस नियोजन के अन्तर्गत कर्मचारियों की अधिकता या कमी को दूर करके उपक्रम के लिये आदर्श कर्मचारी शक्ति की व्यवस्था की जाती है।

(4) **उत्पादन में कमी को रोकने के लिये** – उत्पादन की कमी पर रोक के लिये मानवशक्ति नियोजन प्रभावकारी साधन है। इसके द्वारा मानवशक्ति की मांग तथा पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करके उत्पादन में कमी को रोका जा सकता है।

(5) **राष्ट्रीय रोजगार नीति का पालन करने के लिये** – वर्तमान में राष्ट्र की रोजगार नीति इस प्रकार की है कि श्रमिक को एक बार नियुक्त कर लेने पर उसको हटाना कठिन हो जाता है। इस नियोजन के माध्यम से पहले ही यह ज्ञात कर लिया जाता है कि उपक्रम में कितनी जनशक्ति की आवश्यकता होगी तथा उसी के आधार पर श्रमिकों की नियुक्ति की जाती है। इससे राष्ट्रीय रोजगार नीति का पालन करने में सहायता मिलती है।

(6) **कर्मचारी विकास कार्यक्रम बनाने के लिये** – कर्मचारी विकास कार्यक्रम को प्रभावी बनाने के लिये जनशक्ति नियोजन की आवश्यकता होती है। प्रशिक्षण तथा पदोन्नति के अवसरों का अनुमान इसी के आधार पर लगाया जाता है, जो कि कर्मचारी विकास कार्यक्रम के लिये आवश्यक कड़ियां हैं।

(7) **अच्छे श्रम सम्बन्धों के लिये** – मानवशक्ति नियोजन उपक्रम के श्रम–सम्बन्धों को खराब होने से बचाता है। इसके आधार पर श्रम बदली, श्रम–निष्कासन आदि समस्यायें सामने नहीं आती हैं, जिससे उद्योगों में श्रम सम्बन्धों को सुधारा जा सकता है।

(8) **जनाभाव और जनाधिक्य के दुष्प्रभाव से बचाव** – अधिक श्रमिक होनो तथा कम श्रमिक होना दोनों ही स्थितियां उपक्रम के लिए हानिप्रद होती हैं। जनशक्ति नियोजन के द्वारा इन हानियों से छुटकारा मिल जाता है।

4. मानव शक्ति नियोजन के उद्देश्य(Objectives of Manpower Planning)

मानव शक्ति नियोजन की विचारधारा नियोजन के सिद्धान्त पर आधारित है। मानव शक्ति नियोजन में परिणामत्मक एवं गुणात्मक दृष्टि से भावी मानव शक्ति का निर्धारण कर आवश्यकताओं को पूरा करने की व्यवस्था की जाती है। मानव शक्ति नियोजन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(1) **मानवीय शक्ति की आवश्यकताओं का सही पूर्वानुमान** (Correct Estimation of Manpower Requirements) – मानव शक्ति नियोजन से उपक्रम में मानवीय शक्ति की आवश्यकताओं का सही पूर्वानुमान लगाया जा सकता है, अतः भविष्य में आवश्यकता के समय उपयुक्त योग्यता वाले व्यक्ति की प्राप्ति आसानी से की जा सकती है।

(2) **मानवीय शक्ति का प्रबन्ध करना** (To Manage the Manpower) – मानवीय शक्ति द्वारा वर्तमान कर्मचारियों को उनके पदों के अनुरूप बनाना, वर्तमान पद रिक्तियों को वर्तमान मानव शक्ति द्वारा सर्वोत्तम ढंग से पूर्ति करना तथा भावी मानव शक्ति की आवश्यकताओं का निर्धारण करना आदि कार्य प्रबन्धक द्वारा किये जाते हैं। यह कार्य मानव शक्ति नियोजन द्वारा ही सुविधापूर्वक पूरा किया जा सकता है।

(3) **भर्ती नीति को मजबूत बनाने के लिये** (To Sound the Production Level) – मानवीय शक्ति नियोजन भर्ती नीति व चयन नीति के निर्माण में भी सहायक होता है। इसके द्वारा ऐसी भर्ती का निर्माण किया जा सकता है जिससे कम लागत में श्रेष्ठ कर्मचारियों की भर्ती की जा सके।

(4) **उत्पादन स्तर को बनाये रखना** (To Maintain the Production Level) – मानव शक्ति नियोजन से श्रमिकों की अनुपस्थिति दर, श्रम आवर्तन दर तथा अन्य कारणों से ली जाने वाली अवकाश की दरों में कमी आती है, जिससे उत्पादन स्तर को बनाये रखना सम्भव हो पाता है।

(5) **अन्य उद्देश्य** (Other Objectives) – उपर्युक्त उद्देश्यों के अलावा मानव शक्ति नियोजन अन्य उद्देश्यों में भीविषेश रूप से सहायक होता है। इसके द्वारा भविष्य में कर्मचारियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये विभिन्न स्रोतों का निर्धारण किया जा सकता है। इसके साथ ही कर्मचारियों की श्रम लागतों में कमी की जा सकती है तथा औद्योगिक सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाया जा सकता है।

6. मानव शक्ति नियोजन के प्रारूप (Forms of Manpower Planning)

मानव शक्ति नियोजन चाहे किसी भी स्तर पर किया जाये – राष्ट्रीय स्तर पर, क्षेत्रानुसार विशिष्ट उद्योग के स्तर पर तथा उपक्रम या कम्पनी के स्तर पर, उसके दो प्रमुख प्रारूप होते हैं –

I. अल्पकालीन मानव शक्ति नियोजन
II. दीर्घकालीन मानव शक्ति नियोजन

I. अल्पकालीन मानव शक्ति नियोजन(Short term Manpower Planning)

अल्पकालीन मानव शक्ति नियोजन बहुत ही कम समय के लिये किया जाता है। इसकी अवधि प्रायः एक या दो वर्ष होती हैं। अल्पकालीन मानवशक्ति

नियोजन करते समय मुख्य रूप से दो बातें ध्यान में रखी जाती हैं – (1) वर्तमान कर्मचारियों को उनके पदों के अनुरूप बनाना तथा (2) वर्तमान कर्मचारियों में से ही रिक्त स्थानों की पूर्ति करना।

(1) **वर्तमान कर्मचारियों को उनके पदों के अनुरूप बनाना** (Matching the Present Employees to their Jobs) – वर्तमान कर्मचारियों को उनके पदों के अनुरूप केवल दो ही परिस्थितियों में बनाया जाता है –

(A) **जब वर्तमान कर्मचारियों की योग्यता उनके पदों के लिये आवश्यक योग्यता से कम हो** – ऐसी स्थिति में उनके पदों के अनुरूप बनाने के लिये निम्नलिखित कदम उठाये जाने चाहिये –

- यदि कर्मचारियों में पद के अनुरूप योग्यता नहीं होती है तो उनको अतिरिक्त प्रशिक्षण देकर उनकी योग्यता में वृद्धि की जा सकती है।
- यदि कर्मचारी आवश्यक प्रशिक्षण के उपरान्त भी अपनी योग्यता में वृद्धि नहीं कर पाता तो उसे कार्यमुक्त किया जा सकता है।
- यदि किसी कर्मचारी में विद्यमान से कम योग्यता होती है तो उसके कार्य में परिवर्तन करके उसको कार्य के अनुरूप बनाया जा सकता है।

(B) जब कर्मचारी में अपने वर्तमान पद की आवश्यकता से अधिक योग्यता हो –

- व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार किसी अन्य पद पर स्थानान्तरित किया जा सकता है।
- इस समस्या के समाधान के लिये कर्मचारी को उनके वर्तमान पद पर ही बने रहने देकर उन्हें अतिरिक्त विशिष्ट कार्य भी सौंपा जा सकता है।
- नयी योजना का कार्य सौंपा जा सकता है।
- कर्मचारियों की पदोन्नति करके उच्च पद पर नियुक्त किया जा सकता है।

(2) **वर्तमान कर्मचारियों में से रिक्त स्थानों की पूर्ति करना** (Filling the Vacancies with the Present Staff) – उपक्रम में किसी पद के रिक्त होने पर उसकी पूर्ति, जहाँ तक भी सम्भव हो सके, वर्तमान कर्मचारियों में से ही की जानी चाहिये, क्योंकि इससे संस्था के कर्मचारियों का विकास होता है, उन्हें प्रोत्साहन मिलता है तथा उनके मनोबल में वृद्धि होती है, ऐसा करते समय निम्न बातें ध्यान में रखना आवश्यक है –

- रिक्त पदों पर केवल उन्हीं कर्मचारियों की पदोन्नति की जानी चाहिये, जो पर्याप्त योग्यता रखते हैं।
- यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि रिक्त पद के कार्य को अन्य कार्यों के साथ मिलाने से कर्मचारियों के बल पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

- जिस कर्मचारी को रिक्त पद पर नियुक्त किया जायेगा, उसके स्वयं के पद की पूर्ति किस प्रकार से की जायेगी।
- वर्तमान कर्मचारियों की पदोन्नति करते समय इस बात का भी ध्यान रखना आवश्यक है कि क्या उन्हे किसी प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

II. दीर्घकालीन मानव शक्ति नियोजन (Long term Manpower Planning)

यह नियोजन दीर्घकाल के लिये किया जाता है। इसकी अवधि दो वर्ष से अधिक होती है। दीर्घकालीन नियोजन के दो प्रमुख उद्देश्य होते हैं – (i) भविष्य में होने वाले रिक्त पदों की पूर्ति के लिए पहले से ही उपयुक्त पदाधिकारियों की व्यवस्था करना, (ii) भविष्य में संस्था के समस्त पदाधिकारियों एवं उनके कार्यों में पूर्णरूपेण एकरूपता स्थापित करना।

दीर्घकालीन मानव शक्ति नियोजन के आवश्यक तत्व (Neccessary Factors of Long term Manpower Planning)

दीर्घकालीन मानव शक्ति नियोजन के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं –

(1) **भावी मानव शक्ति की आवश्यकताओं का पूर्वानुमान** (Forcasting of Future Manpower Planning) – एक व्यावसायिक उपक्रम का ज्यों–ज्यों विकास और विस्तार होता जाता है उसी प्रकार उनमें मानवीय साधनों की अधिक आवश्यकता पड़ती जाती है। अतः दीर्घकालीन मानव शक्ति नियोजन में सर्वप्रथम इस बात का पूर्वानुमान लगाया जाता है कि भविष्य में कितने तथा किस योग्यता वाले पदाधिकारियों की आवश्यकता होगी।

(2) **भावी पदों के सम्बन्ध में वर्तमान कर्मचारियों की उपयुक्तता** (Suitability of Present Employees of Future Vacancies) – भावी मानव शक्ति को आवश्यकताओं का पूर्वानुमान लगाने के पश्चात् यह देखा जाता है कि वर्तमान कर्मचारियों द्वारा इस आवश्यकता को कहां तक पूरा किया जाना सम्भव है। इसके लिये वर्तमान कर्मचारियों में से उन कर्मचारियों की एक सूची तैयार की जाती है जो भविष्य में अपनी योग्यता बढ़ाकर आवश्यक पदों पर कार्य करने की क्षमता रखते हों यह भी अनुमान लगाया जाता है कि वर्तमान कर्मचारियों को भविष्य की आवश्यकताओं के योग्य बनाने के लिये कितने तथा किस प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ सकती है।

(3) **कर्मचारियों का व्यक्तिगत विकास** (Individual Development of Employees) – भविष्य में सृजित होने वाले पदों की पूर्ति के लिये वर्तमान

कर्मचारियों की योग्यता में वृद्धि करने की आवश्यकता होती है। उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाता है तथा एक विवरण तैयार किया जाता है, जिसमें व्यक्तियों की आधारभूत कमियों को ज्ञात किया जाता है तथा उनको किस प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी, इसका प्रबन्ध किया जाता है। दीर्घकालीन नियोजन से परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक परिवर्तन किये जाने चाहिये ताकि वह बदलती हुई परिस्थितियों में भी संस्था को अपना पूरा योगदान दे सकें। इस प्रकार दीर्घकालीन आयोजन में व्यक्ति के व्यक्तिगत विकास की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिये। मानव शक्ति नियोजन द्वारा ही कर्मचारियों का व्यक्तिगत विकास सम्भव है।

8. कर्मचारियों की भर्ती से आशय

भर्ती करना उस क्रिया को कहते हैं, जिसके द्वारा कार्य करने वाले व्यक्तियों का पता लगाया जाता है, जो किसी उद्योगविषेश में कार्य करने के इच्छुक हों तथा उन्हें इसके लिये प्रोत्साहित भी किया जाता है कि वे कारखानाविषेश में नौकरी के लिये आवेदन–पत्र भेजे। यह कार्य रोजगार विभाग द्वारा किया जाता है। रोजगार विभाग उनके आवेदन पत्रों की जाँच कर ऐसे व्यक्तियों को जाँच के लिये चुनता है, जो कि सन्तोषजनक ढंग से कार्य कर सकें।

किसी भी उपक्रम के सफलतापूर्वक कार्य संचालन के लिये यह आवश्यक है कि उसके कर्मचारियों का चुनाव एवं नियुक्ति उपयुक्त ढंग से हो। अकुशल कर्मचारियों की नियुक्ति या काम के दोषपूर्ण विभाजन से कार्य असन्तोषजनक होता है, कर्मचारी अनुपस्थित रहते हैं, निरीक्षक और कर्मचारियों में आपस में झगड़ा होता है और अन्त में उत्पादन लागत अधिक हो जाती हैं। इस प्रकार की गलती से उपक्रम को आर्थिक एवं मानवीय हानि होती है। अतः कर्मचारियों की भर्ती बहुत ही होशियारी से करनी चाहिये और उन्हें उपयुक्त कार्य दिया जाना चाहिये। एक अमेरिकी उद्योगपति ने ठीक ही कहा है कि, ''**एक व्यवसाय का भविष्य किसी अन्य एक तत्व की अपेक्षा उसमें काम कर रहे व्यक्तियों पर अधिक निर्भर करता है।**'' अतः आधुनिक उद्योग भर्ती की वैज्ञानिक पद्धति की मांग करता है।

सरल शब्दों में, ''**जब कर्मचारी को काम पर लगाया जाता है तो इस काम पर लगाने की क्रिया को भर्ती कहते हैं।**''

9. कर्मचारियों की भर्ती के सम्बन्ध में परिभाषायें

विभिन्न विद्वानों ने भर्ती के सम्बन्ध में अपने विचार निम्नलिखित रूप से व्यक्त किये हैं –

(1) **श्री एडविन बी0 फिलिप्पो** के शब्दों में, ''भर्ती से आशय भावी कर्मचारियों को खोजने एवं उन्हें संगठन में रिक्त स्थानों के लिये आवेदन करने हेतु प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया है।''

10. मानव संसाधन विकास की विचारधारा(Concept of Human Resource Development)

मानव संसाधन विकास एक व्यापक एवं बहु–आयामीय प्रणाली है। इसे अर्थशास्त्रियों, प्रबन्धकों, सामाजिक वैज्ञानिकों, उद्योगपतियों तथा अन्य विद्वानों द्वारा भिन्न–भिन्न दृष्टि से परिभाषित किया गया है।

व्यापक अर्थ में मानव संसाधन विकास किसी समाज में समस्त व्यक्तियों के ज्ञान, रूचि तथा क्षमताओं में वृद्धि करने की एक प्रक्रिया है। **राष्ट्रीय संदर्भ में,** यह विभिन्न क्षेत्रों में कार्यशील व्यक्तियों को आत्म–निर्भर बनाने तथा उनमें गौरव की भावना उत्पन्न करने हेतु **एक नयी योग्यता** (A new competence) उत्पन्न करने की प्रक्रिया है। **आर्थिक दृष्टि से** यह अर्थव्यवस्था के विकास हेतु **मानवीय पूँजी के निर्माण तथा उसके प्रभावी उपयोग** (Accumulation of human capital and its effective utilisation) से सम्बन्धित है। **राजनैतिक दृष्टि से,** यह व्यक्तियों को राजनीतिक प्रक्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए तैयार करने की प्रक्रिया है। **सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से,** यह व्यक्तियों के जीवन को समृद्ध बनाने की पद्धति हैं।

औद्योगिक एवं व्यावसायिक उपक्रमों के संदर्भ में, मानव संसाधन विकास (HRD) का सम्बन्ध निम्न तीन घटकों से हैं :

(i) **व्यक्ति** (People) – यह इसका मानवीय पहलू है। यहाँ व्यक्तियों को कौशल व विकास संभावनाओं से युक्त तथा विकसित होने, प्रगति करने व परिवर्तित होने की क्षमता से परिपूर्ण माना जाता है।

(ii) **संसाधन** (Resource) – यह विचारधारा व्यक्तियों को **'संसाधनों'** व **'अवसरों'** के रूप में स्वीकार करती है, समस्याओं के रूप में नहीं।

(iii) **विकास** (Development) – यह विचारधारा व्यक्तियों की आन्तरिक क्षमताओं व संभावनाओं की खोज करने, विकास करने तथा उन्हें वास्तविक व परिपक्व बनाने पर बल देती ळें

'मानव संसाधन विकास' विचारधारा की प्रकृति एवं लक्षण (The Nature and Characteristics of HRD Concept)

मानव संसाधन विकास की विचारधारा की प्रकृति को ठीक से समझ लेना आवश्यक है। इसके प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं :

1. मानव संसाधन विकास की विचारधारा की प्रकृति **अन्तर्विषयक** (Interdisciplinary) है। इसमें **व्यवहारवादी विज्ञानों** के सिद्धान्तों व अवधारणाओं का प्रयोग किया जाता है।
2. यह **'विकास द्वारा प्रबन्ध'** (Management through development) की अवधारणा है तथा प्रबन्ध के प्रत्येक कार्य का हिस्सा है।
3. यह 'व्यक्तियों के प्रबन्ध' का एक **'प्रणाली दृष्टिकोण'** (Systems Approach) तथा **एकीकृत** विधि है।
4. यह एक **व्यापक अवधारणा** है। इसका प्रयोग प्रत्येक क्षेत्र – आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि में प्रत्येक स्तर – राष्ट्रीय, समाज व संगठनात्मक आदि पर किया जाता है। इस प्रकार यह **बहु आयामीय विचारधारा** है। इसके **व्यापक** (Macro) तथा **सूक्ष्म** (Micro) दोनों ही पहलू हैं।
5. यह एक **मध्यस्थता व्यूहरचना** (Intervention Strategy) है, जिसमें व्यक्तियों को उनकी आन्तरिक क्षमताओं के विकास का अधिकतम अवसर प्रदान किया जाता है।
6. यह **व्यक्तियों के हितार्थ अपनाया गया दृष्टिकोण** (Pro-active Approach) है, उनका सामना करने की कोई व्यूहरचना (Coping Stance) नहीं है।
7. मानव संसाधन विकास कर्मचारियों के लिये **केवल प्रशिक्षण ही नहीं**, वरन सम्पूर्ण संगठन को एक नई ऊर्जा प्रदान करने (Vitalising), अभिप्रेरित करने (Activating) तथा उसे एक नया स्वरूप प्रदान करने (Renewing) की पद्धति है। वस्तुतः यह **संगठन के कार्य करने की प्रणाली है** (It is the way the organisation works)।
8. यह उन विभिन्न प्रणालियों को विकसित करने की अवधारणा है, जिनका सम्बन्ध **व्यक्तियों, उनकी समस्याओं, उनके विकास तथा सम्पूर्ण संगठनात्मक गत्यात्मकता** (Organisational dynamics) से होता है।

9. यह श्रेष्ठ **मानव संसाधन नियोजन** व मूल्यांकन तथा **कार्य समृद्धि** (Job Enrichment) का प्रबन्धीय उत्तरदायित्व है।

10. यह प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों के साथ–साथ मानव कुशाग्रता, अभिवृत्तियों तथा मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों के प्रति **अत्यधिक संवेदनशील** विचारधारा है।

11. यह विचारधारा **कर्मचारियों को 'एक परिवार'** के रूप में देखती है तथा उनके विकास को संगठन का एक प्राथमिक उत्तरदायित्व मानती है।

12. यह प्रत्येक व्यक्ति का **विकास एक 'सम्पूर्ण व्यक्ति'** (As a whole person) के रूप में करती है।

13. यह प्रणालियों तथा तकनीकों की कोई इंजीनियरिंग प्रक्रिया नहीं, वरन् कार्य गुणों को विकसित करने व **सीखने की एक प्रक्रिया** (Learning Process) है।

14. यह मानव विकास की एक **सहकारी व्यवस्था** है। इस विकास प्रक्रिया के प्रमुख एजेन्ट व अंग निम्न होते हैं :

(a) स्वयं कर्मचारी,

(b) कर्मचारी तथा निकटस्थ अधिकारी,

(c) मानव संसाधन विकास (H.R.D.) विभाग, एवं

(d) संगठन।

15. मानव संसाधन विकास **रेखा प्रबन्धक** (Line Manager) **का कार्य** माना जाने लगा है। पहले इसे एकविषेशज्ञ **कार्य** (Staff Function) माना जाता था।

16. कुछ प्रबन्धशास्त्रियों के अनुसार यह एक **उद्यमीय कार्य** (Entrepreneurial Function) है।

17. यह **मानव संसाधन निवेशों** (Inputs) **को सेवाओं** व **परिणामों** (Outputs) में **रूपान्तरित करने की** व्यूह रचना है। (It is a Strategy to transform human resource inputs into putputs)।

18. **संगठन विकास** (OD) तथा **प्रबन्ध विकास** (MD) मानव संसाधन विकास की विधियाँ हैं।

19. यह **मानव संसाधन प्रबन्ध** (HRM) **से भी भिन्न है।** मानव संसाधन विकास (HRD) एक अन्तर्सम्बन्धित (Inter-linked) मानव–हितार्थ (Pro-active) तथा प्रबन्ध के सभी क्रियात्मक क्षेत्रों में प्रयुक्त विचारधारा है। यह उच्च प्रबन्धकों का निरन्तर बना रहने वाला उत्तरदायित्व है। दूसरी ओर, मानव

संसाधन प्रबन्ध (HRM) एक पृथक् व स्वतन्त्र, **प्रतिक्रियाशील** (Reactive) सेविवर्गीय कार्य है जिसका उत्तरदायित्व कार्यालयीन समय तक सीमित होता है।

20. यह एक **विज्ञान एवं कला** है। निश्चित सिद्धान्तों, **यांत्रिकी** (Mechanisms) तथा तकनीकों के समूह के कारण यह विज्ञान तथा एक मानवीय दर्शन एवं कौशल की आवश्यकता के कारण इसे कला माना जाता है।
21. इसकी प्रकृति **गतिशील, प्रगतिशील** (Dynamic) है। यह आधुनिक औद्योगिक जगत में एक **नवीन विचारधारा** है।
22. मानव संसाधन विकास का कार्य **निरन्तर विकसित हो रहा है।** (The HRD function is always evolving)।

मानव संसाधन विकास के उद्देश्य (Objectives of HRD)

1. वैयक्तिक एवं संगठनात्मक लक्ष्यों की पूर्ति के लिये **मानव संसाधनों का अधिकतम उपयोग** करना।
2. व्यक्तियों को उनकी **प्रतिभाओं, आन्तरिक गुणों** व **संभावनाओं की पूर्ण अभिव्यक्ति का अवसर** एवं **व्यापक ढाँचा** प्रदान करना।
3. संगठन में व्यक्तियों की वर्तमान व भावी भूमिकाओं के संदर्भ में उनकी **समर्थकारी क्षमताओं** (Enabling Capabilities) की खोज करना, पहचानना, मान्यता देना तथा उनका विकास करना।
4. कर्मचारियों में एक **रचनात्मक मनःस्थिति** (Constructive Mind) तथा **समग्र व्यक्तित्व** का निर्माण करना।
5. कर्मचारियों में **दलीय भावना, सहयोग** (Team-Work) **तथा अन्तर्दलीय सहकारिता** को विकसित करना।
6. **संगठनात्मक स्वास्थ्य, संस्कृति एवं प्रभावशीलता** का विकास करना।
7. संगठन में **कार्य को मानवीय** बनाना।
8. संगठन में **गतिशील मानवीय सम्बन्धों** का विकास करना।
9. मानव संसाधनों के सम्बन्ध में **व्यवस्थित सूचनाओं** का विकास करना।
10. प्रत्येक कर्मचारी की **एक व्यक्ति के रूप में क्षमताओं का विकास** करना।
11. वैयक्तिक एवं संगठात्मक **अप्रचलन** (Obsolescence) को रोकना तथा व्यावसायिक कौशल व ज्ञान की **अपूर्णताओं को दूर करना।**

12. नये सांस्कृतिक लक्षणों के साथ **व्यक्ति को सम्पूर्ण** बनाना (Making a total man with new cultural attributes)।
13. सामाजिक–प्रौद्योगिकीय वातावरण में होने वाले **परिवर्तनों के साथ समायोजन** करना।
14. व्यक्तियों में एक **नये दृष्टिकोण, किस्म उत्कृष्टता** (Quality Excellence) की भावना तथा उपलब्धि की आकांक्षा जागृत करना।
15. मानव शक्ति में **श्रेष्ठ केरियर निर्माण की इच्छा** उत्पन्न करना।
16. कर्मचारियों की **उत्पादकता** तथा उपक्रम की **लाभदायकता में वृद्धि** करना।

मानव संसाधन विकास की आवश्यकता एवं महत्व

मानव की क्षमता अनन्त है जिसका उपयोग उपक्रमों में कुशलतापूर्वक किया जा सकता है। तेजी से बदल रहे आर्थिक–सामाजिक वातावरण के प्रभावों से आज कोई भी संगठन बच नहीं सकता है। अपनी सफलता के लिये संगठन को स्वयं वातावरण के साथ गतिशील होकर चलना होता है। मानव संसाधन विकास की विचारधारा इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। व्यक्तियों की कार्यक्षमताओं, योग्यताओं व कार्यकौशल से ही देश व समाज का भविष्य निर्धारित होता है। **श्री राजीव गांधी** के शब्दों में, ''**किसी भी राष्ट्र की वास्तविक ताकत उसके व्यक्तियों के मस्तिष्क एवं शरीर के विकास में निहित होती है।**''

मानव संसाधन विकास की व्यूहरचना अथवा क्रियाविधि

(Strategy or Preocess of Human Resource Development)

अथवा

मानव संसाधन विकास की अवस्थायें अथवा सुदृढ़ीकरण

(Phases of or Strengthening the HRD)

मानव संसाधन विकास एक प्रणाली है। यह एक एकीकृत पद्धति है। अतः इसकी व्यूहरचना को समझना आवश्यक है। इसकी प्रक्रिया के विभिन्न चरणों अथवा विकास की विभिन्न अवस्थाओं का उल्लेख निम्न शीर्षकों में किया गया है :

1. **मानव संसाधन विकास दर्शन अथवा नीति की स्वीकृति** (Acceptance of HRD Philosophy and Policy)

मानव संसाधन विकास की प्रणाली की सफलता बहुत कुछ सीमा तक उच्च प्रबन्ध द्वारा इसके दर्शन एवं नीति मान्यता देने पर निर्भर करती है। मानव संसाधन विकास कार्यक्रम को जब तक उच्च प्रबन्धकों द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता है, यह

व्यवहारिक एवं अर्थपूर्ण कार्यक्रम नहीं बन सकता है। उच्च प्रबन्धकों द्वारा स्वीकृति इन कारणों से आवश्यक होती है – (i) उच्च प्रबन्ध ही कर्मचारियों को विकास एवं अनुकूलतम उपयोग के लिये उचित अवसर, परिवेश एवं दशाएं प्रदान करता है, (ii) उच्च प्रबन्ध ही मानव संसाधन पूंजी में अधिकतम विनियोग कर सकता है, तथा (iii) उच्च प्रबन्ध ही कर्मचारियों के लिये प्रेरणा का एक बड़ा स्रोत होता है।

2. **मानव संसाधन विकास लक्ष्यों का निर्धारण** (Determination of HRD Objectives)

मानव संसाधन विकास के दर्शन को स्वीकार करने के बाद, उच्च प्रबन्धक इसके प्रमुख लक्ष्यों का निर्धारण करते हैं। लक्ष्य वे परिणाम होते हैं। जिन्हें एक निश्चित कार्यावधि में प्राप्त किये जाने का प्रयास किया जाता है। ये लक्ष्य निम्न से सम्बन्धित हो सकते हैं :

(a) मानव संसाधनों का वांछित ज्ञान एवं कौशल के साथ तथा उचित मात्रा में विकास करना।

(b) वृहत् उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिये कर्मचारियों को उनकी अन्तःक्षमता का विकास करने के लिये प्रोत्साहित करना।

(c) समस्त स्तरों पर कर्मचारियों के निष्पादन में सुधार करना।

(d) कर्मचारियों के निष्पादन को सदैव बनाये रखना।

3. **मानव संसाधन विकास को प्रभावित करने वाले घटकों का निर्धारण** (Determination of Factors Affectiveg HRD)

मानव संसाधन विकास की व्यूहरचना तैयार करते समय इसे प्रभावित करने वाले अनेक घटकों पर विचार करना होता है। ये घटक संगठनात्मक, वातावरणीय, सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा प्रौद्योगिकीय हो सकते हैं। यद्यपि इस प्रणाली पर कई घटकों, जैसे – जाति, शिक्षा, सामाजिक मूल्य, प्रथाओं, मान्यताओं आदि का प्रभाव पड़ता है, किन्तु संगठनात्मक घटकों काविषेश प्रभाव पड़ता है, जिन्हें **परेरा तथा राव** (Periera and Rao) ने 'OCTAPAC' शब्द में अभिव्यक्त किया है। इनका वर्णन निम्न प्रकार है :

(i) **खुलापन** (Openness) – जहाँ कर्मचारी अपने विचारों, क्रियाओं व भावनाओं को प्रकट करने तथा उन पर खुली बहस करने के लिये स्वतंत्र होते हैं।

(ii) **मिलान** (Confrontation) – समाधान के लिये अपनी समस्याओं को विचारविमर्श के लिये प्रकट करना, बजाय दबाने के।

(iii) **विश्वास** (Trust) – कथन पर विश्वास या भरोसा रखना।

(iv) **स्वतन्त्रता** (Autonomy) – स्वतंत्र रूप से तथा उत्तरदायित्व के साथ कार्य करने की स्वतन्त्रता देना।

(v) **उत्पादकता** (Productivity) – जोखिम व पहलपन के लिये कर्मचारियों को प्रोत्साहित करना।

(vi) **प्रामाणिकता** (Authentiity) – अपने कथन के अनुसार आचरण करना।

(vii) **सहयोग** (Collaboration) – एक–दूसरे की सहायता के लिये अन्तर्निर्भरता को स्वीकार करना तथा कार्यदलों के रूप में कार्य करना।

उपर्युक्त सभी संगठनात्मक घटक मानव संसाधन विकास की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। इसी प्रकार अन्य घटक भी निर्धारित किये जा सकते हैं।

4. मानव संसाधन विकास आवश्यकताओं का निर्धारण (Identification of HRD Needs)

इस चरण में कई संगठनात्मक लक्ष्यों, जैसे – समस्या निराकरण लक्ष्य, नवप्रवर्तन लक्ष्य, समूह लक्ष्य, वैयक्तिक विकास लक्ष्य, नियमित प्रशिक्षण लक्ष्य आदि का विश्लेषण करते हुए मानव संसाधन विकास की आवश्यकताओं का निर्धारण किया जाता है। इन आवश्यकताओं का निर्धारण, निष्पादन मूल्यांकन, अधिकारों की सिफारिशों, कार्य आवश्यकताओं के विश्लेषण, उच्च प्रबन्धकों के सुझाव, सहकर्मियों के सुझाव, प्रशिक्षण आवश्यकताओं आदि के द्वारा भी किया जा सकता है। ये विकास आवश्यकताएं अल्पकालीन या दीर्घकालीन हो सकती हैं।

5. मानव संसाधन नियोजन (Human Resource Planning)

मानव संसाधन नियोजन कर्मचारी विकास का एक महत्वपूर्ण चरण है। इसमें प्रबन्धक संगठन की भावी प्रगति एवं विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तनों पर विचार करते हुये मानव संसाधनों की भावी आवश्यकताओं, योग्यताओं व इनके प्रकार का निर्धारण करता है। मानव संसाधन नियोजन की प्रक्रिया के मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं :

(i) मानव संसाधन सूची (Human Resource Inventory)

(ii) मानव संसाधन पूर्वानुमान (Human Resource Forecasting)

(iii) विकास योजनाओं का क्रियान्वयन (Execution)

इन तत्वों के आधार पर कम्पनी के लिये दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन मानव संसाधन योजना तैयार की जाती है।

6. विकासात्मक कार्यक्रम (Developmental Programmmes)

यह चरण मानव संसाधन विकास (HRD) के सम्बन्ध में विभिन्न विकासात्मक कार्यक्रमों, उप–प्रणालियों अथवा विकास **विधियों** (Approaches) के चयन से सम्बन्धित है। इसमें प्रबन्धकों द्वारा मानव संसाधन विकास रचनातंत्र का निर्धारण किया जाता है। इसका चयन एवं निर्धारण एक एकीकृत प्रणाली के रूप में किया जाना चाहिये। इस सम्बन्ध में यह माना जाता है कि 85 प्रतिशत विकास कर्मचारी के कार्य के दौरान हुए अनुभव (On the job experience) के फलस्वरूप होता है। कम्पनी के बाहर मिले औपचारिक प्रशिक्षण तथा विकासात्मक कार्यक्रमों के फलस्वरूप कर्मचारी का केवल 15 प्रतिशत विकास प्रभावित होता है। इस प्रकार कर्मचारी के विकास में उसकी कार्य शैली, कार्य के लिये उसे मिली स्वतन्त्रता, उसके अधिकारी का कार्य ढंग तथा उसका अधीनस्थों पर प्रभाव आदि घटकों का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

7. **मानव संसाधन परिवेश का निर्माण** (Development of HRD Climate)

मानव संसाधनों के विकास के लिये एक उचित परिवेश व संस्कृति का निर्माण करना आवश्यक होता है। इसके लिये प्रबन्ध को संगठन के वातावरण का मूल्यांकन करना चाहिये। यह मूल्यांकन **वातावरण सर्वेक्षण** (Climate Surveys) के द्वारा किया जा सकता है। इसमें उन घटकों का निर्धारण किया जा सकता है जो मानव संसाधन विकास कार्यक्रमों पर गहन प्रभाव डालते हैं।

8. **संरचनात्मक सुविधाओं का निर्माण** (Build Up on Infrastructure Facility)

प्रबन्ध को मानव संसाधन विकास के संरचनात्मक पहलू पर भी विचार करना चाहिये। इसके लिये आन्तरिक व बाह्यविषेशज्ञों के दलों, **प्रशिक्षण अधिकारी (Training Personnel),** बजट प्रावधान, नयी टेक्नालॉजी, सहायक उपकरणों आदि का निर्धारण किया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त, यह चरण परम्परागत प्रवृत्तियों, मूल्यों, मानदंडों, धारणाओं के रूपान्तरण पर भी जोर देता है। मानव संसाधन विकास केन्द्रों का भी प्रभावी निर्धारण किया जाना चाहिये।

9. **दीर्घकालीन परिणामों पर बल** (Emphasis on Long Term Results)

प्रबन्ध का मानव संसाधन विकास के प्रत्याशित परिणामों की स्पष्ट समझ होनी चाहिये तथा उन्हें संगठन के लक्ष्यों से जुड़ी दीर्घकालीन व्यूहरचना पर बल देना चाहिये। मानव संसाधन विकास निर्णय पूर्ण निष्ठा व तथ्यों पर आधारित होना चाहिये, आशाओं पर नहीं। प्रबन्धकों को संगठन में हो रहे समस्त परिवर्तनों से अवगत रहना चाहिये तथा इनका पता प्रारम्भ में ही लगा लेना चाहिये।

10. **विकास प्रयासों के प्रभावों का मूल्यांकन** (Evaluation of Impact of Development Efforts)

प्रबन्ध को एक **'आन्तरिक अनुश्रवण तंत्र'** (Internal Monitoring Mechanism) के द्वारा विकासात्मक प्रयासों के अनुकूल व प्रतिकूल प्रभावों का मूल्यांकन करना चाहिये। मानव संसाधन विकास की प्रगति की समीक्षा की जानी चाहिये। यह समीक्षा तथा मूल्यांकनविषेशज्ञों द्वारा सभाओं एवं कार्यशालाओं के माध्यम से किया जा सकता है :

(a) **समालोचना या अनुमोदन स्तर** (Appreciation or Endorsement Level) – क्या कर्मचारियों ने मानव संसाधन विकास कार्यक्रमों तथा इनकी विषय सामग्री को पसन्द किया?

(b) **ज्ञान प्राप्ति स्तर** (Learning Level) – क्या इन कार्यक्रमों से उन्होंने कुछ सीखा?

(c) **उत्पादकता या परिणाम स्तर** (Productivity or Result Level) – क्या मानव संसाधन विकास कार्यक्रमों से वांछित व लाभप्रद परिणाम प्राप्त हुये? अर्थात् क्या इनसे लागत में कमी तथा उत्पादकता में वृद्धि हुई?

11. **अनुवर्तन** (Follow Up)

मानव संसाधनों के विकास कार्यक्रमों के परिणामों के आधार पर उचित सुधारात्मक कार्यवाही की जानी चाहिये। कार्यक्रम के दोषों को दूर करने, उनमें नये सुधार करने, नये ज्ञान का उपयोग करने, संरचना, साधनों व लक्ष्यों मेंआवश्यक होने पर परिवर्तन व समायोजन करने की कार्यवाही की जानी चाहिये।

मानव संसाधन विकास प्रबन्धक के कार्य/उत्तरदायित्व एवं कौशल (Function/Responsibilities and Skills of H.R.D. Manager)

वर्तमान उद्योगों में मानव संसाधन कार्य को उच्च प्राथमिकता दी जा रही है। इसके लिये पृथक् **मानव संसाधन विभाग (H.R.D. Department)** की स्थापना की जाती है जिसका अध्यक्ष मानव संसाधन विकास प्रबन्धक होता है। वह **मुख्य प्रबन्ध (Chief Executive)** का मानव संसाधन परामर्शदाता होता है। यह मानव संसाधन विकास की विभिन्न योजनाओं का निर्माण, क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन करता है। उसके प्रमुख उत्तरदायित्व एवं कार्य (भूमिका) अग्रलिखित हैं –

1. उपक्रम में मानव संसाधन विकास दर्शन का निर्माण करना तथा इसके प्रति उच्च प्रबन्ध का समर्थन व प्रतिबद्धता प्राप्त करना।
2. संगठन की व्यूहरचना के अनुसार विशिष्ट मानव संसाधन विकास व्यूहरचना तैयार करना।

3. मानव संसाधन विकास कार्यक्रम (H.R.D. Programmes) तैयार करना, उन्हें लागू करना तथा उनके क्रियान्वयन एवं प्रगति की समीक्षा करना।
4. मानव संसाधन विकास प्रणाली के लिये संरचनात्मक सुविधाओं व बजट आदि की व्यवस्था करना।
5. मानव संसाधन विकास कर्मचारियों वविषेशज्ञों के लिये निरन्तर पेशेवर प्रगति की व्यवस्था करना।
6. मानव संसाधन विकास निर्णयों के लिये 'सूचना प्रणाली' एवं समंक बैंक की व्यवस्था करना।
7. मानव संसाधन विकास कार्यक्रमों, जैसे प्रशिक्षण, अन्तःक्षमता एवं निष्पादन मूल्यांकन, पदोन्नति, पुरस्कार प्रणाली, कार्य संस्कृति का विकास आदि का प्रबन्ध करना।
8. विकास वातावरण, कार्यक्रमों तथा सुविधाओं की समीक्षा करना।

मानव संसाधन विकास प्रबन्धक के गुण (Qualities of a H.R.D. Manager)

उपर्युक्त सभी कार्यों को करने के लिये मानव संसाधन विकास प्रबन्धक में कुछ विशेष योग्यताएँ, गुणों और कौशल का होना आवश्यक होता है। उदय पारीक एवं टी. वी. राव के अनुसार ये गुण निम्नलिखित हैं :

(A) **तकनीकी गुण** (Technical Qualities)

1. मानव संसाधन विकास टेक्नालॉजी का ज्ञान
2. मानव संसाधन (H.R.M.) का सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक ज्ञान तथा नये अनुसंधानों का परिचय।
3. सम्बन्धित उद्योग का व्यवहारिक अनुभव।
4. मानव मनोविज्ञान (Human Psychology) का ज्ञान।
5. व्यवहारवादी विज्ञानों तथा कौशल निर्माण का ज्ञान।
6. समग्र संगठनात्मक संस्कृति (Organisational Culture) की समझ।
7. नवीन उपकरणों, कम्प्यूटरों की सूचना प्रणाली में उपयोग की समझ।

(B) **प्रबन्धकीय गुण** (Managerial Qualities)

1. मानव संसाधन विकास नियोजन का ज्ञान।
2. लक्ष्य निर्धारण, नीति निर्माण व निर्णयन की कला की समझ।
3. योग्यता निर्धारण, संगठित कार्य का निर्धारण, प्रतिपुष्टि सूचना, सूचना व समंकों की समीक्षा आदि का ज्ञान।
4. संगठनात्मक कौशल।
5. प्रेरणात्मक नेतृत्व एवं मार्गदर्शन की क्षमता।

6. अन्य विभागों के साथ समन्वय की योग्यता।
7. व्यूहरचना की समझ।

(C) **व्यक्तिगत सम्बन्धी गुण** (Personality Qualities)

1. पहलपन (Initiative)।
2. मनुष्यों तथा उनकी क्षमताओं पर विश्वास।
3. दूसरों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति।
4. कल्पना व परिकल्पना शक्ति तथा सृजनात्मकता।
5. उत्कृष्टता पर बल (Concern for Excellence)।
6. व्यक्तियों तथा उनके विकास में उत्सुकता।
7. मित्रवत् व्यवहार, सामाजिक प्रकृति, मिलनसारिता, भद्रता।
8. अनुसंधान तथा विकास कार्यों में अभिरूचि।
9. नयी चीजों को सीखने की उत्सुकता एवं प्रयास।
10. कार्य दल के सदस्य के रूप में कार्य करने की योग्यता।
11. मानवीय सम्बन्धों में रूचि।

मानव संसाधन विकास प्रणाली के सिद्धान्त (Principles in Designing H.R.D. Systems)

भिन्न–भिन्न संगठनों के लिये मानव संसाधन विकास की भिन्न–भिन्न प्रणाली अपनायी गई हैं। इस प्रणाली में संगठन के अनुसार विशिष्ट अंग, उनके सम्बन्ध, उनकी प्रक्रियाएँ, अवस्थाएँ (Phases) अलग–अलग हो सकती हैं, किन्तु उनके आधारभूत सिद्धान्तों में कोई अन्तर नहीं होता है। मानव संसाधन विकास (HRD) की प्रणाली को निर्मित करने के लिये उसके सिद्धान्तों का सही ज्ञान होना आवश्यक होता है। ये सिद्धान्त इसके संकेन्द्रण (Focus), संरचना एवं कार्यावयन से सम्बन्धित हैं। मुख्य सिद्धान्त निम्न प्रकार हैं :

1. **'समर्थकारी क्षमताओं' पर बल** (Focus on Enabling Capabilities) – मानव संसाधन विकास प्रणाली का मुख्य जोर व्यक्तियों तथा संगठन में 'समर्थकारी क्षमताओं' का विकास करना होना चाहिये। इस प्रणाली का लक्ष्य मानवीय संसाधनों, संगठनात्मक स्वास्थ्य, समस्या निराकरण क्षमता तथा निदान योग्यता (Diagnostic Ability) को विकसित करना होना चाहिये। इसका जोर कर्मचारी उत्पादकता तथा निष्ठा में वृद्धि करने पर भी होना चाहिये।

2. **अनुकूलन एवं परिवर्तन में संतुलन** (Balancing] Adaptation and Change) – यद्यपि मानव संसाधन विकास प्रणाली का निर्माण 'संगठनात्मक संस्कृति' के साथ अनुकूलन करना है, किनतु कुछ सीमा तक यह इस संस्कृति में सुधार एवं परिवर्तन लाने पर भी जोर देती है ताकि प्रभावशीलता में वृद्धि की जा सके। हालांकि, मानव संसाधन विकास प्रणाली को संगठन संस्कृति के 'अनुकूलन बनाने' (Adaptation) अथवा संगठन संस्कृति में 'परिवर्तन लाने' (Change) के बीच विवाद हमेशा चलता रहा है, किन्तु ये दोनों ही स्थितियां अति वाली हैं। अतः एक उचित संतुलन बनाये रखने पर बल दिया जाना चाहिये।

3. **वातावरणीय घटकों पर विचार** (Attention to Contesxtual Factors) – मानव संसाधन विकास प्रणाली के अंग क्या हों तथा उनका विभाजन कैसे किया जाये आदि बातों पर निर्णय लेने से पूर्व संगठन के कई वातावरणीय घटकों, जैसे – इसकी संस्कृति, प्रथायें, आकार, टेक्नालॉजी, योग्यताओं का स्तर, उपलब्ध साधन, बाह्य सहायता की उपलब्धि आदि पर विचार किया जाना चाहिये।

4. **दूसरे कार्यों के साथ सम्बन्ध बनाना** (Building Linkages with other Functions) – मानव संसाधन विकास प्रणाली का उद्‌देश्य संगठन में दूसरे कार्यों जैसे – दीर्घकालीन निगमीय नियोजन, बजटिंग एवं वित्त, विपणन, उत्पादन आदि को भी सुदृढ़ बनाना होना चाहिये। इसका अन्य कार्यें के साथ सम–सम्बन्ध होना चाहिये।

5. **प्रणाली के 'विशिष्टीकरण' एवं 'फैलाव' में संतुलन** (Balancing Specialisation and Diffusion of the Function) – यद्यपि मानव संसाधन विकास प्रणाली एक विशिष्टीकृत कार्य है, किन्तु इसके विभिन्न पहलुओं में रेखीय प्रबन्धकों (Line Managers) को भी सम्मिलित किया जाना चाहिये। इस प्रणाली की भूमिका का विस्तार होना चाहिये तथा 'विचार' (Thought) एवं 'कार्यवाही' (Action) दोनों का संतुलन होना चाहिये।

6. **'विशिष्ट पहचान' बनाना** (Establishing the Distinct Indetity) – मानव संसाधन विकास प्रणाली में एक विशिष्ट पहचान बनायी जानी चाहिये। इसके लिये पृथक् विभाग की स्थापना की जानी चाहिये तथा यह कार्य

किसी प्रबन्धक का एक मात्र उत्तरदायित्व (Exclusive Responsibility) होना चाहिये, उसे अन्य कार्यों के लिये दायी नहीं बनाया जाना चाहिये। मानव संसाधन विकास प्रबन्धक (HRD Manager) सीधा मुख्य प्रबन्धक (Chief Manager) के प्रति उत्तरदायी होना चाहिये।

7. **विश्वसनीयता एवं प्रतिष्ठा** (Credibility and Respectability) – आज भी कई कम्पनियों में 'सेविवर्गीय कार्य' को प्रमुख कार्य नहीं माना जाता है। अतः मानव संसाधन विकास को एक महत्वपूर्ण कार्य मानकर प्रबन्ध के उच्च स्तर पर एक पृथक् विभाग बनाया जाना चाहिये तथा इसका संचालन किसी वरिष्ठ प्रबन्धक द्वारा किया जाना चाहिये।

8. **'विभेदीकरण' एवं 'एकीकरण' में संतुलन** (Balancing Differentiation and Integration) – प्रायः मानव संसाधन विकास के अंतर्गत सेविवर्गीय प्रबन्ध, मानव संसाधन प्रबन्ध एवं प्रशिक्षण तथा औद्योगिक सम्बन्धों को सम्मिलित कर लिया जाता है। मानव संसाधन विकास विभाग के अंतर्गत इन तीनों कार्यों की स्पष्ट पहचान बनी रहनी चाहिये। ये उप–विभाग के रूप में रहने चाहिये। इनके लिये पृथक्–पृथक् प्रबन्धक उत्तरदायी होने चाहिये। किन्तु साथ ही साथ, इन तीनों में विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा एकीकरण भी स्थापित किया जाना चाहिये। उदाहरण, के लिये, मानव शक्ति नियोजन की सूचनाएँ एवं तथ्य केरियर नियोजन कार्य के लिये उपलब्ध रहने चाहिये, भर्ती अनुभाग के तथ्य एवं समंक मानव संसाधन सूचना प्रणाली में प्रयुक्त किये जाने चाहिये तथा मजदूरी एवं वेतन प्रशासन के लिये निष्पादन मूल्यांकन के परिणाम प्रयुक्त किये जाने चाहिये। इस प्रकार मानव संसाधन विकास विभाग के सभी कार्यों में पृथक्करण के साथ–साथ एकीकरण भी होना चाहिये।

9. **सम्पर्क तंत्र का निर्माण** (Establishing Linkage Mechanisms) – मानव संसाधन विकास प्रणाली का बाह्य प्रणालियों के साथ तथा अपनी आन्तरिक उप–प्रणालियों के बीच एक सम्पर्क एवं सह–सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिये। इन विभिन्न उप–प्रणालियों को किसी रचना तंत्र द्वारा सम्बद्ध किया जाता है। यह सह–सम्बन्ध **स्थायी समितियों** (Standing Committees), **कार्य समूहों** (Task Groups) तथा विशिष्ट कार्यों के लिये निर्मित अस्थायी समितियों (Ad hoc Committees) द्वारा स्थापित किया जाता है।

10. **प्रगति मूल्यांकन तंत्र का निर्माण** (Developing Monitoring Mechanisms) – मानव संसाधन विकास का कार्य निरन्तर विकसित हो रहा है (Always Evolving), अतः इसकी प्रणाली की प्रभावशीलता तथा प्रगति की समीक्षा करने के लिये एक व्यवस्थित 'मूल्यांकन–तन्त्र' की स्थापना की जानी चाहिये। इसके लिये वार्षिक समीक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये। इस प्रणाली के मूल्यांकन में दूसरे विभागों (कार्यों) के व्यक्तियों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिये।

11. **'प्रतिपुष्टि' तथा 'संबलन' तंत्र की स्थापना** (Building Feedback and Reinforcement Mechanisms) – मानव संसाधन विकास प्रणाली की विभिन्न उप–प्रणालियों को एक दूसरे को विभिन्न सूचनाएँ, तथ्य, आंकड़े आदि प्रदान करके प्रतिपुष्टि करनी चाहिये। इसके लिये व्यवस्थित **प्रतिपुष्टि प्रक्रिया** (Feedback Loops) अपनायी जानी चाहिये। उदाहरण के लिये, निष्पादन एवं अन्तः क्षमता मूल्यांकन के द्वारा प्रशिक्षण एवं संगठन विकास (OD) के लिये आवश्यक सूचनायें उपलब्ध करायी जानी चाहिये तथा संगठन विकास कार्यक्रमों द्वारा **'कार्य पुनर्रचना'** (Work Redesign) के लिये आधारभूत सूचनाएँ दी जानी चाहिये।

12. **संख्यात्मक एवं गुणात्मक निर्णयों में संतुलन** (Balancing Quantitative and Qualitative Decisions) – मानव संसाधन विकास प्रणाली के कई पहलुओं, जैसे निष्पादन एवं अन्तः क्षमता मूल्यांकन को संख्यात्मक रूप प्रदान करना कठिन होता है। किन्तु जहां तक संभव हो इस प्रणाली के विभिन्न घटकों को समान रूप से संख्यात्मक एवं गुणात्मक स्वरूप प्रदान किया जाना चाहिये। कई मामलों में गुणात्मक एवं **अन्तर्दृष्टिपूर्ण निर्णय** (Insightful Decisions) भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। उदाहरण के लिये, व्यक्तियों को पदोन्नत करने के पूर्व **तथ्यात्मक** (Quantitative) तथा **गुणात्मक** (Qualitative) आधारों पर समान रूप से विचार किया जाना चाहिये। इस प्रकार यॉँत्रिक (Mechanical) तथा मानवीय (Human) घटकों में एक उचित संतुलन रखा जाना चाहिये।

13. **आन्तरिक एवं बाह्यविषेशज्ञता में संतुलन** (Balancing Internal and External Expertise) – मानव संसाधन विकास प्रणाली की कई उप–प्रणालियों को निर्मित करने में अधिकांशतः आन्तरिकविशषज्ञों की सेवाओं

तथा आन्तरिक संसाधनों की आवश्यकता होती है। आन्तरिकविषेशज्ञता (Expertise) की आवश्यकता उप–प्रणालियों की डिजाइनिंग के लिये होती है। किन्तु कभी–कभी बाह्यविषेशज्ञों की सेवाओं का भी उपयोग किया जाना चाहिये। उदाहरण के लिये, सामान्य प्रशिक्षण अथवा दैनिक क्रियाविधियों का प्रशिक्षण आन्तरिकविषेशज्ञों द्वारा किया जा सकता है, जबकि नवीन तकनीकों, परिवर्तित प्रणालियों का ज्ञान करवाने के लिये बाह्यविषेशज्ञों की सेवाएँ ली जा सकती हैं।

14. **मानव संसाधन विकास प्रणाली का नियोजन** (Planning for the Evolution of the HRD) – एक संगठन में मानव संसाधन विकास प्रणाली के विभिन्न पहलुओं को विभिन्न चरणों में लागू किया जाना चाहिये। यह प्रणाली की आवश्यकता, आकार तथा जटिलता पर निर्भर करेगा। प्रत्येक चरण की उचित योजना बनायी जानी चाहिये। इस सम्बन्ध में निम्न तीन सिद्धान्तों का पालन किया जाना चाहिये :

- **भौगोलिक अवस्था** (Geographical Phasing) – प्रारम्भ में प्रणाली को संगठन के कुछ ही भागों में लागू किया जाना चाहिये तथा धीरे–धीरे इसे अन्य भागों में भी लागू किया जाना चाहिये।
- **लम्बवत् अवस्था** (Vertical Phasing) – मानव संसाधन विकास प्रणाली को पहले संगठनों के कुछ ही स्तरों या एक स्तर पर लागू किया जाना चाहिये तथा फिर धीरे–धीरे दूसरे स्तरों पर भी फैलाया जाना चाहिये।
- **क्रियात्मक अवस्था** (Functional Phasing) – प्रारम्भ में इस प्रणाली के कुछ ही अंगों (Components) अथवा कार्यों को लागू करना चाहिये, फिर धीरे–धीरे अन्य कार्यों को भी लागू किया जा सकता है। उदाहरण के लिये, सम्पूर्ण **'अन्तः क्षमता मूल्यांकन प्रणाली'** को लागू करने के पहले **'कार्य विशिष्टीकरण'** (Job Specification) (अर्थात् कार्य के विशिष्ट लक्षणों का निर्धारण) को लागू किया जा सकता है।
- **जटिलता अवस्था** (Sophistication Phasing) – पहले उप–प्रणालियों के सरलतम हिस्से या रूप लागू किये जाने चाहिये। बाद में धीरे–धीरे जटिल व विशिष्टीकृत हिस्सों को लागू किया जा सकता है।

मानव संसाधन विकास प्रणाली की विधियाँ/दृष्टिकोण (Approaches to HRD System)

संगठन व समाज की आवश्यकताओं के अनुसार मानव संसाधन विकास की भिन्न–भिन्न विधियाँ (अभिगम या पहुँच–मार्ग) प्रयुक्त की जाती हैं। **शारू रॉंगनेकर** (Sharu Rangnekar) ने मानव संसाधन विकास के सम्बन्ध में प्रयुक्त निम्न विधियों (दृष्टिकोण) का वर्णन किया है :

1. **मधुमक्खी दृष्टिकोण** (Queen Bee Approach) – इसमें किसी मुख्य व्यक्ति (Chieftain or King-pin Person) के विकास के लिये समस्त उपलब्ध साधनों का उपयोग किया जाता है।
2. **ब्रह्मनिक दृष्टिकोण** (Brahmanic Approach) – इसमें प्राथमिक रूप से किसी विशिष्ट उत्कृष्ट समूह (Elite) या विभाग के विकास के लिये ही संगठन के समस्त साधनों का प्रयोग किया जाता है।
3. **निवेश दृष्टिकोण** (Inputs Approach) – यह दृष्टिकोण मानव संसाधन विकास को यांत्रिक रूप से निवेश (Inputs) एवं परिणामों (Outputs) का एक गणितीय समीकरण मानता है। यह एक यांत्रिक दृष्टिकोण है।
4. **स्वचालन दृष्टिकोण** (Automation Approach) – यह दृष्टिकोण मानता है कि मानव संसाधन विकास प्रयासों के द्वारा व्यक्तियों में कम्प्यूटर्स तथा आधुनिक टेक्नालॉजी के साथ कार्य करने की योग्यता विकसित हो जाती है।
5. **प्रदर्शन दृष्टिकोण** (Gimmickery Approach) – इसमें यह माना जाता है कि मानव संसाधन विकास प्रणाली की सफलता नारों, प्रदर्शन, प्रचार, **दिखावटी कार्यक्रमों** (Pseudo-Programmes) पर निर्भर करती है।
6. **अभिप्रेरणात्मक दृष्टिकोण** (Motications Approach) – इसमें मानव संसाधन विकास को अधिक उत्पादकता तथा कार्यकुशलता के लिये एक 'अभिप्रेरणा' के रूप में देखा जाता है।
7. **सृजनात्मक दृष्टिकोण** (Creative Approach) – इसमें मानव संसाधन विकास के सृजनात्मक एवं नवप्रवर्तनता पहलुओं पर ही अधिक बल दिया जाता है।

मानव संसाधन विकास प्रणाली की समस्यायें, बाधायें एवं चुनौतियाँ (Problems, Barriers and Challengers in HRD System)

मानव संसाधन विकास कार्यक्रमों के निर्माण एवं क्रियान्वयन में कई बाधायें भी आती हैं। इन कार्यक्रमों की कुछ सीमायें, समस्यायें एवं चुनौतियाँ भी हैं।

ये निम्नलिखित हैं:

1. संगठनात्मक लक्ष्यों के बारे में अल्पकालीन दृष्टि (Myopic Vision) एवं भ्रान्त धारणायें।
2. मानव संसाधन विकास कार्यक्रमों के प्रति उच्च प्रबन्धकों में सही अभिवृत्तियों का अभाव।
3. इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिये पर्याप्त संसाधनों का अभाव।
4. मानव संसाधन की माँग एवं पूर्ति में बाजार–जन्य अनियमितता।
5. मानव संसाधन विकास कार्यक्रमों से श्रमिकों, कर्मचारियों तथा प्रबन्धकों की अव्यवहारिक आशायें।
6. कर्मचारी वर्ग से उपयुक्त प्रतिक्रिया का अभाव।
7. कर्मचारियों द्वारा स्वयं का अधि–मूल्यांकन (Over-Assessment)।
8. दोषपूर्ण मूल्यांकन एवं सूचना प्रणाली।
9. वेतन एवं मजदूरी व्यवस्था में पक्षपातपूर्ण व्यवहार।
10. 'कर्मचारी प्रशिक्षण' को ही मानव संसाधन विकास प्रणाली मानने की भूल।
11. मानव संसाधन विकास प्रणाली की विभिन्न उप–प्रणालियों में एकीकरण व सामंजस्य का अभाव।
12. मानव संसाधन विकास प्रणाली के क्रियाान्वयन एवं प्रबन्ध व्यवस्था की लागत।

कर्मचारी परामर्श का आशय एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Employee Counselling)

प्रत्येक उपक्रम में कार्यरत कर्मचारियों की अनेक समस्यायें होती हैं जो उपक्रम के संगठन, कार्य दशाओं, व्यावसायिक मार्ग–दर्शन एवं तकनीकी पहलुओं आदि से सम्बन्धित होती हैं। लेकिन कुछ समस्यायें इस प्रकार की भी होती हैं जो भावनात्मक प्रकृति (Emotional Nature) की होती है।, जिनका समाधान परामर्श विधि (Counselling Method) के माध्यम से किया जा सकता है। इसे ही कर्मचारी परामर्श के नाम से जाना जाता है। कर्मचारी परामर्श को कर्मचारी मन्त्रणा भी कहते हैं।

कीथ डेविस के शब्दों में, ''भावात्मक समस्या पर कर्मचारी के साथ, उसे कम करने के उद्देश्य से, किये गये वार्तालाप को परामर्श के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''

संक्षेप में, ''कर्मचारी परामर्श से आशय उपक्रम के कर्मचारियों की भावनात्मक समस्याओं के तनाव को कम करने के उद्देश्य से उनके साथ किये गये वार्तालाप से है।''

कर्मचारी परामर्श व्यवस्था प्रबन्धकों एवं पर्यवेक्षकों को कर्मचारी दृष्टिकोणों, विचारों, अभिवृत्तियों आदि को समझाने का अवसर प्रदान करने हेतु मार्गदर्शन का अवसर उपलब्ध होता है। परामर्श व्यवस्था स्वस्थ, शक्तिशाली एवं सुदृढ़ मानवीय सम्बन्धों के विकास में योगदान देती है, मधुर कार्य से वातावरण का सृजन करती है और कर्मचारी को अधिक उत्पादक, सहयोगी एवं सन्तुष्ट बनाने का प्रयास करती है।

कर्मचारी परामर्श की विशेषतायें(Characteristics of Employee Counselling)

कर्मचारी परामर्श की प्रमुखविषेशतायें निम्नलिखित हैं –

1. कर्मचारी परामर्श के अन्तर्गत कर्मचारी के साथ वार्तालाप अथवा वाद–विवाद होता है अर्थात् यह एक द्वि–मार्गी सम्प्रेषण (Two way Communication) का कार्य है।
2. कर्मचारी परामर्श का सम्बन्ध कर्मचारी की भावनात्मक समस्या अथवा कर्मचारी के मानसिक तनाव से होता है।
3. कर्मचारी परामर्श का मुख्य उद्देश्य कर्मचारियों की भावनात्मक समस्याओं को समझना एवं उनको दूर करना है।
4. कर्मचारी परामर्श का कार्य प्रायः फोरमैन पर्यवेक्षक, विभागीय अधीक्षक अथवा विभागीय प्रबन्धक द्वारा किया जाता है।

कर्मचारी परामर्श के प्रकार(Types of Employee Counselling)

कर्मचारी परामर्श के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं –

1. **निर्देशीय परामर्श** (Directive Counselling) – निर्देशीय परामर्श से आशय उस परामर्श से है जिसमें परामर्शदाता कर्मचारी की परेशानियों को धैर्य के साथ अच्छी तरह सुनता है और उचित सलाह देता है तो कर्मचारी को भावनात्मक समस्याओं के तनाव से मुक्ति मिल जाती है।
2. **अनिर्देशीय परामर्श** (Non-Directive Counselling) – इस विधि में कर्मचारी की भावनात्मक समस्याओं को सुना जाता है और उसे अपनी समस्याओं को स्पष्ट करने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है। यह विधि परामर्शदाता की अपेक्षा परामर्श प्राप्तकर्ता पर अधिक केन्द्रित होती है।

3. **सहकारी परामर्श** (Co-operative Counselling) – सहकारी परामर्श से आशय कर्मचारी की भावनात्मक समस्या पर पारस्परिक वाद–विवाद के होने से सहकारी प्रयासों द्वारा ऐसी दशायें स्थापित करने से है जिससे उनका समाधान हो सके। वर्तमान समय में कर्मचारी परामर्श के लिये सहकारी परामर्श विधि का अधिक प्रयोग किया जाता है।

9.8 सार संक्षेप

बिना मानवशक्ति नियोजन के उपक्रम के उद्‌देश्यों को पूरा नहीं किया जा सकता है। इसका नियोजन करना अनेक प्रकार से महत्वपूर्ण एवं लाभप्रद होता है। मानवशक्ति नियोजन की आवश्यकता को ध्यान रखते हुये इस अध्याय में कार्मिक नीति का अर्थ एवं अवधारणा ,मानव संसाधन विकास एवं नियोजन का ज्ञान कर्मचारी विकास एवं समाज कल्याण के संदर्भ में नियोजन, प्रशिक्षण एवं अवधारणा के साथ ही कर्मचारी परामर्श के बारे में जानकारी दी गयी है ।

9.9 अभ्यास प्रश्न

1 कार्मिक नीति का अर्थ एवं अवधारणा से आप क्या समझते हैं ?
2 मानव संसाधन विकास एवं नियोजन से आप क्या समझते हैं ?
3 कर्मचारी विकास एवं समाज कल्याण के नियोजन से आप क्या समझते हैं ?
4 प्रशिक्षण का अर्थ एवं अवधारणा से आप क्या समझते हैं ?
5 कर्मचारी परामर्श के बारे में जानकारी दीजिए ?

9•10 पारिभाषिक शब्दावली

Personnel Policy	कार्मिक नीति	Training	प्रशिक्षण
development	विकास	Directive Counselling	अनिर्देशीय परामर्श
Principle	सिद्धान्त	Co-operative Counselling	सहकारी परामर्श
Human resource	मानव संसाधन	Directive Counselling	निर्देशीय परामर्श
Planning	नियोजन	Over Assessment	अधि–मूल्यांकन
Social welfare	स्माज कल्याण	Emotional Nature	भावनात्मक प्रकृति

9.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय संविधान, द्वितीय संस्करण, कानून प्रकाशन, जोधपुर (2010)।
2. शास्त्री वी0वी0, सोशल लेजिस्लेशन्स इन इण्डिया (1955)।
3. प्रथम पंचवर्षीय योजना (1952)

इकाई – 10

समाज कल्याण एवं विकास में स्वयं सेवी संस्थाओं/संगठनों की भूमिका

Role of NGOs/Organizations in Social Welfare and Development

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 परिचय

10.2 स्वयंसेवी संगठन के नियम एवं नियमावली

10.3 स्वयंसेवी संगठनों को मान्यता एवं अनुदान हेतु विभिन्न मापदंड

10.4 विशेषताएं

10.5 स्वयंसेवी संगठनों के कार्य एवं उत्तरदायित्व

10.6 स्वयंसेवी संगठनों की दुर्बलताएं एवं पारदर्शता

10.7 स्वयंसेवी संगठनों को राज्य सरकारों द्वारा सहायता

10.8 अभ्यास प्रश्न

10.9 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.0 उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :–

- समाज कल्याण एवं विकास में स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका का ज्ञान कर सकेंगे।
- स्वयं सेवी संगठन के गठन हेतु नियम एवं नियमावली का ज्ञान कर सकेंगे।
- स्वयंसेवी संगठनों कीविषेशताओं का ज्ञान कर सकेंगे।
- कार्यों का ज्ञान हो सकेगा।

- स्वयंसेवी संस्थाओं के तत्वों का ज्ञान हो सकेगा।
- उत्तरदायित्वों की जानकारी हो सकेगी।
- पारदर्शिता का ज्ञान हो सकेगा।

10.1 परिचय

समाज कल्याण का मूल प्रारम्भ स्वयंसेवी क्रिया में देखा जा सकता है जिसने इसे पिछली अनेक शताब्दियों से वर्तमान तक जीवित रखा है। भारत में सामाजिक हित के लिए स्वयंसेवी कार्य की गौरवपूर्ण परम्परा रही है। स्वयंसेवी शब्द लैटिन भाषा के शब्द, जिसका अर्थ है 'इच्छा' अथवा 'स्वतंत्रता' से लिया गया है। हैराल्ड लास्की ने समुदाय की स्वतंत्रता को 'रूचिगत उद्‌देश्यों के वर्द्धन हेतु व्यक्तियों के इकट्ठा होने के मान्यता–प्राप्त कानूनी अधिकार के रूप में परिभाषित किया है।' भारतीय संविधान की धारा 19 (1) (C) के अन्तर्गत भारतीय नागरिकों को समुदाय बनाने का अधिकार प्राप्त है। समुदाय की स्वतंत्रता मानव स्वतंत्रताओं में प्रमुख है। यह मनुष्यों के लिए किसी सामान्य उद्‌देश्य के लिए समुदायित होने की व्यापक स्वतंत्रता है। वे किसी कार्य को स्वयं करने अथवा अपने अथवा अन्य व्यक्तियों के हित को प्राप्त करने हेतु किसी कार्य को कराने अथ्ज्ञवा लोक उद्‌देश्य का अनुधावन करने के लिए इकट्ठा होने की इच्छा रख सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र की शब्दावली में स्वयंसेवी संगठनों को आशासकीय संगठन कहा जाता है। इन्हें आदि का नाम भी दिया गया है। स्वयंसेवी संगठन की विभिन्न प्रकार से परिभाषा की गयी है। लार्ड बीवरिज के अनुसार, ''सही तौर पर, स्वयंसेवी संगठन एक ऐसा संगठन है जिसका आरम्भ एवं प्रशासन इसके सदस्यों द्वारा किसी बाह्य नियंत्रण के बिना किया जाता है चाहे इसके कार्यकर्ता वैतनिक अथवा अवैतनिक हो।'' मेरी मोरिस एवं मोडलीन रोफ की परिभाषाएं भी समान हैं। मोडलीन रोफ ने केवल यह बात जोड़ी है कि स्वयंसेवी संगठनों को कम से कम आंशिक तौर पर स्वयंसेवी संसाधनों पर आश्रित होना चाहिए।

10.2 नियम एवं नियमावली :

माईकल बेंटन ने इसकी परिभाषा किसी एक सामान्य हि अथवा अनेक हितों के अनुधावन हेतु संगठित समूह कहकर की है। डेविड एल0 सिल्स के शब्दों में, ''स्वयंसेवी संगठन इसके सदस्यों के कुछेक सामान्य हितों की प्राप्ति हेतु राज्य नियंत्रण के बिना स्वैच्छिक सदस्यता के आधार पर संगठित व्यक्तियों का समूह

है।'' नार्मन जानसन ने स्वयंसेवी समाज सेवाओं की विभिन्न परिभाषाओं की समीक्षा करते हुए इनकी चार प्रमुखविषेशताऐं बतलायी हैं :–

(i) संरचना की विधि, जो व्यक्तियों के लिए स्वैच्छिक है,

(ii) प्रशासन की विधि, इसके संविधान, इसकी सेवाओं, इसकी नीति एवं इसके लाभार्थियों के बारे में स्वयं–प्रशासकीय संगठन निर्णय करते हैं।

(iii) वित्त विधि, कम से कम इसका कुछ कोष स्वैच्छिक अभिकरणों से प्राप्त होता है, एवं

(iv) प्रेरक जो लाभ–प्राप्ति नहीं होती।

कुछ लेखकों, यथा सिल्स के विचार में स्वयंसेवी संगठनों की विधिक प्रस्थिति इसकी क्रियाओं की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है परन्तु भारतीय संदर्भ में यह उनके वित्तीय दायित्व के लिएविषेश रूप से महत्वपूर्ण है। क्योंकि प्रावधान है कि सहायता अनुदानों के लिए केवल ऐसी स्वयंसेवी संस्थाओं पर विचार किया जायेगा जो निगमित हैं तथा जो कम से कम तीन वर्षों से कार्यरत हैं। स्मिथ एवं फ्रीडमैन स्वयंसेवी संगठनों को औपचारिक रूप में संगठित, सापेक्षतया स्थायी द्वितीयक समूह समझते हैं जो कम संगठित, अनौपचारिक, अस्थायी प्राथमिक समूह से भिन्न होता है। औपचारिक संगठन परिलक्षित होता है – कार्यालयों की अवस्थिति में जिनके कार्मिकों की भर्ती निर्धारित प्रक्रियाओं के माध्यम से होती है, अनुसूचित बैठकों में, सदस्यता के लिए पात्र योग्यताओं में, श्रम के विभाजन एवंविषेशीकरण मे, यद्यपित संगठनों में ये सभीविषेशताएं समान मात्रा में नहीं पायी जातीं, स्वयंसेवी संगठनों को अपनी स्वायत्तता को पर्याप्त मात्रा में त्यागना पड़ता है क्योंकि यदि यह सरकारी अनुदान लेना चाहती है तो इन्हें कुछेक शर्तों को (यद्यपि इनका स्वरूप नियामक है) स्वीकार करना होता है। उदाहरणतया, भारत में स्वयंसेवी संगठनों को राजनीति एवं धर्म से दूर रहना होता है यदि ये राष्ट्र निर्माण गतिविधियों में भाग लेने हेतु सरकार से धन प्राप्त करना चाहते हैं। यह भारतीय धर्मनिरपेक्षता के अनुरूप है जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक धन का किसी धर्म के प्रचार हेतु प्रयोग नहीं किया जा सकता। अन्तिम, उन्हें राष्ट्रीय उद्देश्यों, यथा समाजवाद, धर्म निरपेक्षता, प्रजातंत्र, राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता के प्रति कटिबद्ध होना चाहिए।स्वयंसेवी संगठन की व्यापक परिभाषा का प्रयास करते हुए, प्रो. एम. आर. इनामदार का कथ्ञन है : ''स्वयंसेवी संगठन को समुदाय के लिए स्थायी तौश्र पर लाभप्रद होने के लिए अपने सदस्यों में सामुदायिक विकास हेतु शक्तिशाली इच्छा एवं भावना का विकास करना होता है, परिश्रमी एवं समर्पित नेतृत्व एवं भारित कार्यों में कुशल व्यक्ति प्राप्त करने हेतु आर्थिक तौर पर क्षय होना होता है।

स्वयंसेवी संगठन आदि समाज के हित में कार्य करना चाहता है तो उसे सर्वप्रथम सोसायटी रजिस्ट्रेशन अधिनियम 1860 की धारा 20 में पंजीकृत हों।

- संस्था का मुख्य उद्देश्य समाज के कमजोर वर्गों के सर्वांगीण विकास करना हो।
- ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन हो जो कि व्यक्ति, समूह, समुदाय, राज्य व राष्ट्रहित में हो।
- संस्था में स्वयंसेवियों की संख्या सात से कम न हो तथा यह ध्यान रखा जाए कि सभी धर्म जाति एवं लिंग का प्रतिनिधि हो तथा एक परिवार के सदस्यों को शामिल न किया जाये।
- समस्त सदस्यों के नाम, पते एवं व्यवसाय स्पष्ट हो तथा सभी का उद्देश्य समाज हित में समाजसेवा हो, ऐसे सदस्य को बिल्कुल शामिल न किया जाये जो कि धन कमाना चाहते हों।
- सभी सदस्य अपने हस्ताक्षर करने एवं सन्तुष्ट होने के बाद रजिस्ट्रार कार्यालय में अपना आवेदन करेंगे तथा जाँचोपरान्त एवं सही पाये जाने पर उन्हें पंजीकृत प्रमाण पत्र दिया जा सकेगा।

नियमावली :

स्वयंसेवी संगठन की नियमावली में निम्नलिखित सूचनाऐं स्पष्ट रूप से दी जाये जिससे किसी प्रकार की भ्रम की स्थिम उत्पन्न न हों

- संस्था का पूरा नाम
- संस्था का पूरा पता
- संस्था का कार्य क्षेत्र
- संस्था का उद्देश्य
- सदस्यों की सदस्यता तथा सदस्यों के वर्ग :
    - ❖ संरक्षक सदस्य
    - ❖ आजीवन सदस्य
    - ❖ सामान्य सदस्य
    - ❖ विशिष्ट सदस्य
- सदस्यों की समाप्ति
- संस्था के अंग :
    - ❖ साधारण सभा – प्रबन्धकारणी समिति

साधारण सभा में : इसके अन्तर्गत निम्न सूचनाऐं शामिल की जायें

- गठन
- बैठक
- सूचना अवधि
- गणपूर्ति
- विशेष वार्षिक अधि
- साधारण सभा के कर्तव्य/अधिकार
- प्रबन्धकारणी समिति एवं उसके अधिकार
- कार्यकाल
- प्रबन्धकारिणी समिति के पदाधिकारियों के अधिकार एवं कर्तव्य
- संस्था के नियमों/विनियमों में संशोधन प्रक्रिया
- संस्था का कोष
- व्यय का अधिकार
- संस्था के आय–व्यय का लेखा परीक्षण
- संस्था द्वारा/उसके विरूद्ध अदालती कार्यवाही के संचालन का उत्तरदायित्व
- संस्था के अभिलेख
- संस्था का निर्धारण

यदि उक्त समस्त बिन्दुओं का समावेश स्वयं सेवी संस्था की नियमावली हेतु आवश्यक है। अतः उक्त समस्त बिन्दुओं को शामिल किया जाना चाहिए।

10.3 मापदंड :–

राष्ट्रीय विकास परिषद् जो देश में सर्वोच्च निर्णयकारी संस्था है, जिसके द्वारा स्वीकृत सातवीं योजना प्रलेख में स्वयंसेवी संगठनों को मान्यता देने हेतु मापदंड निम्नलिखित हैं :

- संगठन का विधिक असितत्व होना चाहिए
- उद्देश्य समुदाय की सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओंविषेशतया कमजोर वर्गों की पूर्ति करते हों
- संगठन का उद्देश्य लाभ अर्जित न हो

- सभी नागरिकों को धर्म जाति रंग धर्ममत, लिंग, वंश के भेदभाव के बिना गतिविधियाँ सभी के लिए उपलब्ध हों
- कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए आवश्यक नमनीयता, व्यवसायिक योग्यता एवं प्रबन्धात्मक कौशल हो
- पदाधिकारियों में किसी राजनीतिक दल का निर्वाचित सदस्य न हो
- अहिंसात्मक एवं संवैधानिक साधनों का पालन हो
- धर्म निरोक्षता एवं कार्य की प्रजातंत्रीय विधियों एवं विचारधारकों के प्रति प्रतिबद्धता हो।

10.4 विशेषताएं

स्वयंसेवी संगठन की उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर प्रमुखविषेशताएं निम्नलिखित हैं :

- यह कार्यों के क्षेत्र एवं स्वरूप के अनुसार विधिक प्रस्थिति प्राप्ति हेतु समिति पंजीकरण कानून 1980, भारतीय न्यासकानून 1882, सहकारी समिति कानून 1904 अथवा संयुक्त स्टाक कम्पनी 1959 के अन्तर्गत पंजीकृत होती है,
- इसके निश्चित लक्ष्य एवं उद्‌देश्य एवं कार्यक्रम होते हैं,
- इसकी प्रशासकीय संरचना एवं विधिवत् संरचित प्रबन्ध एवं कार्यकारी समितियाँ होती है,
- यह बिना किसी बाह्य नियंत्रण के अनेकों सदस्यों द्वारा प्रजातंत्रीय नियमों के अनुसार प्रशासित होता है,
- यह अपने कार्यों के सम्पादन के लिए सहकारी कोष से अनुदानों के रूप में तथा आंशिक तौर पर स्थानीय समुदाय अथवा इसके कार्यक्रमों से लाभान्वित व्यक्तियों से अंशदान अथवा शुल्क के रूप में अपनी निधियों को एकत्रित करता है।

10.4.1 कार्यक्रम :

परियोजना के माध्यम से विभिन्न कार्यक्रमों को ध्यान में रखकर समय–समय पर परियोजना का निर्माण सम्बन्धित विभाग की दिशानिर्देशों के आधार पर किया जाता है। जिन क्षेत्रों को ध्यान में रखकर परियोजना का निरूपण किया जाता है। वे कार्यक्रम निम्नवत हैं :–

1. परिवार कल्याण कार्यक्रम

2. शिशु कल्याण
3. परिवार जीवन शिक्षा
4. गृह सहायता कार्यक्रम
5. बुढ़ापे में देखभाल सम्बन्धी कार्यक्रम
6. युवा कल्याण सम्बन्धी कार्यक्रम
7. विकलांगों के कल्याण हेतु कार्यक्रम
8. सेवानिवृत्ति सैनिकों के लिए कार्यक्रम
9. विपदा रहित
10. सामुदायिक विकास
11. चिकित्सा समाज सेवा
12. मनोरोगों से सम्बन्धित कार्यक्रम
13. स्कूल सामाजिक सेवायें
14. सुधारात्मक कार्यक्रम
15. कमजोर वर्गों के कल्याण सम्बन्धी कार्यक्रम
16. आतंकवादियों तथा दंगों से पीड़ितों का कल्याण
17. स्वतंत्रता–संग्राम का कल्याण

उपरोक्त कार्यक्रमों सम्बन्धी क्षेत्रों के अतिरिक्त परियोजना का निरूपण मूल्यांकनात्मक, तुलनात्मक एवं अध्ययनात्मक हो सकता है। जिससे कमजोर वर्गों जैसे – महिला, वृद्ध, अनसूचित जाति/जनजाति, पिछड़ी जाति, अल्पसंख्यक एवं अन्य का विकास हो सके।

10.4.2 तत्व

व्यक्तियों को स्वैच्छिक कार्य के लिए प्रेरित करने वाले तत्वों में धर्म, शासन, व्यापार, दानशीलता एवं पारस्परिक सहायता स्वेच्छाचारिता के प्रमुख स्रोत हैं। धार्मिक संस्थाओं का प्रचार उत्साह, सरकारी संस्थाओं की लोकहित के प्रति कटिवद्धता, व्यापार में लाभ प्रवृत्ति, सामाजिक अभिजनों की परोपकारी भावना एवं सहयोगियों के मध्य स्व–सहायता की प्रेरणा सभी स्वेच्छाचारिता में परिलक्षित हैं। क्रियात्मक स्तर पर, उपर्युक्त संघटकों में भी अधिक अन्तर न हो, परन्तु प्रत्येक में सेवा की भावना एक सामान्य उत्प्रेरक के रूप में पायी जाती है।

ब्यूराडिलोन एवं विलियम बीवरिज पारस्परिक सहायता एवं मानव प्रेम को स्वैच्छिक सामाजिक सहायता के विकास के दो प्रमुख स्रोत मानते हैं। इनका उद्भव क्रमशः व्यक्तिगत एवं सामाजिक अन्तरात्मा से होता है स्वैच्छिक कार्य को प्रेरित

करने वाले अन्य तत्वों में वैयक्तिक हित, यथा अनुभव, मान्यता, ज्ञान एवं मान, कुछेक मूल्यों के प्रति कटिबद्धता आदि को प्राप्त करने की इच्छा को गिना जा सकता है।

इसके अतिरिक्त, समाज के अभाग्शाली व्यक्तियों अथवा अपने संगी–साथियों अथवा स्वयं अपनी सहायता करने के लिए समूह अथवा स्वयंसेवी संगठनों के निर्माण में अनेक प्रकार की भावनाएं मुनष्यों को प्रेरित करती हैं। ये आदर्शवादी, शिक्षात्मक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक होती हैं जो पृथक् अथवा भिन्न–भिन्न रूप में मिलकर कार्य करती हैं।

आदर्शात्मक रूप में, स्वयंसेवी संगठन प्रजातंत्र एवं व्यक्तियों के व्यक्तित्व को सुरक्षित रखते तथा समाज के सामान्य स्वास्थ्य में योगदान प्रदान करते हैं। वे प्रजातंत्र में समाजीकरण के प्रमुख अंग हैं तथा अपने सदस्यों को सामाजिक मानकों एवं मूल्यों के प्रति शिक्षित कर अकेलेपन को दूर करने में सहायता करते हैं। मनोवैज्ञानिक भावनाएं व्यक्तियों को सुरक्षा, आत्मव्यक्ति एवं परिवार, चर्च एवं समुदाय जैसी सामाजिक संस्थाओं के उसके कारण अपने हितों की पूर्ति हेतु स्वयंसेवी संगठनों के सदस्य बनने की ओर प्रेरि त करती हैं। समाजशास्त्रियों ने सदस्यता के मनोवैज्ञानिक का उत्प्रेरक हितों, यथा समुदाय, वर्ग, वंशील, धार्मिक, लिंग, आयु आदि के साथ अध्ययन किया है तथा वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि संगठन से व्यक्ति को अपने साथियों के साथ सामुदायिक भावना की प्राप्ति होती है सदस्यता का वर्ग आधार होता है जहां सामाजिक – आर्थिक हित समिति का सुस्य बनने की ओर प्रेरित करते हैं, वर्ग, वंशित एवं धर्म के रूप में किसी समूह की सदस्यता में अधिकांशतः समरूपता पाई जाती है, सदस्यता का सामाजिक–धार्मिक प्रस्थिति जिसका मापन आय स्तर, व्यवसाय, गृह स्वामित्व, जीवन स्तर एवं शिक्षा से किया जाता है, के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है, नगरीय क्षेत्रों में ग्रामीण की तुलना में स्वयंसेवी संगठन का सदस्य बनने में अधिक रूचि होती है, अधिकांश अभिकरणों में निदेशक मंडलों में मनुष्यों का प्रभुत्व होता है, स्त्रियां अपनी पारिवारिक प्रस्थिति तथा परिवार चक्र में उनके स्तर के अनुसार इनकी सदस्यता ग्रहण करती है, स्वयंसेवी संगठनों की सहभागिता वृद्धायु के साथ कम हो जाती है।

इस प्रकार, स्वयंसेवी संगठन की सदस्यता का मनोविज्ञान एक जटिल घटना है। यह संस्कृति, सामाजिक वातावरण एवं राजनीतिक पर्यावरण पर निर्भर होता है जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति एवं एक व्यक्ति समूह से दूसरे व्यक्ति–समूह में भिन्न हो सकता है।

10.5 स्वयंसेवी संगठनों के कार्य एवं उत्तरदायित्व

प्रजातंत्रीय, समाजवादी एवं कल्याणकारी समाज में, स्वयंसेवी संगठन अनिवार्य होते हैं एवं वे अपने सदस्यों के कल्याण, देश के विकास तथा समाज एवं राष्ट्र की एकता एवं अखंडता के लिए अनेक कार्य करते हैं। इनमें से कुछेक उद्‌देश्यों एवं कार्यों का वर्णन निम्नलिखित है :–

(i) मनुष्य स्वभाव से सामाजिक प्राणी है। समूह में कार्य करने की प्रकृति उसमें मौलिक है। अतएव मनुष्य स्वेच्छापूर्वक अपने तथा अन्यों के हित के लिए समूह एवं समितियों की संरचना करते हैं ताकि वे पूर्ण एवं समृद्ध जीवन व्यतीत कर सकें। जैसे मनोरंजक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों, सामाजिक सेवाओं, व्यावसायिक हितों के वर्द्धन हेतु निर्मित स्वयंसेवी संगठनों से परिलक्षित हैं।

(ii) प्रजातंत्रीय प्रणाली युक्त बहुलवादी समाज में सरकार को विभिन्न पात्रों में एकाधिकार विकसित करने से रोकने के लिए व्यक्ति एवं राज्य के मध्य अन्तःस्थ रूप में अनेक स्वतंत्र, स्वयंसेवी अशासकीय संगठनों की आवश्यकता होती है। स्वयंसेवी संगठन नागरिकों को शुभ कार्यों में लगाते हैं एवं सरकार के हाथों में शक्तियों के केन्द्रीकरण को रोकते हैं जिससे वह शक्तिभंजक के रूप में कार्य करते हैं। स्वयंसेवी समूह शक्ति में सहभागिता द्वारा सेवाओं के संगठन में सरकार को एकाधिकार उपागम का विकास करने से रोकते हैं।

(iii) वे व्यक्तियों को अपने निजी संगठनों के प्रशासन में भाग लेकन समूह एवं राजनीतिक कार्य की मौलिकताओं को सीखने का अवसर प्रदान करते हैं।

(iv) संगठित स्वैच्छिक कार्य विभिन्न राजनीतिक एवं अन्य हितों वाले समूहों एवं स्कूल, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय प्राध्यापकों की समितियां, भारतीय विश्वविद्यालय समिति, भारतीय प्रशिक्षित सामाजिक कार्यकर्ता समिति, सोशल वर्क स्कूलों की समिति, ग्रामीण विकास हेतु स्वयंसेवी अभिकरणों की समिति, भारतीय बाल कल्याण परिषद् की भारतीय समाज कल्याण परिषद्, भारतीय महिला संघ आदि, वं उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा हेतु उपभोक्ता मंच जो अभी स्थापित हुए हैं, विभिन्न देशों में मानव अधिकार संगठन एवं विश्वव्यापी मानव अधिकार संगठन एवं क्षेत्रीय संगठन, यथा एवं आदि।

संक्षेप में स्वयंसेवी संगठनों ने भूतकाल में कल्याण सेवाएं प्रदान करने में प्रशंसनीय भूमिका अदा की है। क्योंकि सरकार एवं जनता दोनों द्वारा इसे प्रशंसा एवं मान्यता दी गयी है, अतएव भविष्य में भी इसे अधिक गौरवमय भूमिका अदा करने के लिए प्रोत्साहित किया जायेगा। परन्तु उनके संगठन एवं क्रियाप्रणाली में

पूर्व वर्णित न्यूनताओं को उन्हें मानव सेवा के वास्तविक उपकरण बनाने हेतु दूर करना होगा। सभी धर्मों के संतों, गुरूओं एवं पीरों की शिक्षाएं लोगों को ध्यान के साथ सेवा को मिलाकर अहं को समाप्त तथा मोक्ष को प्राप्त करने का आदेश देते हैं। व्यास (जिला अमृतसर) में बाबा जैमल सिंह का डेरा इस तथ्य का अनोखा उदाहरण है कि किस प्रकार सामुदायिक कार्य स्वैच्छिक ढंग से इतने विशाल स्तर पर किया जा सकता है तथा किस प्रकार धर्म को मानव सेवा के लिए बेहतर प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है। व्यक्तियों ने भी स्वैच्छिक सेवा के अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। भगत पूरण सिंह, अमृतसर में पिंगलवाड़े के संत, मानसिक रूप से बाधित, अपाहिजों एवं बाधितों के लिए महत्वपूर्ण सेवा कर रहे हैं। उनके कार्य की 'मदर टेरेसा' के साथ तुलना की गयी है। पिंगलवाड़ा वास्तव में एक मंदिर है जहां सार्वभैमिक भ्रातृत्व की शिक्षा दी जाती है एवं उसका पालन किया जाता है जहां जाति, वंश, धर्ममत की जंजीरों को तोड़ दिया गया है एवं मानवता की मशाल सदा जलती रहती है। यह ठीक ही कहा गया है कि स्वर्ग वहीं पर है जहां लोग मिलजुलकर सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण हेतु कार्य करते हैं तथा नरक वहां पर है जहां कोई भी मानवता के प्रति सेवा की बात तक नहीं सोचता। भारत में स्वैच्छिकता इस कथन के पूर्वार्द्ध में विश्वास करके इसका पालन करती है एवं वंचितों, दलितों, अलाभान्वितों एवं अविशेषाधिकारियों के कल्याण हेतु विभिन्न प्रोग्रामों को क्रियान्वित तथा कल्याण राज्य के आदर्श को प्राप्त करने में राज्य के प्रयासों के पूरक रूप में कार्य कर इसकी पुष्टि करती है।

10.5.1 स्वयंसेवी संगठनों की समाज कल्याण एवं विकास में भूमिका :

हमारे महान नेताओं के स्वैच्छिक सामाजिक कार्य पर बल दिया है। उदाहरणतया महात्मा गांधी राज्य की अपेक्षा सामूहिक सामाजिक कार्य का शक्तिशाली समर्थन किया था। विनोबा भावे एवं जय प्रकाश नारायण ने भी उनके विचारों की पुष्टि की थी। भारत में सामुदायिक कार्य एवं स्व–सहायता का लम्बा इतिहास रहा है, एक दया, सामूहिक हित की चिन्ता एवं निःस्वार्थ कार्य भविष्य में भी दिखाई देंगे। विकास में स्वयंसेवी संगठनों को संलग्न करने की आवश्यकता को स्वातन्त्रयोत्तर काल में (1957) सरकारी प्रलेखों में मान्यता दी गयी है। बलवन्तराय मेहता समिति का कथन है, ''आज सामुदायिक विकास की विभिन्न परियोजनाओं की क्रियान्विति में गैर–सरकारी अभिकरणों एवं कार्यकर्ताओं पर तथा इस नियम पर कि अन्ततः लोगों के स्वयं स्थानीय संगठनों को स्वयं सम्पूर्ण कार्य करना चाहिए, पर अधिक से अधिक बल दिया जा रहा है।'' इसी प्रकार, ग्रामीण – नगरीय सम्बन्ध समिति (1966) ने विकास गतिविधियों हेतु सामुदायिक समर्थन प्राप्त करने में स्वयंसेवी

संगठनों की भूमिका पर बल दिया गया था। पंचायती राज संस्थाओं पर गठित एक अन्य अखिल भारतीय समिति (अशोक मेहता समिति) ने स्वयंसेवी अभिकरणों की प्रशंसा इन शब्दों में की – ''अनेक स्वयंसेवी संगठन, जो ग्रामीण कल्याण में कार्यरत हैं, में कुछ ने व्यष्टि नियोजन कार्य में पंचायती राज संस्थाओं की सहायता की है। वे व्यापक क्षेत्रीय विकास योजनाएं तैयार करती हैं, संभाविता अध्ययन एवं लागत–लाभ विश्लेषण करती हैं तथा नियोजन एवं क्रियान्वयन में स्थानीय सहभागिता को प्रेरित करने के साधनों की खोज करती हैं।'' अवार्ड भी परियोजना निर्माण में परामर्शीय सेवाएं तथा अपने सदस्य अभिकरणों को तकनीकी समर्थन प्रदान करती है। स्वयंसेवी अभिकरण, यदि उनके पास आवश्यक कौशल, प्रमाणित ख्याति एवं सुसज्जित संगठन है, पंचायती राज संस्थाओं की नियोजन प्रक्रिया में सहायता कर सकते हैं। उन्हेंविषेशतया परियोजनाओं एवं स्कीमों के निर्माण में संलग्न किया जा सकता है। वे सामाजिक परिवर्तन के उपायों के पक्ष में शक्तिशाली जनमत तैयार करने में सहायता कर सकते हैं। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969–74) में अंकित किया गया, ''सामाजिक स्वयंसेवी संगठन पिछड़े वर्गों के मध्य कल्याण गतिविधियों का प्रसार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं, उन्हें अस्पृश्यता को समाप्त करने हेतु प्रचार और प्रोपेगण्डा करने, छात्रावासों एवं शिक्षण संस्थाओं को चलाने, कल्याण एवं सामुदायिक केन्द्रों को संगठित करने, सामाजिक शिक्षा देने तथा प्रशिक्षण एवं ओरियन्टेशन पाठ्यक्रमों को चलाने जैसी परियोजनाओं के लिए सहायता दी जायेगी।'' सातवी पंचवर्षीय योजना में निर्धनता दूर करने एवं न्यूनतम आवश्यकताओं सम्बन्धी प्रोग्रामों को क्रियान्वित करने के लिए स्वयंसेवी संगठनों को प्रधानता दी गयी क्योंकि इन प्रोग्रामों में आरम्भित कार्य इतने विशाल हैं कि सरकार अकेली प्रत्येक कार्य निष्पादित नहीं कर सकती। स्वयंसेवी अभिकरणों द्वारा पूरक प्रयास आवश्यक होंगे, क्योंकि विभिन्न प्रकार के कौशल की आवश्यकता होगी, विभिन्न स्वरूप की रणनीतियों का रेखान्वित तैयार करना होगा, लक्षित समूहों तक पहुंचने के लिए विभिन्न दृष्टिकोणों एवं अनुस्थापन वाले कार्मिकों को तैयार करना होगा। इसके अतिरिक्त, सरकारी अधिकारियों को विकास कार्य सुपूर्द करना उचित नहीं होगा क्योंकि यह नियमबाधित एवं अनुदार होते हैं। सृजनात्मकता, नवीनता, उच्च उत्प्रेरणा एवं प्रतिबद्धता अपेक्षित क्रियाक्षेत्रों में गैर–सरकारी संगठन अधिक उपयुक्त हैं। इस दृष्टिकोण से आवश्यक तकनीकी कौशल से सज्जित स्वयंसेवी संगठन सामाजिक–आर्थिक विकास के लाभप्रद अभिकरण हो सकते हैं। छठी पंचवर्षीय योजना काल से विकास कार्य में स्वयंसेवी संगठनों को संलग्न किये जाने के बारे में सरकारी विचारधारा में दर्शनीय परिवर्तन आया है। अब इन

संस्थाओं को महत्वपूर्ण प्रोग्रामों जैसे बीस सूत्री कार्यक्रम में परामर्शीय समूहों के माध्यम से संलग्न करने की अति आवश्यकता है।

जबकि सरकार के कल्याणकारी प्रोग्रामों में स्वयंसेवी अभिकरणों को दीर्घकाल से संलग्न किया जा रहा है, इनके सहयोग को अधिक व्यापक बनाने का विचार लगभग एक दशक से पुष्ट होता जा रहा है। अक्टूबर, 1982 में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने सभी मुख्यमंत्रियों को लिखा कि स्वयंसेवी अभिकरणों के परामर्शीय समूहों को राज्य स्तर पर संस्थागत किया जाये जो सातवीं पंचवर्षीय योजना में इसके प्रलेख में इस निश्चय को यह उल्लिखित करके स्पष्ट कर दिया गया कि विभिन्न विकास कार्यक्रमों,विषेशतया, ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन एवं नियोजन में स्वयंसेवी संगठनों को संलग्न करने हेतुविषेश प्रयास किये जायेंगे।

स्वयंसेवी अभिकरणों की शक्ति को मान्यता देते हुए इस प्रलेख में कहा गया, ''सामाजिक एवं आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गति प्रदान करने मे उनकी भूमिका को अपर्याप्त मान्यता दी गयी है। इन अभिकरणों ने नये प्रतिरूपों एवं उपागमों सहित, प्रतिस्पर्धा सुनिश्चित करके गरीबी रेखा से नीचे रह रहे परिवारों की संलग्नता प्राप्त करके नवीनीकरण के लिए आधार प्रदान किया है। इस प्रलेख में कार्यक्रमों एवं सहयोग के क्षेत्रों,विषेशतया गरीबी दूर करने एवं नवीन कमलागत तकनीकी प्रोग्रामों की लम्बी सूची दी गयी। इसमें यह भी ध्यान दिया गया कि सातवीं पंचवर्षीय योजनाकार स्वैच्छिकता को व्यवसायी बनाने, व्यावसायिक योग्यता एवं प्रबंध कौशल को आरम्भ करने जो स्वयंसेवी अभिकरणों के संसाधनों एवं समर्थताओं के अनुरूप होगा परविषेश बल देगी।

सातवीं योजना प्रलेख में स्वयंसेवी अभिकरणों के साथ क्रियाशील समन्वय उत्पन्न करने हेतु केन्द्रीय एवं राज्य सैक्टरों में 100 से 150 करोड़ रू0 के व्यय का प्रावधान किया गया। प्रलेख में यह भी उल्लिखित किया गया कि स्वयंसेवी अभिकरणों को एक आचार संहिता, जो सरकार से अनुदान सहायता प्राप्त करने वाले अभिकरणों पर लागू हो, का निर्माण करना चाहिए।

सातवीं योजना काल के दौरान सरकारी प्रोग्रामों के क्रियान्वयन एवं सरकारी फंडों से समर्थित अन्य विकास कार्य में स्वैच्छिक अभिकरणों की संलग्नता में पर्याप्त वृद्धि हुई। आठवीं योजना (1991 – 96) में इस प्रवृत्ति के जारी रहने की अधिक संभावना है।

- राज्य के पास नागरिकों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आवश्यक वित्तीय साधन एवं मानवशक्ति नहीं होती। स्वयंसेवी संगठन अतिरिक्त

साधन जुटाकर सरकार द्वारा पूरी न की जाने वाली आवश्यकताओं की पूर्ति तथा स्थानीय जीवन को समृद्ध कर सकता है।

- स्वयंसेवी संगठन उन क्षेत्रों जो पूर्णतया राज्य का दायित्व है, परन्तु जिनके लिए इसके पास सीमित साधन हैं, में भी सहायता कर सकते हैं एवं राजकीय संगठनों की तुलना में ऐसे कार्यों को अधिक अच्छी प्रकार निष्पादित कर सकते हैं। उदाहरणतया, शिक्षा राज्य का दायित्व है, परन्तु स्वयंसेवी संगठनों द्वारा चालित एवं प्रबन्धित शिक्षा संस्थाओं की संख्या राजकीय संस्थाओं से कहीं अधिक है तथा इनमें शिक्षा का स्तर भी नमनीयता, प्रयोगीकरण की योग्यता, अग्रणी भावना एवं अन्य गुणों के कारण ऊँचा है। यही बात स्वास्थ्य सेवाओं के बारे में भी है। परोपकारी एवं दानशील संस्थाओं द्वारा चलाये जा रहे अस्पतालों में राजकीय अस्पतालों की तुलना में अधिक अच्छी देखभाल की जाती है। व्यास में महाराज सावन सिंह दानशील अस्पताल एक विचित्र आधुनिक संस्था है जहां हजारों रोगियों का जाति अथवा रंग के भेदभाव के बिना निःशुल्क इलाज होता है तथा भोजन मिलता है।
- स्वयंसेवी संगठन केवल राज्य क्षेत्रों में ही भूमिका अदा नहीं करते, अपितु वे नयी आवश्यकताओं में जाने का जोखिम उठा सकते हैं, नये क्षेत्रों में कार्य कर सकते हैं, सामाजिक कुरीतियों को उजागर कर सकते हैं तथा ऐसी आवश्यकताओं जिनकी अभी तक पूर्ति नहीं हुई है अथवा जिनकी ओर ध्यान नहीं दिया गया है की ओर भी ध्यान दे सकते हैं। वे विकास क्रान्ति को दर्शाने वाले निर्माता एवं अभियंता के रूप में कार्य कर सकते हैं। वे सर्वेक्षण दल के रूप में कार्य कर सकते हैं। वे परिवर्तन के अग्रगामी बनकर परिवर्तन को कम कष्टदायक बना सकते हैं। वे प्रगति एवं विकास के लिए कार्य करके कालान्तर में राज्य की गतिविधियों को व्यापकतर क्षेत्रों में विकसित करने में सहायता कर सकते हैं जिससे राष्ट्रीय न्यूनतम की वृद्धि होगी।
- वे ऐसे व्यक्तियों, जो राज्य की गतिविधियों में राजनीति एवं शासन के माध्यम से भाग लेना पसन्द नहीं करते, को स्वयंसेवी समूहों में संगठित करके गतिविधियों के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं जिससे ऐसे व्यक्तियों के ज्ञान, अनुभव एवं सेवा भावना लोगों की आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं को पूरा करने एवं उनके जीवन को समृद्ध बनाने हेतु समाज में आवश्यक परिवर्तन लाने में उपलब्ध हो जाते हैं।

- वे व्यक्तियों को ऐसे समूहों, जो राजनीतिक नहीं हैं तथा किसी भी राजनीतिक दल के सत्ता में आने से जिनका कोई सरोकार नहीं है, परन्तु जो दलगत राजनीति से ऊपर हैं एवं राष्ट्र निर्माण के अन्य क्षेत्रों में रूचि रखते हैं, में इकट्ठा करके स्थिरकारी शक्ति के रूप में कार्य करते हैं तथा इस प्रकार राष्ट्रीय एकीकरण एवं अराजनीतिक विषयों पर संकेन्द्रीकरण में योगदान देते हैं।
- वे अपने सदस्यों को उनके कल्याण हेतु सरकार की नीतियों एवं इसके कार्यक्रमों, उनके अधिकारों एवं कर्तव्यों के बारे मे शिक्षित करने का कार्य करते हैं तथा बिना किसी भय एवं दृढ़ विश्वास से सरकार की नीतियों एवं गतिविधियों की रचनात्मक आलोचना करने की स्थिति में भी होते हैं जिससे सरकार इन नीतियों एवं प्रोग्रामों से प्रभावित होने वाले लागों के दृष्टिकोणों को स्थान देते हुए इनमें आवश्यक समुजन कर लेती है, जैसा कि अनुसूचित जनजातियों एवं पर्यावरण संरक्षण से समबन्धित कार्यक्रमों के विषय में हुआ है।
- वेविषेश हितों एवंविषेश समूहों, यथा वृद्ध , विकलांग, महिलाएं, बालक आदि की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास करते हैं जिन आवश्यकताओं की राज्य द्वारा वित्तीय अभाव के कारण समुचित रूप में पूर्ति नहीं हो सकती। वृद्धों के कल्याणकारी प्रोग्रामों में संलग्न स्वयंसेवी संगठन हैं। भारतीय बाल कल्याण परिषद् बाल कल्याण के वर्द्धन में संलग्न हैं। अखिल भारतीय भूतपूर्व सैनिक कल्याण समिति भूतपूर्व सैनिकों के कल्याण से सम्बन्धित है। इसी प्रकार, हजारों स्वयंसेवी संगठन अपने—अपने सम्बन्धित समूहों के हितों की देखभाल करने हेतु वर्तमान हैं।
- वे अपने लाभार्थियों एवं अपनी संतुष्टि के लिए कार्य करने की बेहतर स्थिति में होते हैं, क्योंकि वे अपने निकट व्यक्तियों, समूहों एवं समुदाय की आवश्यकताओं को पहचान कर उनकी पूर्ति हेतु समुचित कार्यक्रम बना सकते हैं, उनकी क्रियान्वयन प्रक्रिमें प्राप्त अनुभवों के प्रकाश में आवश्यक परिवर्तन कर सकते हैं, लोगों की सहभागिता प्राप्त कर सकते हैं, आवश्यक निधि जुटा सकते हैं, लोक विश्वास एवं सहयोग प्राप्त कर सकते हैं। जो सरकारी संगठन के अधिकारी करने में अयोग्य होते हैं।
- संक्षेप में, स्वयंसेवी संगठनों के प्रमुख कार्यों में सम्मिलित हैं — व्यक्तियों, समूहों एवं समुदायों की आवश्यकताओं की जानकारी प्राप्त करके समिति बनाने की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार को मूर्त अभिव्यक्ति प्रदान करना

इन आवश्यकताओं की सरकारी सहायता, अनुदानों अथवा निजी संसाधनों द्वारा पूर्ति हेतु परियोजनाओं एवं कार्यक्रमों को आरम्भ करना, नागरिकों की न्यूनतम आवश्यकताओं के लिए प्रावधान करने में राज्य के दायित्व में अंशदान देना, अनाच्छादित एवं आपूर्ति आवश्यकताओं के क्षेत्रों की पूर्ति करना, सरकार की एकाधिकार प्रवृत्तियों को रोकना, सेवा भावना से भरपूर व्यक्तियों को लोक कल्याण के वर्द्धन हेतु स्वयं को संगठित करने के अवसर प्रदान करना, नागरिकों को उनके अधिकारों एवं कर्तव्यों के बारे में शिक्षित करना तथा उन्हें उनके कल्याण हेतु सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों की जानकारी देना, प्रचार माध्यमों द्वारा लोक समर्थन प्राप्त करना, चंदों तथा दान द्वारा वित्तीय संसाधन जुटाना एवं अन्तिम, समाज कल्याण, नागरिकों के जीवन की संवृद्धि एवं राष्ट्र की प्रगति हेतु अराजनीतिक एवं गैर–दलीय प्रकार की गतिविधियों को संगठित करना।

10.6 स्वयंसेवी संगठनों की दुर्बलताएं एवं पारदर्शता

स्वयंसेवी संगठनों ने समाज के विभिन्न वर्गों को सेवा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है एवं सरकार के समर्थन से, जिसकी वे विरोधी न होकर सहभागी हैं, नये क्षेत्रों में अपने प्रोग्रामों का विस्तार करने में उनका भविष्य उज्जवल है। यदि उपर्युक्त वर्णित उनकी अपूर्णताओं, दुर्बलताओं एवं कमियों को दूर कर दिया जाता है एवं उनके संगठन तथा संरचना को परिष्कृत एवं सशक्त बना दिया जाता है,विषेशतया नये सदस्यों की समय–समय पर भर्ती, पदाधिकारियों का प्रजातंत्रीय निर्वाचन, सही नेतृत्व की व्यवस्था, विकेन्द्रीकरण एवं सत्त का प्रतिनिधान, योग्य एवं प्रशिक्षित कार्मिक, प्रोग्रामों के निर्माण एवं क्रियान्वयन में लोगों की भागीदारी, निधियों का सही उपयोग, सामान्य समस्याओं के विचार हेतु यंत्र, समन्वय यंत्र, राजनीतिज्ञों का अहस्तक्षेप, स्वार्थी हितों की समाप्ति, समर्पित एवं परिश्रमी कार्यकर्ताओं की भर्ती, सामाजिक दायित्व एवं स्वमूल्यांकन आदि के क्षेत्र में तो वे अपनी प्राचीन सेवा भावना को पुनः पा सकते हैं तथा सरकार एवं समाज दोनों की प्रशंसा एवं कृतज्ञता को अर्जित करके अधिक ओजस्विता से समाज की सेवा कर सकते हैं।

10.7 स्वयंसेवी संगठनों को राज्य सरकारों द्वारा सहायता

केन्द्रीय कल्याण, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, मानव संसाधन विकास, ग्रामीण विकास, पर्यावरण एवं वन मंत्रालयों के अतिरिक्त राज्य सरकारों के विभिन्न विभागविषेशतया समाज कल्याण विभाग समाज के विभिन्न वर्गों हेतु कल्याण प्रोग्रामों

में संलग्न स्वयंसेवी संगठनों को सहायता अनुदान प्रदान करते हैं। परन्तु समाज कल्याण विभागों की कार्यदक्षता को सुधारने की आवश्यकता है ताकि लाभार्थियों की बेहतर सेवा हो सके। हरियाणा सरकार के समाज कल्याण विभाग ने राज्य में परित्यक्त महिलाओं एवं विधवाओं, वृद्धों एवं विकलांग व्यक्तियों हेतु अनेक कल्याण परियोजनाओं के क्रियान्वयन के लिए वर्ष 1988–89 के लिए 141.17 करोड़ रू0 की राशि का प्रावधान किया था, परन्तु इसने फरवरी, 1989 तक बजट प्रावधान का केवल 46 प्रतिशत ही व्यय किया।

हरियाणा विधान सभा की अनुमान समिति ने समाज कल्याण विभाग की सामान्य रूप से तथा स्वयंसेवी संगठनों कीविषेश रूप से कार्यप्रणाली को परिष्कृत करने हेतु विभिन्न संस्तुतियां एवं सुझाव दिये हैं –

(i) निधियों के अपव्यय को रोकने के लिए, विभाग को विभिन्न स्कीमों पर राशि अनुपात में व्यय करनी चाहिए ताकि वर्ष के अन्त में इसे लापरवाही से व्यय न किया जा सके।

(ii) विभाग को वित्त विभाग के साथ विचाराधीन स्कीमों को स्वीकृत कराने हेतु तत्परता एवं ओजस्विता से मामले को अनसरित करना चाहिए ताकि धन समय पर प्राप्त हो सके एवं स्कीम के उद्देश्य को पूरा किया जा सके।

(iii) विभाग में अनेक पद 1987 से रिक्त पड़े हुए हैं, इन रिक्त पदों को तुरन्त भरा जाना चाहिए ताकि विभाग में कार्यकुशलता का वर्द्धन हो सके अथवा यदि इनकी आवश्यकता नहीं है अथवा इनका शीघ्र नहीं भरा जा सकता तो इन्हें समाप्त कर दिया जाये।

(iv) स्वयंसेवी संगठनों को सहायता अनुदान हेतु उपायुक्त के माध्यम से प्रार्थना पत्र देने की वर्तमान प्रक्रिया में काफी समय की बर्बादी होती है, ऐसे प्रार्थनापत्र जिला कल्याण अधिकारी के द्वारा अपनी निरीक्षण रिपोर्ट सहित अग्रेषित किये जाने चाहिए ताकि विभाग से अनुदान समय पर मिल सके।

(v) अनुदानों को समय पर दिये जाने के प्रश्न पर पुनर्विचार किया जाये एवं स्वयंसेवी संगठनों को कोई कठिनाई न हो, इस दृष्टि से स्पष्ट समय–सारिणी बना दी जाये।

(vi) सभी स्वयंसेवी संगठनों को सरकारी अनुदानों से क्रय आंशिक अथवा पूर्ण रूप से सभी परिसम्पत्तियों का रिकार्ड रखना चाहिए तथा इनका प्रयोग केवल निर्दिष्ट उद्देश्यों के लिए ही, जिनके लिए अनुदान दिया गया था किया जाना चाहिए। इन परिसम्पत्तियों को सरकार की पूर्ण सहमति के बिना विक्रय अथवा अन्य किसी प्रकार से प्रयोग न किया जाये।

(vii) स्वयंसेवी संगठनों को वित्तीय सहायता द्वारा अछूते क्षेत्रों में कल्याण सेवाएं तथा नयी कल्याण सेवाएं, जो अभी तक आरम्भ नहीं हुई हैं, का आरम्भ करने हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

10.7.1 स्वयंसेवी संगठनों को विदेशी सहायता

भारत में स्वयंसेवी संगठन विकासशील देशों में अपने प्रतिरूपों की भांति अंतर्राष्ट्रीय स्वयंसेवी अभिकरणों (अशासकीय संगठनों) से भी सहायता प्राप्त करते हैं। कनाडा अंतर्राष्ट्रीय विकास अभिकरण ने देश की चार स्वयंसेवी एजेंसियों, यथा – महिला विकास ऐक्शन, दिल्ली, सेवागिल्ड, मद्रास दीपालय शिक्षा समाज, दिल्ली एवं नवयुवक एवं समाज विकास केन्द्र उड़ीसा, को इन संस्थाओं को अंतर्राष्ट्रीय प्लान, जो दक्षिणी एशिया में विश्व बाल विकास अभिकरण के माध्यम से सशक्त बनाने हेतु लगभग एक करोड़ रूपयों का अनुदान दिया। समाज कल्याण के क्षेत्र में अधिक क्रियात्मक एवं प्रसिद्ध हैं : 'केअर'; ऑक्सफोर्ड अकाल राहत समिति, विदेश सामुदायिक सहायता, डेविश अन्तर्राष्ट्रीय विकास अभिकरण एवं क्रिश्चियन बाल कोष। भारत को इनसे सबसे अधिक धन प्राप्त हुआ है। भारत में इन अभिकरणों के कार्यक्षेत्र में सम्मिलित हैं : संकटकालीन एवं विपत्ति राहत, स्वास्थ्य एवं शिक्षा, सामुदायिक विकास, पूरक पोषाहार, महिला, बाल, विकलांग एवं अन्य पीड़ित वर्गों का कल्याण, सामाजिक सुरक्षा, सामाजिक एवं नैतिक स्वास्थ्य विज्ञान, पुनर्वास कार्य, दत्तक देखभाल एवं प्रयोजन आदि।

अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरण मानव पीड़ा को दूर करने हेतु क्रिश्चियन चिन्ता एवं दानशीलता से प्रेरित होते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय रैडक्रास युद्ध में घायल सैनिकों की चिकित्सीय देखभाल एवं मानवी व्यवहार तथा सेना में कार्य कर रहे व्यक्तियों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए 1861 में स्थापित सर्वप्रथम वृहद् अन्तर्राष्ट्रीय संगठन था। बाद में, इसका कार्यक्षेत्र गंभीर बनाने के लिए तकनीकी मार्गदर्शन देकर, राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान, राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षण संस्थान, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद आदि में उनके कार्मिकों को प्रशिक्षण देकर, उनकी आवश्यकताओं एवं समस्याओं में अनुसंधान कराकर, उनके द्वारा संगठित समाज कल्याण सेवाओं एवं संस्थानों को नियमित करके, सेवाओं के न्यूनतम मानकों को सुनिश्चित करके, कर्मचारी वर्ग एवं लोगों के शोषण को रोक कर, वैतनिक एवं स्वैच्छिक कार्यकर्ताओं की सूची तैयार करके, कार्य रणनीतियों का विकास करने के लिए अनुभवों एवं विचारों के आदान–प्रदान हेतु मंच प्रदान कर।

महिला एवं बाल विकास विभाग, कल्याण मत्रालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय के माध्यम से सरकार स्वयंसेवी संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका को मान्यता

देते हुए उनके प्रतिनिधियों को विभिन्न समितियों, कार्यसमूहों एवं अध्ययन दलों में स्थान देकर उनकी सेवाओं का कल्याणकारी राज्य के आदर्श को साकार बनाने हेतु लाभ उठाती है एवं उन्हें विदेशों में आयोजित सम्मेलनों, गोष्ठियों आदि में भाग लेने के लिए भेजती हैं। वास्तविक रूप में, सरकार यह अनुभव करती है कि विकास एवं समाज कल्याण के प्रत्येक क्षेत्र में स्वयंसेवी अभिकरणों की सहभागिता अनिवार्य है। कुछ समय पूर्व, इसने बच्चों के अन्तरादेश अंगीकरण के मामलों की प्रायाजित/छानबीन करने हेतु लगभग एक–सौ भारतीय एवं लगभग तीस विदेशी सामाजिक/बाल कल्याण अभिकरणों को मान्यता प्रदान की है।

अभी हाल ही में, कल्याण मंत्रालय ने स्वैच्छिक प्रयासों को बढ़ावा देने की दृष्टि से ऐसे स्वयंसेवी संगठनों को संगठनात्मक सहायता देने की स्कीम आरम्भ की है जो प्रमुख रूप में कल्याण गतिविधियों में संलग्न है एवं जिनका क्रियाक्षेत्र इतना व्यापक है कि इसे समन्वय हेतु केन्द्रीय कार्यालय स्थापित करना आवश्यक है। ऐसी सहायता अधिकतम पन्द्रह वर्षों तक दी जाती है। सहायता की राशि मात्रा, गुण के आधार पर निर्धारित की जाती है। केन्द्रीय कार्यालय को चलाने हेतु व्यावसायिक एवं अव्यावसायिक कार्मिकों के वेतन, भत्तों एवं अन्य आकस्मिक व्यय को इस राशि का निर्धारण करते समय ध्यान में रखा जाता है। प्रबन्धक संगठनों द्वारा चलाये जा रहे स्कूल्य ऑफ सोशल वर्क, जिन्हें विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से सहायता प्राप्त नहीं होती, भी इस स्कीम के अन्तर्गत सहायता अनुदान के पात्र हैं।

उपर्युक्त वर्णित उपाय सरकार द्वारा स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका की प्रशंसा एवं मान्यता का प्रमाण है। परन्तु इसे उनके ऊपर नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण भी करना होता है ताकि स्वयंसेवी संगठनों को प्रदत्त वित्तीय सहायता को उसी उद्देश्य के लिए प्रयोग किया जाये जिसके लिए यह दी गयी है। इसका कोई दुरूपयोग अथवा गबन न हो, उनके द्वारा उन नियमों विनियमों, अनुदेशों, दिशा निर्देशों का पालन किया जाये जो पदाधिकारियों के नियमित निर्वाचन, योग्य स्टाफ की नियुक्ति, सेवाओं के स्तर को बनाये रखने के लिए जारी किये गये हैं। वह सहायता अनुदान के प्रयोग कर लिये जाने का प्रमाण–पत्र स्वीकृत लेखा परीक्षकों से लेखा परीक्षण के उपरांत प्रस्तुत करें। सरकार ऐसे संगठनों के विरूद्ध जांच आयोग कानून के अधीन जांच भी आरम्भ कर सकती है जिनके विरूद्ध फंडों के दुरूपयोग अथवा गबन एवं कुप्रबन्ध के आरोप हैं अथवा ऐसी शिकायतों की छानबीन हेतु समितियों की नियुक्ति कर सकती है तथा आरोप सिद्ध हो जाने पर उनके विरूद्ध उचित कार्यवाही कर सकती है।

10.7.2 स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका को मान्यता

भारत में कल्याणकारी सेवाओं के विकास में स्वयंसेवी प्रयासों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, जैसा कि दक्षिण में विभिन्न बांध परियोजनाओं के बारे में हुआ है। यदि स्वयंसेवी अभिकरण को निर्धनों के हितों की चिन्ता है तो यह सरकार के विरूद्ध संघर्ष में उलझ सकती है जिसे सरकारी अधिकारी स्पष्टतया अनुमोदित नहीं करेंगे। पुनः स्वयंसेवी अभिकरण से कम लागत वाले स्थानीय संसाधनों पर आधारित तकनीकों में योगदान देने की अपेक्षा की जाती है जो निर्धन कृषकों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होती है, परन्तु स्थानीय अधिकारी हरित क्रान्ति प्रकार की प्रावधिकी में, जो कृषि रसायनों की उच्च मात्राओं तथा तदनुरूप बीजों पर आधारित है के प्रसार करने में संलग्न हैं। स्वयंसेवी अभिकरण रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग को कम करने के लिए लोगों को कहते हैं, जबकि सरकार ऐसे बीजों का प्रचार करती है जो ऐसे रसायनों के प्रयोग की मांग करते हैं। इस प्रकार, सरकार तथा स्वयंसेवी संगठन के मध्य संघर्ष क्षेत्रों में वृद्धि होती जाती है।

स्वयंसेवी अभिकरणों को संलग्न करने की रणनीति सरकार एवं अभिकरणों के मध्य स्वस्थ वातावरण एवं सद्भाव की उपस्थिति की पूर्वकल्पना करती है। परन्तु दुर्भाग्यवश, वर्तमान सम्बन्ध सुखद नहीं है। प्रत्येक में दूसरे के प्रति शंका एवं अवस्था का अभाव है। यद्यपि दोनों के मध्यविषेशतया उच्च स्तरों पर अधिकारियों एवं स्वयंसेवी संगठनों के प्रमुख प्रतिनिधियों के मध्य अच्छे संबंधों के एवं किये गये अच्छे कार्यों के कुछेक उदाहरण देखे जा सकते हैं, तथापि प्रशासन के निचले स्तरों पर,विषेशतया गैर–संस्थात्मक एवं छोटे समूहों के प्रति ग्रामीण स्तर पर खुला विरोध है। जैसा ऊपर वर्णित किया गया है, विकास प्रयासों को बेहतर बनाने के लिए सरकार एवं स्वयंसेवी संगठनों के मध्य सहयोग सुनिश्चित करने हेतु स्वतंत्र एवं स्पष्ट विचार–विमर्श द्वारा कुछेक महत्वपूर्ण विषयों के समाधान किये जाने की आवश्यकता है।

वस्तुतः इन समस्याओं का जन्म सरकार एवं स्वयंसेवी अभिकरणों के मध्य संबंध, विकास कार्य में इन अभिकरणों की भूमिका तथा सामुदायिक विकास एवं जनसहयोग पर किसी स्पष्ट नीति की अनुपस्थिति के कारण हुआ है। अतः सरकार को संघर्ष क्षेत्रों को यदि समाप्त नहीं हो सकते तो कम करने एवं दोनों के मध्य सरल सम्बन्धों को बनाये रखने के लिए सुस्पष्ट नीति की घोषणा करनी होगी। दोनों सरकार एवं स्वयंसेवी अभिकरणों को अपनी उचित भूमिकाओं को स्पष्ट समझना होगो। संगठनों को यह मानना होगा कि उनका कार्य राज्य का पूरक है। वे दूसरा राज्य नहीं है, अधिक से अधिक वे सरकार के प्रयासों के पूरक हो सकते

हैं, वे राज्य द्वारा आरम्भिक सामाजिक पुनर्निर्माण के प्रयासों का स्थान नहीं ले सकते। यह उनका सरकार के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण होना चाहिए। इसी प्रकार, सरकार को भी स्वयंसेवी अभिकरणों की महत्वपूर्ण भूमिका की प्रशंसा करनी चाहिए तथा स्वैच्छिक कार्य की प्रकृति एवं इसके दर्शन को समझना चाहिए। दूसरा यह सत्य है कि सरकारी सहायता अनुदानों पर स्वयंसेवी अभिकरणों की अतिनिर्भरता उनके कार्य एवं विचारधारा की स्वतंत्रता जो स्वैच्छिक कार्य का मूल तत्व है, को कठिन बना देती है। परन्तु सरकार को इस सीमा तक उनके ऊपर नियंत्रण नहीं करना चाहिए कि राजनीतिक वैरभाव अथवा अधिकारियों के अहं से प्रेरित जाँच आयोग स्थापित करके उन्हें अपमानित किया जाये। स्वयंसेवी अभिकरणों का उचित मार्गदर्शन करने तथा उन्हें निर्दिष्ट कार्यों के निष्पादन में सहायता दिये जाने की आवश्यकता है। सरकार एवं स्वयंसेवी संगठन के मध्य सम्बन्ध सामाजिक कल्याण एवं विकास मे क्रमशः भूमिका अदा करने के लिए सामान्य प्रयास में सहभागिता का सम्बन्ध है। यहद इस सहभागिता को ठीक प्रकार से कार्य करना है तो सरकार एवं स्वयंसेवी संगठन दोनों को परस्पर सम्मान करना चाहिए। जैसा पूर्व वर्णित किया गया है, ब्रिटेन में सरकार किसी कार्य को आरम्भ करने से पूर्व विभिन्न प्रकार के स्वयंसेवी संगठनों, व्यावसायिक संगठनों एवं सेवा संगठनों से परामर्श करके प्रोग्रामों का निर्माण करती है। परिणामतः जब निर्णय की घोषणा संसद में की जाती है तो इससे सम्बन्धित हितों एवं संगठनों की निहित सहमति प्राप्त होती है। क्योंकि स्वयंसेवी संगठनों को नियोजन स्तर पर ही संलग्न कर लिया जाता है, अतएव उनके क्रियान्वयन में वे सहर्ष सहयोग प्रदान करते हैं। ऐसे उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने अक्टूबर, 1982 में सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों को पत्र लिखकर स्वयंसेवी अभिकरणों के परामर्शीय समूहों की स्थापना पर बल दिया था, परन्तु दुर्भाग्यवश केवल कुछेक परामर्शीय समूह ही स्थापित किये गये हैं। इस सुझाव का पूर्णरूपेण परिपालन किया जाना अति आवश्यक है। संक्षेप में सह–भागिता सरकार एवं स्वयंसेवी संगठनों के मध्य संबन्धों का मूल है एवं दोनों सहभागियों के हित में इसका पालन किया जाना चाहिए। सरकार क्योंकि वरिष्ठ सहभागी है, अतएव इसे स्वयंसेवी संगठनों की तुलना में अधिक उदार एवं सहायक होना चाहिए।

10.7.3 स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका

समाज कल्याण में सवयंसेवी संगठनों की भूमिका का दो मौलिक आधारों पर मूल्यांकन किया जा सकता है। सर्वप्रथम, राष्ट्रीय सरकार द्वारा आरम्भित राष्ट्रीय योजना के नियोजन एवं क्रियान्वयन में लोगों की सहभागिता सम्बन्धी पक्ष हैं।

नियोजकों ने प्रजातंत्रीय योजना के बाद लोगों की स्वैच्छिक सहमति प्राप्त करने के लिए ही नहीं, अपितु नियोजन एवं क्रियान्वयन प्रक्रिया में उनकी सकारात्मक सहभागिता प्राप्त करने के लिए भी बहुधा अपनी उत्कृष्ट इच्छा अभिव्यक्त की है। दूसरे शब्दों में, सरकारी तौर पर निर्मित एवं प्रशासित योजना में अप्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व प्राप्त लोगों अथवा उनके संगठनों को सम्बद्ध करने का ही प्रश्न नहीं है, अपितु विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया में संयुक्त सहभागिता विकसित करना है। वस्तुतः यह सहभागिता प्रजातंत्र की अवधारणा को वास्तविकता में रूपान्तरित करने की ओर एक पत्र है।

इस सामान्य उपागम के अतिरिक्त जो प्रजातंत्रीय योजना के अन्तर्गत किसी विकासीय परियोजना के बारे में उचित है, समाज कल्याण के क्षेत्र में स्वयंसेवी संगठनों को महत्वपूर्ण भूमिका दिये जाने का एक अन्य औचित्य है। भारत में सामाजिक कार्य के लम्बे इतिहास में स्वयंसेवी संगठनों ने सदा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। चाहे किसी विपदाग्रस्त व्यक्ति अथवा अकाल अथवा बाढ़ से उत्पन्न संकट का मामला था, स्वयंसेवी संगठन सेवा प्रदान करने में आगे आता था। राज्य की भूमिका तत्कालीन शासकों के दृष्टिकोण के अनुसार उदासीनता से लेकर आकस्मिक कभी–कभी परोपकारी रूचि तक बदलती रही है। शताब्दियों तक राज्य सहायता की अपेक्षा सामुदायिक सहायता ही स्वयंसेवी संगठनों का प्रमुख आधार रही है। भारत में स्वतंत्रता–प्राप्ति के उपरान्त ही राज्य के दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। संविधान में प्रगतिशील सामाजिक नीति का निरूपण किया गया तथा देश की योजनाओं में कल्याणकारी प्रोग्रामों की उचित स्थान दिया गया।

फंड–एकत्रीकरण – परिवर्तित सामाजिक–आर्थिक दशाओं के कारण स्वयंसेवी संगठनों के लिए फंड इकट्ठा करना कठिन हो गया है। रेणुका राय समिति 1959 ने विकास एवं भरण–पोषण अनुदानों सहित सहायता अनुदान प्रणाली की सिफारिश की थी। इसके बावजूद भी स्वयंसेवी संगठनों को स्वयं को चालू रखने हेतु बढ़ते हुए व्यय को पूरा करने के लिए पर्याप्त धन इकट्ठा करना होगा। सहायता अनुदान प्रणाली स्वयंसेवी संगठनों के प्रयासों का केवल पूरक हो सकती है। यह भी आवश्यक है कि अपने स्वयंसेवी स्वरूप के संरक्षण हेतु उन्हें राज्य सहायता पर अत्यधिक आश्रित नहीं होना चाहिए। सामुदायिक सहायता की मात्रा संगठन करने का विचार कुछ वर्षों से प्रचलित है। इस विचार का प्रमुख तत्व यह है कि कोष को नागरिकों की अधिक संख्या से अल्प–दान न कि दानवीरों की अल्प संख्या से विशाल दान द्वारा इकट्ठा किया जाये। इस लक्ष्य को सम्मुख रखते हुए समिति ने कहा : ‘‘स्वयंसेवी संगठनों को फंड एकत्रित करने के अपने प्रोग्रामों को पुनर्रूप देना

होगा, ताकि वे कुछेक दानवीरों की सहानुभूति की अपेक्षा नागरिकों के विशाल बहुमत की स्वैच्छिक सहायता पर निर्भर हो।''

10.8 सार संक्षेप :

प्रस्तुत इकाई में समाज कल्याण एवं विकास में स्वयंसेवी संस्थाओं/संगठनों की भूमिका, नियम व नियमावली हेतु आवश्यक बिन्दुओं को शामिल किया गया है। संस्था कीविषेशतायें, कार्यक्रम तत्व अनुदान हेतु विभिन्न मापदंड आदि को संक्षिप्तरूप में चर्चा की गयी है। इकाई के अन्त में लघु एवं विस्तृत प्रश्नों का समावेश भी किया गया है। जिससे कि छात्र/छात्राओं की परीक्षा में मदद हो सके। भारत में स्वयंसेवी संगठनों को विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरणों, यथा आदि से भी राहत कार्य एवं विभिन्न समाज कल्याण एवं विकास प्रोग्रामों के लिए व्यापक विदेशी सहायता प्राप्त होती है। ऐसी सहायता यद्यपि भिक्षा रूप में होती है, परन्तु विकास कार्यों के लिए उनकी उपलब्धता को शंका से देखा जाता है, क्योंकि इसके पीछे कभी–कभी राजनीतिक उद्‌देश्य होता है। यही कारण है कि सरकार को आय कर कानून, पंजीकरण कानून एवं विदेशी सहायता (नियमन) कानून द्वारा विदेशी सहायता के प्रवाह के ऊपर नियामक नियंत्रण कठोर करना होता है।

10.9 अभ्यास प्रश्न

- स्वयंसेवी संगठन क्या है?
- स्वयंसेवी संस्था के मुख्य उद्‌देश्य क्या हैं?
- स्वयंसेवी संस्था के मापदण्ड क्या हैं?
- उत्तरदायित्व को परिभाषित कीजिये?
- स्वयंसेवी संस्था कीविषेशताऐं बताइये?
- स्वयंसेवी संगठन को परिभाषित करते हुये इसके गठन की प्रक्रिया को समझाइये?
- विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों को परिभाषित कीजिए जिसके लिये स्वयंसेवी संस्थायें कार्य करती हैं?
- स्वयंसेवी संस्थाओं की समस्त कल्याण एवं विकास में भूमिका की चर्चा कीजिए?

10.10 पारिभाषिक शब्दावली

Rules	नियम	Transparency	परदर्शिता
Regulations	नियमावली	Social welfare	समाज कल्याण
Funds	टनुदान	Organization	संगठन
Various measurements	विभिन्न मापदंड	Institutions	संस्थाओं
Characterstics	विशेषताए	Non government organization	स्वयंसेवी संगठन
Programmes	कार्यक्रम	Agencies	अभिकरणों
Elements	तत्व	Maintainance	भरण–पोषण
Responsibilities	उत्तरदायित्व	Voluntary assistance	स्वैच्छिक सहायता

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

(i) सचदेव, डी0 आर0, भारत में समाज कल्याण प्रशासन, किताब महल इलाहाबाद, 2008

(ii) कोले, जी0 डी0 एच0, स्वयंसेवी सेवायें, ए0 एफ0 सी0 बुन्दिलन, लन्दन, 1945

(iii) सातवीं योजना, योजना आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली

(iv) गन्गरेडे, के0 डी0, स्वयंसेवी विभाग, समाजकार्य विश्व कोष कल्याण मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1987

(v) शर्मा, एस0 के0, एन0 जी0 ओ0 एक इकाई, ट्रब्यून, 1991

इकाई – 11

सामाजिक विधान एवं भारतीय संविधान

Indian Constitution and Social Legislation

इकाई की रूपरेखा
11.0 इकाई का उद्देश्य
11.1 परिचय
11..2 सामाजिक विधान
11.3 भारतीय संविधान – महत्व
11.4 राज्य की नीति के निदेशक तत्व
11.5 मूल कर्तव्य
11.6 भारतीय संविधान एवं सामाजिक विधान
11.7 सार संक्षेप
11.8 अभ्यास प्रश्न
11.9 पारिभाषिक शब्दावली
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः –

- भारतीय संविधान के महत्व को परिभाषित कर सकेगे।
- भारतीय संविधान के अन्तर्गत निहित मूल अधिकारों का वर्णन कर सकेंगे।
- राज्य के नीति निदेशक तत्वों को विस्तृत कर सकेंगे।
- सामाजिक विधान को सामाजिक नियन्त्रण हेतु किस प्रकार उपयोग करते है ? लिख सकेगे।
- सामाजिक परिवर्तन हेतु सामाजिक विधान की उपयोगिता को उल्लेखित कर सकेंगे।
- सामाजिक न्याय हेतु सामाजिक विधान की भूमिका का वर्णन कर सकेंगे।
- सामाजिक सुधार को जान सकेंगे।
- सामाजिक सुरक्षा को समझ सकेगे।

- सामाजिक सुरक्षा तथा सुधार का सामाजिक संविधान से सम्बन्ध विस्तृत कर सकेगे।

11.1 परिचय

समाजिक विधान, समाज में, सामाजिक रक्षा की नींव है। सामाजितक विधान उनकी सोच व कार्यप्रणाली के आधार पर असामाजिक तत्वों की सजा, पुनर्वसन आदि की रूपरेखा निर्धारित करता है तथा व्यवहार परिवर्तन का प्रयास विभिन्न संस्थाओं की सहायता से करने का प्रयास करता है। समाज में शोषित वर्ग को सुरक्षा व जीवन को पुनः सकारात्मक दृष्टिकोण से शुरू करने की छूट यह देता है व सकारात्मक दृष्टिकोण से समाज में दूसरों की रक्षा न होने देना हेतू, सामाजिक विधानों को प्रतिबन्धित करता है।

11.2 सामाजिक विधानः

समाजिक विधान, किसी भी समाज में सामाजिक नियन्त्रण बनाये रखने में सहायता करता है। समाज में किसी वयक्ति के मानवाधिकारों का उल्लंघन न हो तथा सभी वयक्तियों का कल्याण हो यह सामाजिक विधान निशिचित करता है। सभी वयक्तियों हेतु समाज द्वारा स्वयं के ऊपर निरोपित कानून एवं नियम का प्रतिपालन करना आवश्यक होता है तथा इन नियमों को तोड़ने पर विधान द्वारा दण्ड देने का प्राविधान है। सामाजिक विधान किसी भी व्यक्ति को सामाजिक प्रतिनद्वताओं को अपनाने हेतु प्रतिबद्ध है।

11.2.1 नियन्त्रण के यंत्र के रूप में :–

समाज में एक उचित व्यवस्था जिसमें सभी व्यक्तियों का कल्याण निहित हो, बनाये रखना सामाजिक नियन्त्रण है। मानवीय व्यवहारों को समाज मे ंस्थापित करना सामाजिक नियन्त्रण का उद्देश्य है। समाज में सभी व्यक्तियों हेतु कुछ नियम व कानून होते हैं जिन्हे मानना सभी के लिए आवश्यक है।

11.2.2 सामाजिक विधानः सामाजिक परिवर्तन के यंत्र के रूप में :–

सामाजिक परिवर्तन का उद्देश्य समाज में व्याप्त असमानता, भ्रष्टाचार, अनियमितता आदि को समाप्त करने से है। समाज में सर्व–कल्याण तथा समाज खुद को एक कल्याणकारी समाज बनाने के उद्देश्य से निरन्तर परिवर्तन की प्रक्रिया अपनाये रखता है। सामाजिक विधान इसी उद्देश्य को पूरा करने का महत्वपूर्ण यन्त्र है। विधान समाज के नागरिकों को दूसरों का शोषण व दूसरों की

स्वतन्त्रता में बाधक बनने पर रोक लगाता है तथा संविधान द्वारा प्रदत्त भारत के प्रत्येक नागरिक के मूल अधिकारों को सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी व उत्तरदायित्व का निर्वहन करता है। समाज में नित होते परिवर्तनों के आधार पर सामाजिक विधानों के अनुच्छेद भी परिवर्तित होते रहते हैं परन्तु इनमें होते हुए परिवर्तनों का लक्ष्य सदा समाज के वंचित, शोषित, गरीब, निर्बल वर्ग की रक्षा तथा समाज के सबसे बड़े वर्ग के अधिकारों का शोषण होने से बचाना है।

11.2.3 सामाजिक विधानः सामाजिक न्याय के यंत्र के रूप में :–

सामाजिक न्याय का तात्पर्य समाज में सभी के अधिकारों की सुरक्षा के साथ–साथ समाज में उपलब्ध संसाधनों पर समान अधिकार से है। दूसरे शब्दों में एक कल्याणकारी राज्य में व्याप्त संसाधनों का सभी समानता से अपने विकास के साथ ही पूरे समाज के विकास हेतु प्रयोग करें, यही सामाजिक न्याय सिखाता है। उत्पादन पर एक व्यक्ति का अधिकान न हो तथा धन का वितरण कार्य के प्रकार व कार्य करने की क्षमता पर आधारित होना चाहिए।

समाजिक विधान इस पर प्रतिबन्ध लगाते हैं कि एक ही व्यक्ति विशेष के हाथ में सारी शक्तियॉ समाहित न हो तथा वह उत्पादन की प्रक्रिया में शामिल अन्य व्यक्तियों का शोषण न करें। सामाजिक न्याय का लाभ प्रति व्यक्ति को दिलाने हेतु सामाजिक विधान तत्पर रहता है। सामाजिक विधान, समाज में एकता, समानता व भाईचारा के सिद्धान्तों को बनाये रखने हेतु प्रत्येक व्यक्ति को निर्देशित करता है तथा साथ ही यह भी ध्यान रखता है कि किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा व मानवाधिकार का हनन किसी भी रूप में किसी व्यक्ति द्वारा न होने पाये, अर्थात् सामाजिक विधान ही समाज में सामाजिक न्याय दिलाने हेतु प्रतिबद्ध है।

11.2.4 सामाजिक विधानः सामाजिक रक्षा के यन्त्र के रूप में :–

एक कल्याणकारी राजय का कर्तव्य है कि वह अपने नागरिकों यथा बच्चों, वृद्धों, महिलाओं, अपंगों तथा अन्य कमजोर व शोषित वर्गो की रक्षा का उपाय करें तथा उनकी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति को सुनिश्चित करें। समाज में ऐसे व्यक्ति व बच्चे जो गैरकानूनी कार्यो में संक्षिप्त है, उन्हें उचित व्यवहार हेतु प्रेरित करें तथा ऐसे व्यक्तियों में सकारात्मक सोच उत्पन्न करें।

11.2.5 सामाजिक विधानः सामाजिक सुधार के यन्त्र के रूप में :–

समाज में कई ऐसे कारक होते है जो समाज में नैतिकता को प्रभावित करते हैं। ये कारक व्यक्ति, प्रथायें,विषेश समूह आदि के हो सकते हैं। कई प्रथायें ऐसी हे जो समाज में शोषण, असामनता जैसी चीजों की उत्पत्ति करती हैं। सामाजिक विकास हेतु परिवर्तन आवश्यक है तथा इन्हीं कुप्रथाओं, व्यक्तियों आदि में सुधार लाकर

समाज के कल्याण की कल्पना की जा सकती है। समाज में सदा समर्थ द्वारा असमर्थ को दबाया व शोषित करने का प्रयास किया जाता है।

समाजिक विधान ऐसी कुप्रथाओं पर रोक लगाती है तथा व्यक्तियों आदि पर अंकुश लगाती है जो समाज के लिये हानिकारक होते है। समाज के कल्याण हेतु समाज की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक संकीर्णता में सुधार लाकर इसे व्यापक करने का प्रयास सामाजिक विधान के माध्यम से सिद्ध होता है। समाज के ऐसे रीति–रिवाज को किसी के अधिकारों का हनन करते है तथा प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचाने का प्रयास करते हैं, सामाजिक विधान उनमें सुधार की कोशिश करके उन्हें सबके लिये हितकारी व अपनाने योग्य बनाने का प्रयास करता है।

11.3. भारतीय संविधान – महत्व

भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व–सम्पन्न समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिये भारतीय संविधान का निर्माण हुआ। तानाशाह शासन हमेशा से प्रजा के मूल अधिकारों की उपेक्षा व उनका शोषण करता है। अतः भारत के समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विकास धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिये तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए 26 नवम्बर, 1949 को भारतीय संविधान अंगीकृत व अधिनियमित किया गया।

व्यक्ति के मूल अधिकारों यथा स्वतन्त्रता का अधिकार शोषण के विरूद्ध अधिकार, शिक्षा का अधिकार, न्याय पाने का अधिकार आदि को भारतीय संविधान सुरक्षित रखता है तथा इनका शोषण व हनन करने के लिये जिम्मेदार व्यक्ति/संस्था भारतीय कानून के द्वारा दण्डित किये जाते हैं। देश की अखण्डता व एकता तथा इसके नागरिकों में आपसी सद्भाव, भाईचारे की भावना बनाये रखने में भारतीय संविधान मदद करता है। यदि संविधान का अस्तित्व न हो तथा इसके अन्तर्गत निर्दिष्ट तत्वों की जानकारी लोगों को न हो तथा इन्हें मानने हेतु नागरिकों को बाध्यता न हो तो अमीर और अमीर होगा तथा बंचितों का शोषण अधिकतम होगा। लोगों को अपने जीवन स्तर में सुधार करने के स्वतन्त्र अवसर नहीं प्राप्त होंगे तथा सत्ता की डोर कुछ विशेष हाथों तक ही सीमित होकर रह जायेगी।

11.3.1 मूल अधिकार

इस भाग में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, राज्य के अंतर्गत भारत की सरकार और संसद तथा राज्यों में से प्रत्येक राज्य की सरकार और

विधान मण्डल तथा भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन सभी स्थानीय और अन्य प्राधिकारी हैं।

11.3.2 मूल अधिकारों से असंगत या उनका अल्पीकरण करने वाली विधियां –

1. इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले भारत के राज्यक्षेत्र में प्रवृत्त सभी विधियां उस मात्रा तक शून्य होगी जिस तक वे इस भाग के उपबंधों से असंगत हैं।
2. राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बनाएगा जो इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीनती है या न्यून करती है और इस खण्ड के उल्लंघन में बनाई गई प्रत्येक विधि उल्लंघन की मात्रा एक शून्य होगी।
3. इस अनुच्छेद में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो –

क) विधि के अन्तर्गत भारत के राज्यक्षेत्र में विधि का बल रखने वाला कोई अध्यादेश, आदेश, उपविधि, नियम, विनियम, अधिसूचना, रूढ़ि या प्रथा है ;

ख) प्रवृत्त विधि के अन्तर्गत भारत के राज्यक्षेत्र में किसी विधान–मण्डल या अन्य सक्षम प्रधिकारी द्वारा इस संविधान के प्रारम्भ से पहले पारित या बनाई गई विधि है जो पहले ही निरसित नहीं कर दी गई है, चाहे ऐसी कोई विधि या उसका कोई भाग उस समय पूर्णतया या विशिष्ट क्षेत्रों में प्रवर्तन में नहीं हैं।

4. इस अनुच्छेद की कोई बात अनुच्छेद 368 के अधीन किए गये इस संविधान के किसी संशोधन को लागू नहीं होगी।

11.3.3 समता का अधिकार

विधि के समक्ष समता – राज्य, भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।

धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध –

1. राज्य, किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म,मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।
2. कोई नागरिक केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर, के संबंध में किसी भी नियोग्यता, दायित्व, निर्बधन या शर्त के अधीन नहीं होगा –

(क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश या

(ख) पूर्णतः या भागतः राज्य निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, संड़कों और सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग।

3. इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य कों स्त्रियों और बालको के लिए कोईविषेश उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।
4. इस अनुच्छेद की या अनुच्छेद 29 के खंड (2) की कोई बात राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछडे हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गो की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोईविषेश उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।
5. इस अनुच्छेद की या अनुच्छेद 19 के खड (1) के उप–खण्ड (छ) की कोई बात राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछडे हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गो की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए विधि द्वारा कोईविषेश उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी जहां तकविषेश उपबंध शैक्षिक संस्थाओं में प्रवेश से सम्बन्धित है उनमें निजी शैक्षिक संस्थाएं चाहे वे राज्य द्वारा अनुदानित या गैर–अनुदानित है, जो अनुच्छे 30 के खण्ड (1) मे वर्णित निर्दिष्ट अल्प संख्यक शैक्षिक संस्थाओं से भिन्न हैं।

11.3.4 लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता –

1. राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी।
2. राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न उससे विभेद किया जाएगा।
3. इस अनुच्छेद की कोई बात संसद् को कोई ऐसी विधि बनाने से निवारित नहीं करेगी जो किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र की सरकार के या उसमें के किसी स्थानीय या प्राधिकारी के अधीन वाले किसी वर्ग या वर्गो के पद पर नियोजन या नियुक्ति के संबन्ध में ऐसे नियोजन या नियुक्ति से पहले उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के भीतर निवास विषयक कोई अपेक्षा विहित करती है।
4. इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को पिछडे हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदो के आरक्षण के लिए उपबंघ करने से निवारित नहीं करेगी।

4 (क) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के पक्ष में जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, राज्य के अधीन सेवाओं में (किसी वर्ग या वर्गो के

पदों पर प्रोन्नति के मामलों में जेष्ठता परिणाम से) आरक्षण के लिए उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।

4 (ख) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को किसी वर्ष में किन्हीं न भरी गई ऐसी रिक्तियों को, जो खण्ड (4) या खण्ड (4क) के अधीन किए गए आरक्षण के लिए किसी उपबंध के अनुसार उस वर्ष में भरी जाने के लिये आरक्षित है, किसी उत्तरवर्ती वर्ष या वर्षो में भरे जाने के लिए पृथक वर्ग की रिक्तियों के रूप में विचार करने से निवारित नहीं करेगी और ऐसे वर्ग की रिक्तियों पर उस वर्ष की रिक्तियों की कुल संख्या के सम्बन्ध में पचाय प्रतिशत आरक्षण की अधिकतम सीमा का अवधारण करने के लिए विचार नहीं किया जाएगा।

5. इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी जो यह उपबंध करती है कि किसी धार्मिक या सांप्रदायिक संस्था के कार्यकलाप से संबन्धित कोई पदधारी या उसके शासी निकाय का कोई सदस्य किसी विशिष्ट धर्म का मानने वाला या विशिष्ट संप्रदाय का ही हो।

11.3.5 अस्पृश्यता का अंत –

अस्पृश्यता का अंत किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। ''अस्पृश्यता'' से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा।

11.3.6 उपाधियों का अंत –

1. राज्य, सेना या विद्या संबंधी सम्माान के सिवाय और कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा।
2. भारत का कोई नागरिक किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि स्वीकार नहीं करेगा।
3. कोई व्यक्ति, जो भारत का नागरिक नहीं हैं, राज्य के अधीन लाभ या विश्वास के किसी पद को धारण करते हुए किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि राष्ट्रपति की सहमति के बिना स्वीकार नहीं करेगा।
4. राज्य के अधीन लाभ या विश्वास का पद धारण करने वाला कोई व्यक्ति किसी विदेशी राज्य से या उसके अधीन किसी रूप में कोई भेंट, उपलब्धि या पद राष्ट्रपति की सहमति के बिना स्वीकार नहीं करेगा।

11.3.7 स्वातंत्र्य अधिकार

11.3.7.1. वाक्–स्वातंत्र्य आदि विषयक कुछ अधिकारों का संरक्षण –

. सभी नागरिकों का –

(क) वाक् स्वातंत्र और अभिव्यक्ति–स्वातंत्रय का,

(ख) शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का

(ग) संगम या संघ बनाने का,

(घ) भारत के राज्य क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का,

(ड) भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का, और

(च) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का अधिकार होगा।

11.3.7.2.. अपराधों के लिए दोषसिद्धि के सम्बन्ध में संरक्षण

1. कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए तब तक सिद्धदोष नहीं ठहरया जाएगा, जब तक कि उसने ऐसा कोई कार्य करने के समय, जो अपराध के रूप में आरोपित है, किसी प्रवृत्त विधि का अतिक्रमण नहीं किया है या उससे अधिक शास्त्रि का भागी नहीं होगा जो उस अपराध के किए जाने के समय प्रवृत विधि के अधीन अधिरोपित की जा सकती थी।
2. किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित और दंडित नहीं किया जाएगा।
3. किसी अपराध के लिए अभियुक्त किसी व्यक्ति को स्वयं अपने विरूद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।

- प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण – किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।
- शिक्षा का अधिकार – राज्य, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले सभी बालकों के लिए निः शुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का ऐसी रीति में जो राज्य विधि द्वारा, अवधारित करे, उपबन्ध करेगा।)

11.3.7.3 कुछ दशाओं में गिरफ्तार और निरोध से संरक्षण –

किसी व्यक्ति को जो गिरफ्तार किया गया है, ऐसी गिरफ्तारी के कारणों से यथाशीघ्र अवगत कराए बिना अभिरक्षा मे निरूद्ध नहीं रखा जाएगा या अपनी रूचि के विधि व्यवसायी से परामर्श करने और प्रतिरक्षा कराने के अधिकार से वंचित नहीं रखा जाएगा।

11.3.4 शोषण के विरूद्ध अधिकार

11.3.4.1 मानव के दुर्व्यापार और बलात्श्रम का प्रतिषेध –

1. मानव का दुर्व्यपार और बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य बलात्श्रम प्रतिषिद्ध किया जाता है और इस उपबंध का कोई भी उल्लंघन अपराध होगा जो विधि के अनुसर दण्डनीय होगा।

2. इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए अनिवार्य सेवा अधिरोपित करने से निवारित नहीं करेगी। ऐसी सेवा अधिरोपित करने में राज्य केवल धर्म, मूलवंश, जाति या वर्ग या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

11.3.4.2 कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध –

चौदह वर्ष से कम आयु के किसी बालक को किसी कारखाने या खान में काम करने के लिए नियोजित नहीं किया जाएगा या किसी अन्य परिसंकटमय नियोजन में नहीं लगाया जाएगा।

धर्म की स्वतन्त्रा का अधिकार

11.3.4.3. अंतः करण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतन्त्रता

1. लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की स्वतंत्रता का और धर्म के अबाँध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक होगा।
2. इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी विद्यमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या राज्य को कोई ऐसी विधि बनाने से निवारित नहीं करेगी जो–

(क) धार्मिक आचरण से संबद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक या अन्य लौकिक क्रियाकलाप का विनियमन या निर्बंधन करती है।

(ख) सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए या सार्वजनिक प्रकार की हिंदुओं की धार्मिक संस्थाओं को हिंदुओं के सभी वर्गो और अनुभागों के लिए खोलने का उपबंध करती है।

स्पष्टीकरण 1 – कृपाण धारण करना और लेकर चलना सिक्ख धर्म के मानने का अंग समझा जाएगा।

स्पष्टीकरण 2 – खण्ड (2) के उपखण्ड (ख) में हिंदुओं के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि उसके अंतर्गत सिक्ख, जैन या बौद्ध धर्म के मानने वाले व्यक्तियों के प्रति निर्देश है और हिन्दुओं की धार्मिक संस्थाओं के प्रति निर्देश का अर्थ तदनुसार लगाया जाएगा।

11.3.4.4. धार्मिक कार्यो के प्रबन्ध की स्वतंत्रता – लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी अनुभाग को –

(क) धार्मिक और पूर्त प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना और पोषण का,

(ख) अपने धर्म विषयक कार्यो को प्रबंध करने का,

(ग) जंगम और स्थावर संपत्ति के अर्जन और स्वामित्व का, और

(घ) ऐसी संपत्ति का विधि के अनुसार प्रशासन करने का, अधिकार होगा।

11.3.5 संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार

11.3.5.1. अल्पसंख्यक–वर्गो के हितों का संरक्षण –

1. भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को जिसकी अपनीविषेश भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार होगा।
2. राज्य द्वारा पोषित या राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा।
3. शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गो का अधिकार
4. धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक–वर्गो को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।

11.3.5.2. ख. कुछ अधिनियमों और विनियमों का विधिमान्यकरण – अनुच्छेद 31 (क) के विशिष्ट उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, नवीं, अनुसूची में विनिर्दिष्ट अधिनियम और विनियमों में से और उनके उपबंधों में से कोई इस आधार पर शून्य या कभी शून्य हुआ नहीं समझा जाएगा कि वह अधिनियम, विनियम या उपबंध इस भाग के किन्हीं उपबंधों द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी से असंगत है या उसे छीनता है या न्यून करता है और किसी न्यायालय या अधिकरण के किसी प्रतिकूल निर्णय, डिक्री या आदेश के होते हुए भी, उक्त अधिनियमों और विनियमों में से प्रत्येक, उसे निरसित या संशोधित करने की किसी सक्षम विधान मण्डल की शक्ति के अधीन रहते हुए प्रवृत्त बना रहेगा।

11.3.5.3 ग. कुछ निदेशक तत्वों को प्रभावी रखने वाली विधियों की व्यावृत्ति –

अनुच्छेद 13 में किसी बात के होते हुए भी, कोई विधि, जो भाग 4 में अधिकथित सभी या किन्ही तत्वों को सुनिश्चित करने के लिए राज्य की नीति को प्रभावी करने वाली है, इस आधार पर शून्य नहीं समझी जाएगी कि वह अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी से असंगत है या उसे छीनती है या न्यून करती है और कोई विधि, जिसमें यह घोषणा है कि वह ऐसी नीति को प्रभावी नहीं करती हैं :

परन्तु जहां ऐसी विधि किसी राज्य के विधानमण्डल द्वारा बनाई जाती है वहां इस अनुच्छेद के उपबंध उस विधि को तब तक लागू नहीं होंगे जब तक ऐसी विधि

को, जो राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखी गई है, उसकी अनुमति प्राप्त नहीं हो गई है।

31 घ. राष्ट्र विरोधी क्रियाकलाप के संबंध में विधियों की व्यावृत्ति – संविधान (तैतालीसवा संशोधन) अधिनियम, 1977 की धारा 2 द्वारा (13–4–1978) से निरसित।

11.3.7 संवैधानिक उपचारों का अधिकार

. इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए उपचार –

1. इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए समुचित कार्यवाहियों द्वारा उच्चतम न्यायालय में समावेदन करने का अधिकार प्रत्याभूत किया जाता है।
2. इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिए उच्चतम न्यायालय को ऐसे निर्देश या आदेश या रिट, जिनके अन्तर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार–पृच्छा और उत्प्रेषण रिट है, जो भी समुचित हो, निकालने की शक्ति होगी।
3. उच्चतम न्यायालय को खण्ड (2) द्वारा प्रदत्त शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, संसद्, उच्चतम न्यायालय द्वारा खण्ड (2) के अधीन प्रयोत्तव्य किन्हीं या सभी शक्तियों का किसी अन्य न्यायालय को अपनी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर प्रयोग करने के लिए विधि द्वारा सशक्त कर सकेगी।
4. इस संविधान द्वारा अन्यथा उपबंधित के सिवाय, इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत अधिकार निलंबित नहीं किया जाएगा।

   32 क. राज्य विधियों की सांविधानिक वैधता पर अनुच्छेद 32 के अधीन कार्यवाहियों में विचार न किया जाना – संविधान (तैंतालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1977 की धारा 3 द्वारा (13–04–1978) से निरसित ।
5. इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों का, बलों आदि को लागू होने में, उपांतरण करने की संसद् की शक्ति – संसद्, विधि द्वारा, अवधारण कर सकेगी कि इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से कोई –

(क) सशस्त्र बलों के सदस्यों को, या

(ख) लोक व्यवस्था बनाए रखने का भारसाधन करने वाले बलों के सदस्यों को, या

(ग) आसूचना या प्रति आसूचना के प्रयोजनों के लिए राज्य द्वारा स्थापित किसी ब्यूरों या अन्य संगठन में नियोजित व्यक्तियों को, या

(घ) खण्ड (क) से खण्ड (ग) में निर्दिष्ट किसी बल ब्यूरों या संगठन के प्रयोजनों के लिए स्थापित दूरसंचार प्रणाली में या उसके संबंध में नियोजित व्यक्तियों को लागू होने में, किस विस्तार तक निर्बधित या निराकृत किया जाए जिससे उनके कर्तव्यों का उचित पालन और उनमें अनुशासन बनारहना सुनिशिचित रहे।

34. जब किसी क्षेत्र में सेना विधि प्रवृत्त है तब इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों का निर्बधन – इस भाग के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, संसद् विधि द्वारा संघ या किसी राज्य की सेवा में किसी व्यक्ति की या किसी अन्य व्यक्ति की किसी ऐसे कार्य के संबंध में क्षतिपूर्ति कर सकेगी जो उसने भारत के राज्य क्षेत्र के भीतर किसी ऐसे क्षेत्र में, जहां विधि प्रवृत्त थी, व्यवस्था के बनाए रखने या पुनः स्थापन के संबंध में किया है या ऐसे क्षेत्र में सेना विधि के अधीन पारित दंडादेश, दिए गए दंण्ड आदिष्ट समपहरण या किए गए अन्य कार्य को विधिमान्य कर सकेगी।

35. इस भाग के उपबंधों को प्रभावी करने के लिए विधान – इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी –

(क) संसद् को शक्ति होगी और किसी राज्य के विधान मण्डल को शान्ति नही होगी कि वह–

i. जिन विषयों के लिए अनुच्छेद 16 के खण्ड (3), अनुच्छेद 32 के खण्ड (3), अनुच्छेद 33 और अनुच्छेद 34 के अधीन संसद् विधि द्वारा उपबंध कर सकेगी उनमें से किसी के लिए, और

ii. ऐसे कार्यो के लिए, जो इस भाग के अधीन अपराध घोषित किए गए हैं, दण्ड विहित करने के लिए, विधि बनाए और संसद् इस संविधान के प्रारंभ के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र ऐसे कार्यो के लिए, जो उपखण्ड ;पपद्ध में निर्दिष्ट है, दण्ड विहित करने के लिए विधि बनाएगी ;

(ख) खंड (क) के उपखण्ड ;पद्ध में निर्दिष्ट विषयों में से किसी से संबंधित या उस खण्ड के उपखण्ड ;पपद्ध में निर्दिष्ट किसी कार्य के लिए दण्ड का उपबंध करने वाली कोई प्रवृत्त विधि, जो भारत के राज्यक्षेत्र में इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले प्रवृत्त थी, उसके निबंधंनों के और अनुच्छेद 372 के अधीन उसमें किए गए किन्हीं अनुकूलनों और उपांतरणों के अधीन रहते हुए

तब तक प्रवृत्त रहेगी जब तक उसका संसद् द्वारा परिवर्तन या निरसन या संशोधन नहीं कर दिया जाता है।

स्पष्टीकरण – इस अनुच्छेद में, ''प्रवृत्त विधि'' पद का वही अर्थ है जो अनुच्छेद 372 में हैं।

11.4 राज्य की नीति के निदेशक तत्व

परिभाषा – इस भाग में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, ''राज्य'' का वही अर्थ है जो भाग 3 में हैं।

इस भाग में अंतर्विष्ट तत्वों का लागू होना – इस भाग में अंतर्विष्ट उपबंध किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होगें किन्तु फिर भी इनमें अधिकथित तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि बनाने में इन तत्वों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा।

राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा –

- राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करें, भरसंक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा।
- राज्य, विशिष्टतया, आय की असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा और न केवल व्यष्टियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों के समूहों के बीच भी प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा।
- राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व – राज्य अपनी नीति का, विशिष्टतया, इस प्रकार संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से –

- पुरूष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो
- समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वमित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो जिससे सामूहिक हित का सर्वोतम रूप से साधन हो ;
- आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी संकेंद्रण न हो;
- पुरूषों और स्त्रियों दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन हो;

- पुरूष और स्त्री कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हों;
- बालकों को स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएं दी जाएं और बालकों और अल्पवय व्यक्तियों की शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षा की जाए।
- समान न्याय और निः शुल्क विधिक सहायता – राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करें कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और वह, विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निः शुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।
- **ग्राम पंचायतों का संगठन** – राज्य ग्राम पंचायत का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उनको ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों।
    - कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार – राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर, काम पाने के शिक्षा पाने के और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और निःशक्तता तथा अन्य अनर्ह अभाव की दशाओं में लोक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का प्रभावी उपबंध करेगा।
    - काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबंध – राज्य काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता के लिए उपबंध करेगा।
    - कर्मकारों के लिए निर्वाह मजदूरी आदि – राज्य, उपयुक्त विधान या आर्थिक संगठन द्वारा या किसी अन्य रीति से कृषि के, उद्योग के या अन्य प्रकार के सभी कर्मकारों को काम, निर्वाह मजदूरी, शिंष्ट जीवनस्तर और अवकाश का सम्पूर्ण उपभोग सुनिश्चित करने वाली काम की दशाएं तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्राप्त कराने

का प्रयास करेगा और विशिष्टतया ग्रामों में कुटीर उद्योगों को वैयक्तिक या सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयास करेगा।

- उद्योगों के प्रबंध में कर्मकारों का भाग लेना – राज्य किसी उद्योग में लगे हुए उपक्रमों, स्थापनों या अन्य संगठनों के प्रबंध में कर्मकारों का भाग लेना सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त विधान द्वारा या किसी अन्य रीति से कदम उठाएगा।

- नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता – राज्य, भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा।
- छः वर्ष से कम आयु के बालकों के लिए प्रारम्भिक बाल्यावस्था देख–रेख और शिक्षा का उपबंध – राज्य सभी बालकों के लिए छह वर्ष की आयु पूरी करने तक, प्रारम्भिक बाल्यावस्था देख–रेख और शिक्षा देने के लिए उपबन्ध करने का प्रयास करेगा।)
- अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गो के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की अभिवृद्धि – राज्य, जनता के दुर्बल वर्गो के, विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों कीविषेश सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी संरक्षा करेगा।
- पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊंचा करने तथा लोक स्वास्थ्य का सुधार करने का राज्य का कर्तव्य – राज्य, अपने लोगों के पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊंचा करने और लोक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में मानेगा और राज्य, विशिष्टतया, मादक पेयों और स्वास्थ्य के लिए हानिकरक औषधियों के, औषधीय प्रयोजनों से भिन्न उपभोग का प्रतिषेध करने का प्रयास करेगां
- कृषि और पशुपालन का संगठन – राज्य, कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संगठित करने का प्रयास करेगा और विशिष्टया गायों और बछडों तथा अन्य दुधारू और वाहक पशुओं की नस्लों के परिरक्षण और सुधार के लिए और उनके वध का प्रतिषेध करने के लिए कदम उठाएगा

- पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा – राज्य, देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।
    - राष्ट्रीय महत्व के संस्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण – संसद द्वारा बनाई गई विधि द्वारा या उसके अधीन राष्ट्रीय महत्व वाले घोषित किए गए कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरूचि वाले प्रत्येक संस्मरक या स्थान या वस्तु का, यथास्थिति, लुंठन, विरूपण, विनाश, अपसारण, व्ययन या निर्यात से संरक्षण करना राज्य की बाध्यता होगी।
    - कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण – राज्य की लोक सेवाओं में, न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने के लिए राज्य कदम उठाएगा।
    - अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि –

राज्य –

(क) अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि का,

(ख) राष्ट्रो के बीच न्यायसंगत और सम्मानपूर्ण संबंधों को बनाए रखने का,

(ग) संगठित लोगों के एक दूसरे से व्यवहारों में अंतरराष्ट्रीय विधि और संधि – बाध्यताओं के प्रति आदर बढाने का, और

(घ) अंतरराष्ट्रीय विवादों के माध्यस्थम् द्वारा निपटारे के लिए प्रोत्साहन देने का, प्रयास करेगा।

11.5 मूल कर्तव्य

---

51 क. मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधन का पालन करे और उसके आदर्शो, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गान का आदर करें।

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शो को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करें;

(ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे ;

(घ) देश की रक्षा करे और आहवादन किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करें;

(ड) भारत के सभी लोगो में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध है ;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करें ;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करें और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे ;

(त्र) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले।

(ट) यदि माता–पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करें।

11.6 भारतीय संविधान एवं सामाजिक विधान :–

भारतीय संविधान भारत के प्रत्येक नागरिक को उसके शिक्षा, धर्म, विचार आदि की स्वतन्त्रता का पक्षधर है। भारतीय संविधान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति समान है तथाा समाज के संसाधनों पर सबका समान है। अपने विकास हेतु प्रयास करना सबका अधिकार है तथा इस कार्य हेतु सभी समाज में उपस्थित संसाधनों का उपयोग करने हेतु स्वतन्त्र है। भारतीय संविधान के अनुसार कोई किसी की स्वतन्त्रता में बाधक नहीं बन सकता तथा न ही किसी को मनमाने ढंग से बंधक बना सकता है। समाज में सभी स्वतन्त्र है तथा किसी का कोई शोषण नहीं कर सकता है।

सामाजिक विधानों के माध्यम से संविधान द्वारा व्यक्ति को प्रदत्त अधिकारों की सुरक्षा करने का प्रयास किया जाता है। सामाजिक विधान इस बात पर दृष्टि रखने हेतु बनाये व लागू किये गये है कि कहीं कोई किसी का शोषण न कर सके। समाज में सभी वर्गो यथा महिलायें, वृद्ध, बच्चे, अपंग आदि हेतु अलग–अलग बनोय गयेविषेश कानून उनकी सामाजिक सुरक्षा हेतु प्रतिबद्ध है तथा इन कानूनों का उल्लंघन किये जाने पर सामाजिक विधानों द्वारा दण्डित किये जाने का भी प्रावधान है।

सामाजिक विधान तथा भारतीय संविधान दोनों ही भारत के नागरिकों की सामाजिक सुरक्षा हेतु बनाये व पारित किये गये हैं। व्यक्तियों को एक मानवविषेश रूप में पहचान देकर उनकी प्रतिष्ठा का सम्मान करना, उनके मूल अधिकारों की रक्षा करना तथा सभी के लिये विकास के समान अवसर उपलब्ध कराना इन दोनों

के प्रमुख उद्देश्य हैं। भारत का प्रत्येक नागरिक इनका पालन करने हेतु प्रतिबद्ध है तथा इन्हें न मानने वाले व्यक्तियों को कानून व्यवस्था के माध्यम से दण्डित किये जाने का प्रावधान है।

11.7 सार संक्षेप

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि सामाजिक विधानों की सामाजिक नियन्त्रण, सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक न्याय, सामाजिक रक्षा तथा सामाजिक सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका है तथा ये सारी उपकल्पनायें बिना सामाजिक विधानों को क्रियान्वित किये प्राप्त नहीं की जा सकती। भारतीय संविधान भारतीय नागरिकों के लिए अपने विभिन्न अनुच्छेदों के माध्यम से सुरक्षा प्रदान करने का कार्य करता है, यह भी स्पष्ट है। भारतीय संविधान तथा सामाजिक विधान दोनों ही समाज की कुरीतियों एवं असमानता को समाप्त कर, समाज में समानता, एकता तथा भाईचारे की भावना का निर्माण करके समाज के विकास हेतु तत्पर है, यह उपरोक्त तथ्यों से पूर्णतः स्पष्ट है। बिना सामाजिक विधानों को क्रियान्वित किये भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों को सुरक्षित रखना अत्यन्त ही दुष्कर है।

11.8 अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय संविधान के महत्व को परिभाषित करते हुए संविधान के अन्तर्गत आने वाले मूल अधिकारों को स्पष्ट कीजिए।
2. राज्य की नीति के निदेशक तत्व क्या है? संक्षेप में बताइये।
3. सामाजिक विधानों का भारतीय संविधान से क्या सम्बन्ध है? व्याख्या करें।
4. संक्षिप्त टिप्पणी दे :–
    I. सामाजिक विधान; सामाजिक नियन्त्रण के यंत्र के रूप में
    II. सामाजिक विधान; सामाजिक परिवर्तन के यंत्र के रूप में
    III. सामाजिक विधान; सामाजिक न्याय के यंत्र के रूप में
5. सामाजिक सुधार तथा सामाजिक रक्षा, किस प्रकार से सामाजिक संविधान से सम्बन्धित है? विस्तृत करें।

11.9 पारिभाषिक शब्दावली

Legislation	विधान	Fundamental	मूल अधिकार

		rights	
Instrument	यंत्र	Directive principles	निदेशक तत्व
Social control	सामाजिक नियन्त्रण	State policy	राज्य की नीति
Social change	सामाजिक परिवर्तन	Social	सामाजिक
Social justice	सामाजिक न्याय	Provided	प्रदत्त
Social defense	सामाजिक रक्षा	Equality	स्मानता
Social reform	सामाजिक सुधार	Unity	एकता
Constitution	संविधान	Brotherhood	भाईचारा

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय संविधान, द्वितीय संस्करण, कानून प्रकाशन, जोधपुर (2010)।
2. शास्त्री वी0वी0, सोशल लेजिस्लेशन्स इन इण्डिया (1955)।
3. प्रथम पंचवर्षीय योजना (1952)

इकाई – 12

सामाजिक न्याय : भूमिका व इसके लाभ विषय

Social Justice: Role and Scope

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 परिचय
12.2 सामाजिक न्याय
12.2 सामाजिक न्याय का सामाजिक कानून से सम्बन्ध
12.3 सामाजिक न्याय एवं नागरिक अधिकार
12.4 सामाजिक न्याय एवं मानवाधिकार
12.5 सामाजिक न्याय व इसके लाभ विषय
12.6 सार संक्षेप
12.7 अभ्यास प्रश्न –लघु , विस्तृत
12.8 पारिभाषिक शब्दावली
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

1. सामाजिक न्याय की अवधारणा जान सकेंगे।
2. सामाजिक विधान व सामाजिक न्याय के बीच सम्बन्ध को विस्तृत कर सकेंगे।
3. सामाजिक न्याय के लाभ विषयों को लिख सकेंगे।
4. संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिक अधिकारों को वर्णित कर सकेगे।
5. मानवाधिकारों के बारे में उल्लिखित कर सकेंगे।
6. सामाजिक न्याय हेतु मूल अधिकारों एवं मानवाधिकारों के महत्व का वर्णन कर सकेंगे।

12.1 सामाजिक न्याय

अवधारणा – सामाजिक न्याय का अभिप्राय सामान्यतः समतावादी समाज या संस्था की स्थापना करने से है जो समानता, एकता तथा भाईचारा के सिद्धान्तों पर आधारित हो, मानवाधिकारों के मूल्यों को समझती हो तथा प्रत्येक मनुष्य की प्रतिष्ठा को पहचानने में सक्षम हो।

सामाजिक न्याय व इसकी वर्तमान अवधारणा सर्वप्रथम 1840 में जेसुइट लुइगी टपरेली ने थामस एक्वैनस की शिक्षण विधियों के आधार पर दी थी। पुनः सामाजिक न्याय को 1848 में एन्टोनियो रोसमिनी–सरवाती ने भी इसी रूप में परिभाषित किया।

सामाजिक न्याय के सन्दर्भ में अनेक विद्वानों के अलग – अलग दृष्टिकोण हैं जिन्हें मुख्यतः तीन रूपों में व्यक्त किया जा सकता है जो निम्नवत् हैं :–

1. सामाजिक अनुबन्ध स्वरूप
2. व्यवहारिक स्वरूप
3. श्रद्धा स्वरूप

1. **सामाजिक अनुबन्ध स्वरूप**– इस मत के अनुसार जो ज्यादा उत्पादक होगा वह ज्यादा सुख प्राप्त करेगा साथ ही जो उत्पादक नहीं होगा वह कष्ट सहेगा तथा वह समाज से बाहर हो जायेगा परन्तु अपनी खामियों के चलते यह मत सर्वव्यापी नहीं हैं

2. **व्यवहारिक स्वरूप**– इस मत के अनुसार, समाज वह संस्था है जो अपने सदस्यों के लिये व उनकी आवष्यकताओं की पूर्ति के लिये वस्तुयें उपलब्ध कराता है। प्रत्येक सदस्य इसमें अकेला होता है। इसका प्राथमिक उद्‌देश्य वस्तुओं एवं सेवाओं को ज्यादा से ज्यादा उत्पादित करना है। समाजकार्य इस मत को स्वीकार नहीं करता क्योंकि इसके अनुसार इस दृश्टिकोण को अपनाने से सामाजिक स्वार्थ के लिये व्यक्तिगत सुखों तथा सामूहिक सुखों का त्याग करना आवश्यक है। इस प्रकार यह मत व्यवसायीकरण को बढ़ावा देता है।

3. **श्रद्धात्मक स्वरूप**– इस मत के अनुसार, समाज व्यक्तियों के लिये सामाजिक व्यवस्थाओं के माध्यम से सम्मान का भाव निहित रखता है। समाज में सभी लोग समान है तथा संसाधनों पर सभी का समान अधिकार है। समाज का यह कर्तव्य है कि वह सभी को सुखी रहने का समान अवसर प्रदार करे। इसी मत के आधार पर मूल अधिकार, राजनीतिक समानता, अधिकारों का विल आदि पारित हुये तथा अस्तित्व मे आये।

सामाजिक न्याय मानवाधिकारों एवं समानता की अवधारणा पर आधारित है तथा साथ ही प्रगतिषील करों, आय तथा सम्पत्ति पुनर्वितरण के माध्यम से आर्थिक समतावाद को सम्मिलित करती है।

सामाजिक न्याय सभी व्यक्तियों हेतु समान अवसर व सही परिस्थिति की अवस्था है। सामाजिक न्याय में भौतिक साधनों का समान वितरण, सामाजिक–षारीरिक–मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास सम्मिलित होता है। इसका उद्देश्य असमानता को हराकर तथा अस्वीकार करके समाज का पूर्ण रूप से उत्थान करना है। इसके दो लक्ष्य होते हैं –

1 अन्याय का अन्त

2. व्यक्ति के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, षैक्षिक आदि स्तरों पर असमानता का अन्त

एक व्यक्ति के महत्व का विचार समाजकार्य के ही अन्तर्गत आता हैं यही विचार जब हम कोई समस्या समाधानित करते हैं तो वृहद रूप में उत्पन्न होकर वैयक्तिक सेवा कार्य के रूप में समस्या–समाधान में सहायता करता है। समाज कार्य यह मानता है कि व्यक्ति विभिन्न प्रकार की क्षमताओं का कोश है। यह व्यक्ति की योग्यता, सामाजिक, न्याय, कानूनी अधिकार, प्रजातन्त्र प्रणाली/संस्थानों आदि के माध्यम से आवश्यकताओं की पूर्ति पर बल देता है तथा साथ ही दूसरों के अधिकारों का हनन न हो इस पर भी ध्यान देता है। व्यक्ति को केवल निर्देशन व मार्गदर्षन की आवश्यकता होती है। उसे इस बात का पूरा अवसर मिलना चाहिये कि वो अपनी पूरी क्षमता दिखा सके।

सामाजिक कार्य के लिये सामाजिक न्याय एक मजबूत स्तम्भ की भाँति है। सामाजिक न्याय समानता, स्वतन्त्रता तथा एकता में विष्वास रखता है तथा शोषण के विरूद्ध है। कल्याण कार्यक्रमों को समाज के दबे–कुचले, षोशित वर्ग हेतु चलाया गया है तथा सामाजिक कानून असमानता व अन्याय से लड़ने हेतु लागू किये गये हैं।

सामाजिक न्याय के मुख्य उद्देश्य निम्नवत् हैं –

1. वंचित एवं षोशित व्यक्तियों को सुखी व समृद्ध जीवन प्राप्त कराना तथा सामाजिक जीवन के प्रति उनके योगदान को उचित सम्मान व ध्यान देना।

2. आय व सम्पत्ति का सम्बन्ध सीधे कार्य व मेहनत से होना तथा यह पीढ़ी दर पीढ़ी आधारित हस्तान्तरित नहीं होने देना।

3. व्यक्तियों को सही अवसर देकर आर्थिक असमानता कम करना तथा व्यक्तियों के सुख व क्षमता को प्रोत्साहित करना।

4. शिक्षा व स्व–विकास हेतु समान अवसर उपलब्ध कराना।
5. एक राजनैतिक मतलब हेतु ही सामाजिक न्याय का प्रयोग न होने देना।
6. जन–आवष्यकताओं के अनुसार ही उत्पादन एवं सेवाओं को उपलब्ध कराना व उनका प्रबन्धन करना।

12.2 सामाजिक न्याय का सामाजिक कानून से सम्बन्ध

सामाजिक कानून को बनाने का उद्‌देश्य एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने से है तथा एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना अथवा अवधारणा की कल्पना तब तक नहीं की जा सकती जब तक उस राज्य में सामाजिक न्याय अनुपस्थित हो। समय–समय पर संसद में सामाजिक कानूनों को लागू करने का ध्येय संविधान द्वारा प्रदत्त मानव अधिकारों की सुरक्षा करना व उनका षोशण न होने देने के लिये है।

सामाजिक न्याय समानता, एकता तथा भाईचारे की भावना में समाहित होती है। सामाजिक न्याय के वृहत् विचारधारा में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक समानता षामिल होता है। सभी को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण स्वतन्त्र अधिकार है तथा जाति, वर्ग या रंग के आधार पर किसी को इससे वंचित नहीं किया जा सकता। हम की भावना से प्रेरित होकर व्यक्ति समाज में सबको अपने से जुड़ा हुआ महसूस करता है तथा अपने लिये इस प्रकार विकास हेतु प्रयत्न करता है कि पूरे समाज का भी विकास उसमें निहित हो। कोई भी व्यक्ति समाज में दूसरे व्यक्ति का सम्मान करता है तथा उसे भी व्यक्ति विशेश समझता है। सामाजिक न्याय को सामाजिक कानून से जोड़ते हुये व्यक्ति कभी यह नहीं समझता कि वह जो कुछ भी कह रहा है अथवा कर रहा है वही सही है, बाकी सब गलत है तथा सब उससे छोटे हैं, बल्कि वह सबको साथ लेकर विकास कार्य में अपनी भी सहभागिता देता है तथा अपने सहभागी की इच्छा भी कार्य में निहित करता है। ऐसा करके जहाँ वह साथी की प्रतिशठा बनाये रखता है वही सामाजिक न्याय की अवधारणा के अनुसार समाज में किसी भी व्यक्ति विशेश का सामाजिक, आर्थिक, दैहिक व मानसिक षोशण भी रूक जाता है।

आर्थिक न्याय का अभिप्राय इस आशय से है कि उत्पादन की प्रक्रिया में किसी एक व्यक्ति विशेश के नियन्त्रण में दूसरे व्यक्तियों का जीवन नहीं होना चाहिये। व्यक्तियों को अपनी इच्छा व क्षमता से कार्य करने का अधिकार होना चाहिये तथा प्रत्येक को उसकी मेहनत और शिक्षा के अनुसार पुरस्कार मिलना चाहिये।

सामाजिक सेवायें व्यक्तियों की योग्यता एवं आवश्यकता के अनुसार उपलब्ध होनी चाहिये। यदि उत्पादन की प्रक्रिया किसी व्यक्ति विशेश के ही हाथ में रहेगी या केवल नियन्त्रण एक ही हाथ में आधारित होगा तो इस बात की पूरी सम्भावना है कि वह मनमाने ढंग से दूसरों का षोशण करेगा तथा संविधान के द्वारा व्यक्ति को प्रदत्त अधिकारों का हनन होगा। सामाजिक न्याय की अवधारणा व्यक्ति को संसाधनों पर समान अधिकार प्रदान करने से है।

राजनैतिक न्याय से तात्पर्य इस बात से है कि प्रत्येक व्यक्ति को नीति निर्धारण व नीति निर्माण में समान अवसर व समान अधिकार मिलने चाहिये। सभी को राजनैतिक सामर्थ्य हासिल करने के लिये समान अवसर प्राप्त होना चाहिये तथा यह राजनैतिक षक्ति सभी के विकास के लिये होनी चाहिये। सभी व्यक्ति अपने विचार, भावनाओं की अभिव्यक्ति हेतु स्वतन्त्र होने चाहिये तथा साथ ही जनहित में संगठन बनाने हेतु सभी सक्षम होने चाहिये। सरकार में सभी की समान सहभागिता होनी चाहिये तथा जनता द्वारा चुनी गयी सरकार को जनहित में कार्य करना चाहिये। संसद में लिये गये फैसले व नीतियाँ साथ ही सरकारी कार्यक्रमों का लक्ष्य समाज का षोशित, दबा हुआ, वंचित और गरीबतम वर्ग होना चाहिये जिससे अन्य लोगों की भाँति वह भी अपने व अपने परिवार की विकास की बात सोच सके तथा सरकार की ओर से दी गयी मदद को उचित प्रकार के विकास कार्य में लगा सके।

सामाजिक कानून के तहत चलाये जा रहे सामाजिक सुरक्षा, सामाजिक रक्षा, सामाजिक सहायता जैसे मुद्दों पर आधारित कार्यक्रम सामाजिक न्याय के तहत ऐसे लोगों के लिये बनाये गये हैं जो समाज के सबसे निम्न वर्ग से नाता रखते हैं चाहे वो आर्थिक हो, राजनैतिक हो या सामाजिक हो तथा उन्हीं को समाज में समान अधिकार व विकास हेतु समान अवसर दिलाने की बात सामाजिक न्याय करता है।

12.3 सामाजिक न्याय एवं नागरिक अधिकार

1. सभी मानव स्वतन्त्र पैदा है तथा प्रतिष्ठा एवं अधिकारों में समान है
2. किसी के भी साथ अमानवीय व्यवहार, क्रूरता नहीं किया जा सकता, न ही किसी को सताया या दण्डित करने का किसी को अधिकार है।
3. कानून के समझ सभी समान है तथा बिना किसी भेदभाव के कानून की सुरक्षा के हकदार हैं।
4. किसी को मनमाने ढंग से उसकी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा।
5. सभी अपने विचारों एवं भावनाओं की अभिव्यक्ति हेतु स्वतन्त्र है।

6. किसी को भी मनमाने ढ़ग से जबरदस्ती कैदी नहीं बनाया जा सकता।

7. किसी की भी गोपनीयता, परिवार अथवा घर में मनमाने ढंग से हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता और न ही किसी के सम्मान पर आघात किया जा सकता है।

8. सभी को प्रत्येक राज्य की सीमा में घूमने व घर बनाने का स्वतन्त्र अधिकार प्राप्त है।

9. सभी को अपने देश की जन–सुविधाओं/सेवाओं को समान रूप से पाने का अधिकार है।

10. राज्य, किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म,मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

11. राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी।

12. कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए तब तक सिद्धदोष नहीं ठहरया जाएगा, जब तक कि उसने ऐसा कोई कार्य करने के समय, जो अपराध के रूप में आरोपित है, किसी प्रवृत्त विधि का अतिक्रमण नहीं किया है या उससे अधिक शास्त्रि का भागी नहीं होगा जो उस अपराध के किए जाने के समय प्रवृत विधि के अधीन अधिरोपित की जा सकती थी।

13. प्रत्येक व्यक्ति को, जो गिरफ्तार किया गया है और अभिरक्षा में निरूद्ध रखा गया है, गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर ऐसी गिरफ्तारी से चौबीस घंटे की अवधि में निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाएगा और ऐसे किसी व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के प्राधिकार के बिना उक्त अवधि से अधिक अवधि के लिए अभिरक्षा में निरूद्ध नहीं रखा जाएगा।

14. मानव का दुर्व्यपार और बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य बलात्श्रम प्रतिषिद्ध किया जाता है और इस उपबंध का कोई भी उल्लंघन अपराध होगा जो विधि के अनुसर दण्डनीय होगा।

15. चौदह वर्ष से कम आयु के किसी बालक को किसी कारखाने या खान में काम करने के लिए नियोजित नहीं किया जाएगा या किसी अन्य परिसंकटमय नियोजन में नहीं लगाया जाएगा।

16. राज्य में मान्यताप्राप्त या राज्य–निधि से सहायता पाने वाली शिक्षा संस्था में उपस्थित होने वाले किसी व्यक्ति को ऐसी संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिए या ऐसी संस्था में या उससे संलग्न स्थान में की

जाने वाली धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिए तब तक बाध्य नहीं किया जाएगा जब तक कि उस व्यक्ति ने, या यदि वह अवयस्क है तो उसके संरक्षक ने, इसके लिए अपनी सहमति नहीं दे दी है।

17. राज्य द्वारा पोषित या राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा।

18. राज्य, विशिष्टतया, आय की असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा और न केवल व्यष्टियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों के समूहों के बीच भी प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा।

19. राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करें कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और वह, विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निः शुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।

20. राज्य काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता के लिए उपबंध करेगा।

21. राज्य, उपयुक्त विधान या आर्थिक संगठन द्वारा या किसी अन्य रीति से कृषि के, उद्योग के या अन्य प्रकार के सभी कर्मकारों को काम, निर्वाह मजदूरी, शिंष्ट जीवनस्तर और अवकाश का सम्पूर्ण उपभोग सुनिश्चित करने वाली काम की दशाएं तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्राप्त कराने का प्रयास करेगा और विशिष्टतया ग्रामों में कुटीर उद्योगों को वैयक्तिक या सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयास करेगा।

22. राज्य, भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा।

23. संविधान का पालन करे और उसके आदर्शो, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गान का आदर करें।

24. स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शो को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करें;

25. भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे ;

26. देश की रक्षा करे और आहवादन किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करें;

27. भारत के सभी लोगो में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध है ;
28. हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करें ;
29. प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करें और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे;
30. वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें;
31. सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे ;
32. व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले।
33. यदि माता–पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करें।

12.4 सामाजिक न्याय एवं मानवाधिकार

समाज में आपसी सद्भाव, भाईचारा, दूसरों के प्रति आदर, भाव, परस्पर समझ के माध्यम से शान्ति एवं सद्भाव बनाये रखने के उद्देश्य को पूरा करने हेतु सामाजिक न्याय की कल्पना की गयी है। किसी का कोई अहित न कर सके, न ही किसी व्यक्ति को शोषित अथवा विकास से वंचित कर सके, इस हेतु भारतीय संविधान द्वारा भारत के प्रत्येक नागरिक हेतु व्यवस्था प्रदान की गयी है। ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की पवित्र धारणा व सिद्धान्तों को समाज द्वारा आत्मसात करने हेतु यह आवश्यक है कि समाज में जाति, धर्म, लिंग आदि दुर्भावनाओं पर आधारित भेदभाव पूर्ण रूप से समाप्त हो। समानता की स्थिति को बिना सोचे व व्यवहार मे लाये, ''हम की भावना'' का स्थायित्व कल्पना मात्र है। एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना हेतु यह आवश्यक है कि समाज में सभी संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों का लाभ प्राप्त करें।

मानवाधिकार प्रत्येक व्यक्ति को एक अलग पहचान उपलब्ध कराते है। व्यक्ति की स्वयं में महत्ता को समझकर उसे समाज में प्रतिष्ठा बनाये रखने हेतु व्यक्तिगत अधिकारों को उपलब्ध कराना तथा साथ ही उसकी उचित विकास की भावना का ध्यान रखना मानवाधिकारों का उद्देश्य है। व्यक्ति के मानवाधिकारों का हनन किसी

भी सूरत में न होने पाये, इस हेतु मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया है, जिसका कार्य मानवाधिकारों की पहॅुच प्रत्येक तक सुनिश्चित कराना है तथा यदि ऐसे मामले संज्ञान में आये जहॉ मानवाधिकारों का हनन हो रहा है अथवा हुआ है तो उसकी निष्पक्ष जॉच करके दोषी को कानूनी रूप से दण्ड दिलाना है। सामाजिक न्याय की भावना ध्यान में रखकर, भारत के प्रत्येक नागरिक को प्राप्त प्रमुख मानवाधिकार निम्नवत् है –

1. सभी मानव स्वतन्त्र पैदा है तथा प्रतिष्ठा एवं अधिकारों में समान है तथा उन्हें आपस में एक दूसरे के साथ भाईचारे की भावना के साथ रहना चाहिये।
2. सभी को स्वतन्त्रता पूर्वक जीने तथा सुरक्षा का अधिकार है।
3. कोई दास नहीं रख सकता दासता व इसके सारे अवयव प्रतिबन्धित है।
4. किसी के भी साथ अमानवीय व्यवहार, क्रूरता नहीं किया जा सकता, न ही किसी को सताया या दण्डित करने का किसी को अधिकार है।
5. सभी को कानून के समक्ष प्रत्येक जगह एक व्यक्ति की भॉति पहचान पाने का अधिकार है।
6. कानून के समझ सभी समान है तथा बिना किसी भेदभाव के कानून की सुरक्षा के हकदार हैं। ऐसे अधिकार के हनन से बचाव हेतु बिना किसी भेदभाव के सभी को सुरक्षा के पूर्ण अधिकार है।
7. यदि किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का, जो कि इसे संविधान अथवा कानून द्वारा प्रदत्त है, का हनन हो रहा है तो उसे राष्ट्रीय न्याय प्रणाली के समक्ष इसके सक्षम उपाय हेतु अपना पक्ष रखने का अधिकार है।
8. किसी को भी मनमाने ढ़ग से जबरदस्ती कैदी नहीं बनाया जा सकता।
9. सभी को अपने कर्तव्यों एवं अधिकारों को जानने तथा अपने ऊपर लगे अपराधिक दोषों के लिये निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र न्याय प्रणाली द्वारा जन सुनवायी प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार है।
10. दण्डनीय अपराध द्वारा अभियोजित सभी व्यक्तियों को, उनके बचाव हेतु प्रदत्त आवश्यक न्याय प्रक्रिया द्वारा जब तक दोष सिद्ध न हो जाय, कानून के अनुसार तब तक अपराधी नहीं माने जाने का अधिकार है।
11. किसी की भी गोपनीयता, परिवार अथवा घर में मनमाने ढंग से हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता और न ही किसी के सम्मान पर आघात किया जा सकता है। सभी को इस प्रकार के आघातों के प्रत्युत्तर में बचाव का कानूनी अधिकार है।

12. सभी को प्रत्येक राज्य की सीमा में घूमने व घर बनाने का स्वतन्त्र अधिकार प्राप्त है। सभी को अपने देश सहित किसी भी देश को छोड़ने व फिर वापस आने का अधिकार है।

13. सभी को राष्ट्रीयता का अधिकार है किसी को भी मनमाने ढंग से उसकी राष्ट्रीयता से वंचित नहीं किया जा सकता और न ही उसके राष्ट्रीयता परिवर्तित करने के अधिकार से वंचित किया जा सकता है।

14. जाति, राष्ट्रीयता या धर्म के आधार पर बिना किसी बाध्यता के वयस्क पुरूषों व महिलाओं शादी करने तथा परिवार पाने का अधिकार है। दोनो को शादी करने को व इसकों भंग करने हेतु समान अधिकार प्राप्त है। शादी पति–पत्नि की पूर्ण व स्वतन्त्र राय तथा सहमति पर ही होगी। परिवार, समाज की प्राकृतिक एवं मौलिक समूह इकाई है तथा राज्य व समाज इसकी सुरक्षा हेतु उत्तरदायी है।

15. सभी को एकल रूप से अथवा दूसरों के साथ संघ बनाकर अपनी सम्पत्ति बनाने का अधिकार है।

16. किसी को मनमाने ढंग से उसकी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा।

17. सभी को स्वतन्त्र रूप से अपनी बुद्धि का प्रयोग करने, सोचने व धर्म सम्बन्धी अधिकार है। इस अधिकार के अन्तर्गत धर्म अथवा विचार–परिवर्तन तथा स्वतन्त्र रूप से स्वयं अथवा समुदाय के अन्य व्यक्तियों के साथ धर्म व विचार की शिक्षा, पूजा–अर्चना, उसका प्रचार प्रसार करने का अधिकार है।

18. सभी अपने विचारों एवं भावनाओं की अभिव्यक्ति हेतु स्वतन्त्र है। इस अधिकार में बिना किसी हस्तक्षेप के विचारों को ग्रहण करने की स्वतन्त्रता है तथा यह विचार किसी भी माध्यम द्वारा ग्रहण किये जा सकते है।

19. सभी को शान्तिपूर्वक सभा करने का अधिकार है तथा किसी को भी किसी संस्था/संघ से जुड़ने के लिये विवश नहीं किया जा सकता।

20. किसी को भी सीधे तौर पर अथवा स्वतन्त्र रूप से निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा अपने देश की सरकार में शामिल होने का अधिकार है।

21. सभी को अपने देश की जन–सुविधाओं/सेवाओं को समान रूप से पाने का अधिकार है।

22. लोगों की इच्छा सरकारी तन्त्र का आधार होगी, तथा यह इच्छा सरकार बनाने में चुनावों के माध्यम से व्यक्त होगी। ये चुनाव गुप्त वोट अथवा समान स्वतन्त्र चुनाव प्रणाली के माध्यम से सार्वजनिक व निष्पक्ष रूप से होगे।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मानवाधिकार के अन्तर्गत निहित सभी पक्ष किसी न किसी दृष्टि से व्यक्ति को समाज में एक अलग पहचान दिलाकर उसके अधिकारों, विचारों, भावनाओं स्वतन्त्रता, सम्मान आदि की सुरक्षा करने हेतु दृढसंकल्प है, जिससे सामाजिक न्याय का स्थायित्व समाज में निरन्तर बना रहे तथा उत्पादन की प्रक्रिया एक हाथ में निहित होकर दूसरों का शोषण करना रोका जा सके।

12.5 सामाजिक न्याय व इसके लाभ विषय

जैसा कि यह सर्वविदित है कि सामाजिक न्याय एक ऐसा विषय है जो समाज में सभी को आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक रूप से समान सिद्ध करता है। आज के परिवेश में समाज में व्याप्त सारी अनियमितताओं एवं बुराईयों के कारण जहॉ अधिकतर व्यक्ति किसी न किसी प्रकार से सामाजिक न्याय की भावना मात्र से भी परे हैं वही इस विषय का लाभ कुछविषेश व्यक्तियों तक ही सीमित होकर रह गया है। जनसंख्या की वृद्धि तथा द्वितीयक सुखों की प्राप्ति की कामना ऐसे तत्व है जो अनायास ही समाज को सामाजिक न्याय से वंचित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहे है। जिसके पास सामर्थ्य है वो सभी क्षेत्रों में आगे है तथा वंचितों का शोषण भी करता है।

इसके साथ ही कहीं न कहीं पूर्वी एवं पश्चिमी सभ्यताओं के मेल व आपसी स्वीकारिता के कारण भी कुछ स्तर तक सामाजिक न्याय की स्थिति परस्पर विचलित हो रही है। उदाहरणतः हम अगर खाप पंचायतों का मुददा ले तो सहज ही देखते है कि दो सभ्यताओं के मिलाप से समाज पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ता है। भारत में सामाजिक न्याय को पूर्ण स्तर तक पाने व अपनाने के लिये सभी के पास कुछ न कुछ रूकावटें सम्मुख खड़ी है। कुछ विषय ऐसे है जहॉ न्याय की बात होती है तथा यदि वहॉ समानता एवं स्पष्टता सामने आ जाय तो सामाजिक न्याय की परिकल्पना को भारतीय परिवेश में सिद्ध किया जा सकता है किसी न किसी रूप में भारत के सभी नागरिक सामाजिक न्याय के लाभ विषयों से जुड़े हुये से प्रतीत होते है। यदि हम सामाजिक न्याय के लाभ विषय को स्पष्ट रूप से समझने की कोशिश करें तो आधुनिक भारत में सामाजिक न्याय के लाभ विषय मुख्य रूप से निम्नवत् दिखायी पडते है–

1. एच0आई0वी0 / एड्स उन्मुख बालचिकित्सा
2. मादक दवा दुर्व्यवहार
3. लिंग आधारित भेदभाव
4. शहरी स्वच्छता की स्थिति

5. कूड़ा – कचरा प्रबन्धन
6. असंगठित श्रमिकों की समस्याये
7. शिक्षा का अधिकार
8. नगरीकरण की समस्या
9. अवयस्कों की अपराधिक गतिविधियों में संलिप्तता
10. भारत में कुष्ठ रोग समस्या
11. भारत में औरतों की दुर्दशा
12. भ्रूण हत्या
13. शिशु मृत्यु दर
14. खाप पंचायत
15. महिलाओं में धूम्रपान एवं मघपान
16. गरीबी
17. जन स्वास्थ्य तन्त्र
18. राज्यों में गरीबी का विकास
19. लिंग अनुपात
20. बाल दुर्व्यवहार
21. किशोरावस्था स्वास्थ्य कार्यक्रम
22. शिक्षा की स्थिति
23. सम्मान सुरक्षा हेतु हत्यायें
24. शिक्षा का एकीकरण
25. काम करने वाली महिलाओं की समस्यायें
26. भूखमरी
27. महिलाओं हेतु शिक्षा से जुड़ी समस्याये
28. वेश्यावृत्ति
29. मद्यपान
30. बाल अपराध
31. अश्पृश्यता
32. पेयजल समस्या
33. बाल कुपोषण
34. वृद्धावस्था की समस्यायें
35. वेश्विक खाद्य भण्डार में कमी
36. जनसंख्या वृद्धि

37. भारत में क्षयरोग
38. भारत में पोलियों
39. भारत में एड्स
40. भिक्षावृत्ति
41. बाढ़ नियंन्त्रण
42. महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराध
43. किशोरों के प्रति बढ़ते अपराध
44. ग्रामीण परिवेश में स्वास्थ्य की स्थिति
45. जन्म एवं मृत्यु पंजीकरण
46. रोजगार के नये आयाम
47. व्यवहारिक शिक्षा की स्थिति
48. भ्रष्टाचार
49. ग्रामीण सन्दर्भ में स्वच्छता की महत्ता
50. मातृ–मृत्यु दर एवं स्वास्थ्य स्थिति
51. व्यावसायिक शिक्षा की स्थिति
52. स्थायी विकास
53. वर्ग संघर्ष
54. शिक्षा दर
55. महिला – सशक्तिकरण
56. दहेज व्यवस्था
57. बाल श्रम
58. ग्रामीण परिवेश में लड़कियों की शिक्षा स्थिति
59. बेरोजगारी
60. मानव–तस्करी
61. घरेलू दिशा
62. दलितों की स्थिति
63. प्रवसन

12.6 सार संक्षेप

इस प्रकार हम देखते है कि वृद्ध, महिला, बच्चे, युवा, अपंग सहित समाज के सभी वर्गो के लिये सामाजिक न्याय को ध्यान में रखकर कुछ न कुछ क्षेत्र ऐसा है जहॉ सुधार की आवश्यकता है अर्थात् दूसरे शब्दों में समाजिक न्याय को समाज में

स्थापित करने हेतु सभी के लिये कुछ न कुछ कार्य शेष है। नित जीवन में कई मुद्दे ऐसे है जहॉ पर समाज का कोई न कोई वर्ग अपने आपकों अन्य की अपेक्षा वंचित महसूस करता है। यद्यपि सरकार इस हेतु अनेक योजनाओं के माध्यम से प्रयास करती है परन्तु इन सभी कल्याण कार्यक्रमों में सम्बन्धित व्यक्ति/वर्ग को प्रतिभाग सुनिश्चित करना चाहिये। यदि व्यक्ति (वंचित) स्वयं अपनी पहुॅच कल्याण कार्यक्रमों तक सुनिश्चित कर पाने में अक्षम है अथवा जानकारी प्राप्त करने के प्रति उदासीन होगा तो वह सदा ही अपने विकास व न्याय से वंचित रह जायेगा।

सामाजिक न्याय के उपरोक्त लाभ विषय भारतीय परिवेश में सामाजिक न्याय हेतु प्रस्तावित क्षेत्रों की ओर संकेत करते है। ये सारे मुद्दे ऐसे है जहॉ समाज, सामाजिक न्याय से बहुत दूर दिखायी पड़ता है यद्यपि कई क्षेत्र ऐसे है जहॉ बहुत ज्यादा अन्तर आया है परन्तु ज्यादातर मुद्दों पर आज भी सुधार की आवश्यकता है।

इस प्रकार इस इकाई के द्वारा सामाजिक न्याय की अवधारणा का संज्ञान होता है साथ ही सामाजिक विधान एवं सामाजिक न्याय में क्या सम्बन्ध है ? यह भी ज्ञात होता है। सामाजिक न्याय के लाभ विषयों का व्यापक क्षेत्र क्या है तथा कैसा है ? जहॉ इसके बारें में विस्तृत जानकारी हुयी वहीं मानवाधिकारों तथा नागरिक अधिकार सामाजिक न्याय दिलाने व एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने हेतु नितान्त आवश्यक है, यह भी विस्तृत रूप से ज्ञात हुआ। इन अधिकारों के माध्यम से ही समाज में कई प्रकार के भेद को पूर्णतः दूर करके, समाज में एक व्यक्ति को उचित सम्मान तथा विकास के पूर्ण अवसर उपलब्ध कराये जा सकते है। सामाजिक न्याय के लाभ विषय प्रत्येक उस क्षेत्र की ओर इंगित करते है जहॉ समाज के किसी न किसी वर्ग/व्यक्ति को सुधार हेतु आवश्यकता है।

12.7 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक न्याय की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए सामाजिक विधान से यह किस भॉति सम्बन्धित है? उल्लेख कीजिए।
2. सामाजिक न्याय के प्रमुख मुद्दे क्या है? विस्तृत रूप में स्पष्ट करें।
3. मूल अधिकारों तथा मानवाधिकारों का सामाजिक न्याय में क्या योगदान है? व्याख्या करिये।

12.8 पारिभाषिक शब्दावली

Social justice	सामाजिक न्याय	Social contract	सामाजिक अनुबन्ध

Concept	अवधारणा	Utility view	व्यवहारिक स्वरूप
Social legislation	सामाजिक विधान	Respect view	श्रद्धात्मक स्वरूप
Issues	लाभ विषय	Bias	भेदभाव
Constitution	संविधान	Unorganized	असंगठित
Welfare state	कल्याणकारी राज्य	Urbanization	नगरीकरण
Human rights	मानवाधिकार	Laprosy	कुष्ठ
Civil nrights	नागरिक अधिकार	Infant	शिश
Alcoholism	मघपान	Child abuse	बाल दुर्व्यवहार
Tuberculosis	क्षयरोग	Starvation	भूखमरी
Juvenile	किशोर	Prostitution	वेश्यावृत्ति
Vocational	व्यावसायिक	Global	वेश्विक
Conflict	संघर्ष	Dowery	छहेज

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह आर0वी0, इन्टिग्रेटेड मेथड आफ सोशल वर्क, यूनिवर्सिटी बुक हाउस पब्लिकेशन, जयपुर, (2008)।
2. सिंह सुरेन्द्र एवं सूदन कृपाल, होरिज्वाएन्स ऑफ सोशल वर्क, ज्योत्सना पब्लिकेशन, लखनऊ (1986)।
3. मार्को डी0, जोसेफ पी0 एवं रिचमण्ड सैमुअल आर0, इक्विलिटी एण्ड जस्टिस, अमेरिकन रिव्यू , आटम्न, (1977)
4. भारतीय संविधान, द्विभाषी संस्करण, कानून प्रकाशक, जोधपुर (2010)।

इकाई – 13

महिलाओं एवं बच्चों से सम्बन्धित विधान

Legislations Pertaining to Women and Children

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्यः
13.1 परिचय
13.2 महिलाओं से सम्बद्ध कानून
13.3 सार संक्षेप
13.4 अभ्यास प्रश्न
13.5 पारिभाषिक शब्दावली
संदर्भ ग्रन्थ सूची

13.0 उद्देश्यः

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

1. भारतीय परिवेश में महिलाओं को हो रही समस्याओं के क्षेत्र को जान सकेंगे।
2. महिलाओं को भारतीय परिवेश में प्राप्त सुरक्षा हेतु लागू कानूनों को समझ व लिख सकेगे।
3. बच्चों हेतु व्याप्त समस्याओं को समझ सकेंगे।
4. भारतीय कानून जो बच्चों की सुरक्षित करने हेतु सरकार द्वारा क्रियान्वित किये गये है, वर्णित कर सकेगे।

13.1 परिचय

इस इकाई में निहित तत्वों में भारतीय परिवेश में बच्चों एवं महिलाओं की सुरक्षा एवं देखरेख को ध्यान में रखते हुये क्रियान्वित किये जा रहे कानूनों का विस्तृत उल्लेख है। बच्चों एवं महिलाओं को प्रत्येक दिन के जीवन, कार्य–स्थल, घरेलू परिस्थितियों आदि में हो रही विभिन्न समस्याओं की एक स्थिति स्पष्ट है, जिस पर

ध्यान देकर केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा नियमित कानूनों व उनके प्रावधानों का उल्लेख विस्तृत किया जा चुका है। इन कानूनों को पढ़कर एक सामाजिक–कार्यकर्ता विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न कानूनों के माध्यम से बच्चों एवं महिलाओं के खिलाफ हो रहे अन्याय, शोषण आदि के विरूद्ध वकालत करके तथा उन्हें स्वयं कानूनों की जानकारी उपलब्ध कराकर उनकी सहायता कर सकता है।

13.2 महिलाओं से सम्बद्ध कानून

13.2.1. मातृत्व लाभ अधिनियम (1961)

यह अधिनियम पूरे भारत वर्ष में महिला कर्मचारियों पर लागू होता है। यह अधिनिमय अधिकतम 12 सप्ताह का अवकाश उन महिलाओं को प्रदान करता है जो मातृत्व सुख प्राप्त करती है। यह लाभ प्राप्त करने वाली महिला माँ बनने के दिन के ठीक पहले 6 सप्ताह तथा माँ बनने वाले दिन के ठीक बाद 6 सप्ताह का अवकाश लाभ प्राप्त कर सकती है।

13.2.2. मातृत्व एवं पितृत्व लाभ (1972) (सरकारी कर्मचारियों हेतु)

केन्द्रीय सरकारी कर्मचारी (प्रत्यक्ष रूप से भारत सरकार के अधीन) इस प्रकार के लाभ के अन्तर्गत आते है। इस लाभ के अनुसार महिला कर्मचारी को प्रथम दो जीवित सन्तानों के जन्म के समय 180 दिनों का मातृत्व अवकाश प्राप्त होगा। इस अवकाश के दौरान कर्मचारी को वही वेतन देय होगा जो अवकाश लेने के ठीक पहले देय रहेगा।

13.2.3. सन्तान देख भाल लाभ

छठवें केन्द्रीय वेतन आयोग ने महिला कर्मचारियों हेतु पारिवारिक जिम्मेदारियों के निर्वहन हेतु सुविधा देने की सिफारिश की है। इसी आधार पर केन्द्र सरकार के अधीन कार्यरत ऐसी महिला कर्मचारियों को अधिकतम 2 वर्ष का सन्तान देखभाल अवकाश दिया जाता है जिनकी सन्तानें 18 वर्ष से कम आयु की हों। यह अवकाश सम्पूर्ण सेवाकाल के बीच कभी भी केवल दो बच्चों की बीमारी, पढ़ाई, परीक्षा या उनकी परवरिश जैसे कारणों हेतु लिया जा सकता हैं।

13.2.4. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम (1948)

कारखनों में तथा ऐसे अन्य प्रतिष्ठानों में कार्यरत कर्मचारियों एवं उनके आश्रितों को बिमारी, सन्तान प्राप्ति, अपंगता तथा चिकित्सा लाभ हेतु आर्थिक सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से यह अधिनियम 1948 में लागू हुआ। यह अधिनियम ऐसे कारखानों में लागू होता है जो वर्ष भर शक्ति का प्रयोग करके चलते है तथा उनमें

10 या उससे अधिक कर्मचारी कार्य करते है साथ ही यह उन कारखानों पर भी लागू होता है जो बीस अथवा इससे अधिक कर्मचारी कार्यरत रखते है भले ही वह शक्ति प्रयोग न करते हों। इस लाभ को प्राप्त करने हेतु कर्मचारी व कारखाने का मालिक दोनों योगदान देते है तथा अनेक प्रकार की सुविधायें योग्य कर्मचारियों को बिमारी, मातृत्व लाभ, अपंगता जैसी अवधियों के दौरान आर्थिक सहायता प्रदान करके की जाती है। सभी चिकित्सा सुविधायें केवल चुनिन्दा कर्मचारी राज्य बीमा अस्पतालों, चिकित्सा इकाईयों एवं स्वतन्त्र चिकित्सा व्यवसायी द्वारा ही प्रदान की जाती है।

वर्तमान समय में इस अधिनियम में लक्ष्य की गयी मजदूरी सीमा रू0 7500 से बढाकर रू0 10,000 प्रति माह कर दी गयी है अर्थात् यह अधिनियम केवल उन्हीं कर्मचारियों पर लागू होता है जिनकी आय रू0 10,000 प्रति माह तक है।

इस अधिनियम के अनुसार बीमित महिला कर्मचारी, गर्भाधान अथवा सम्बन्धित बिमारी के समय अपने वेतन का सत्तर प्रतिशत भाग मातृत्व लाभ के रूप में प्राप्त कर सकती है। साथ ही यदि कर्मचारी मातृत्व लाभ प्राप्त कर रही है तो इस समयावधि में उसे नौकरी से हटाया या दण्डित नहीं किया जा सकता है।

13.2.5. मजदूरी भुगतान अधिनियम (1936)

यह अधिनियम प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मजदूरी के निश्चित एवं नियमित भुगतान हेतु लागू किया गया है। यह अधिनियम बनाने का उद्देश्य मनमाने ढंग से नियोक्ता द्वारा मजदूरी दर में अनुपयुक्त कटौती तथा/अथवा मजदूरी भुगतान में अनियमितता व देरी को रोकना है। इस अधिनियम को बनाने व लागू करने के पीछे मंशा नियोक्ता द्वारा किये जा रहे मजदूरों के शोषण को रोकना व मजदूरों को उनके अधिकार व इसके साथ ही पूरी मजदूरी को प्राप्त करने हेतु सक्षम बनाना है।

13.2.6. समान भुगतान अधिनियम (1976)

इस अधिनियम का उद्देश्य महिला कर्मियों को भी पुरूष कर्मियों के समान ही पारिश्रमिक दिलाना है। इस अधिनियम के अनुसार लिंग के आधार पर महिलाओं को पुरूषों से कम कजदूरी का भुगतान नहीं किया जाना चाहिये। भुगतान का आधार शारिरिक क्षमता व महिला–पुरूष न होकर एक व्यक्ति होना चाहियें तथा यह कदापि उचित नहीं कि औरतों को कम मजदूरी इस आधार पर दी जायेगी कि वो पुरूषों की अपेक्षा शारीरिक रूप से कमजोर होती है तथा कार्य करने का सामर्थ्य उनमें कम होता है। साथ ही वो पुरूषों की अपेक्षा कम कार्य निष्पादित कर पाती हैं।

13.2.7. न्यूनतम मजदूरी अधिनियम

भारत सरकार द्वारा 1944 में नियुक्ति श्रमिक जॉच समिति स्थायी श्रम समिति द्वारा तथा भारतीय श्रम सम्मेलन में देश के कुछ उद्योगों और नियोजनों में कानूनी तौर पर मजदूरी नियत करने के प्रश्न पर विस्तार से विचार विमर्श किये गये। समिति एवं सम्मेलन दोनो में कुछ नियोजनों में कानून के अन्तर्गत न्यूनतम मजदूरी की दरें नियत करने और इसके लिये मजदूरी नियतन संयंत्र की व्यवस्था की सिफारिश की ।इन अनुशंसाओं को ध्यान में रखते हुये भारत सरकार ने 1948 में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम बनाया, जो उसी वर्ष देश मे लागू हुआ। समय–समय पर इस अधिनियम में संशोधन भी हुये है। महिलाओं हेतु इस अधिनियम का महत्व इसलिये बढ़ जाता है क्योंकि कार्य के बदले मिलने वाले परिश्रमिक में कहॉ भेदभाव न होने पाये। इस अधिनियम को जिन नियोजनों में लागू किया गया है वहॉ इस अधिनियम के अधीन न्यूनतम मजदूरी भूगतान के निरीक्षण हेतु नियुक्त निरीक्ष कइस बात पर निगरानी रखते है कि लिंग आधारित भेदभाव न होने पाये।

राष्ट्रीय श्रम आयोग की सिफारिशों के अनुसार स्त्रियों के नियोजन के पूर्व ही नियोक्ता को उसकी सुरक्षा व कार्यस्थल पर प्राथमि आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रबन्ध करना आवश्यक होता है। इस कार्य हेतु आयोग ने एक अलग से कानून (सार्विक) भी बनाने की अनुशंसा की है। हॉलाकि यह सम्भव नहीं कि प्रत्येक जगह तथा सभी प्रकार के कार्यो की मजदूरी दर (न्यूनतम) एक दी हो और न ही ऐसा वांछित है। लेकिन, प्रत्येक राज्य में विभिन्न समरूपक्षेत्रों के लिये एक क्षेत्रीय न्यूनतम मजदूरी दर अधिसूचित की जा सकती है। प्रथम तथा द्वितीय राष्ट्रीय श्रम आयोग की सिफारिशो के आधार पर बहुत से प्राविधान इस अधिनियम के पुनरीक्षित किये जाने है, जिनमें प्रथम आयोग की सिफारिशों के अनुसार बदलाव हुये है परन्तु द्वितीय राष्ट्रीय श्रम आयोग (2002) की सिफारिशों की रिपोर्ट अभी तक सरकार के पास विचाराधीन है।

13.2.8. असंगठित मजदूर सामाजिक सुरक्षा अधिनियम (2008)

केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय स्तर पर ऐसी महिलायें जो असंगठित मजदूरी तथा स्व–रोजगार के क्षेत्र में हैं, के लिए यह अधिनियम लागू किया गया है। इस अधिनियम के द्वारा ऐसी महिला कर्मियों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने का ध्येय है। स्थानीय, राज्य तथा केन्द्र स्तर पर असंगठित महिला कर्मचारियों एवं स्व–रोजगार में संलिप्त महिलाओं के कल्याण को ध्यान में रखकर विभिन्न प्रकार की योजनायें चलायी जा रही है। उन्हीं में से एक असंगठित मजदूर सामाजिक

सुरक्षा अधिनियम (2008) भी है जो विभिन्न आकास्मिक विपरीत परिस्थितियों के विरूद्ध महिलाओं को सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराती है।

13.2.9. घरेलू मजदूर अधिनियम 2008 (पंजीकरण, सामाजिक सुरक्षा एवं कल्याण)

घरेलू महिलाओं एवं अन्य घरेलू वयस्क महिला मजदूरों के दोहन को रोकने, काम करने की दशाओं में सुधार तथा उनकी मजदूरी के नियमित भुगतान हेतु यह अधिनियम अस्तित्व में लाया गया है। घरेलू महिला मजदूर असंगठित क्षेत्र में आती है अतः उन्हें व उनके श्रम की पहचान अब तक उपेक्षित है। यद्यपि यह अधिनियम दोनों पुरूष एवं महिला घरेलू मजदूरों पर लागू होता है परन्तु प्रायः यह देखा जाता है कि घरेलू मजदूरी का कार्य पुरूषों की अपेक्षा महिलायें ही ज्यादा करती है। यही कारण है कि यह अधिनियम महिलाओं पर ही आधारित तथा उन्हीं के लियेविषेश रूप से बनाया हुआ प्रतीत होता है। यह अधिनियम राज्य आधारित अधिनियमों में से एक है अतः इस अधिनियम का अनुपालन अभी भी लम्बित हैं।

13.2.10. बागान श्रमिक अधिनियम (1951)

यह अधिनियम बागान श्रमिकों को सुरक्षा तथा कार्य करने की परिस्थितियों को सुगम एवं सृदृढ बनाये रखने के लिये बनाया गया है। इस अधिनियम को बागान श्रमिकों के कल्याण की भावना को ध्यान में रखकर व उनके सुरक्षित कार्य परिस्थिति को सुचारू व सतत् रखा जा सके, इस आशय से लागू किया गया।

बागान श्रमिक अधिनियम ऐसी भूमि पर लागू होता है जहॉ चाय, काफी, खर अथवा किसी और पौधे का उत्पादन 5 हेक्टेयर अथवा इससे अधिक क्षेत्रफल की जमीन पर व्यवसायिक रूप से किया जा रहा हो तथा साथ ही पूर्ववर्ती बारह महीनों के किसी भी दिन उस कार्य क्षेत्र में पन्द्रह अथवा इससे अधिक मजदूरों ने श्रम कार्य किया हो। यह अधिनियम इस बात पर भीविषेश ध्यान देता है कि मजदूरों के पारिश्रमिक का नियमित व पूरा भुगतान हो तथा भुगतान में श्रमिकों को अकारण विलम्ब न हो। नियोक्ता द्वारा श्रमिकों का दोहन न हो, पारिश्रमिक में लिंग आधारित भेदभाव न हो। बागान श्रमिकोंविषेशकर महिलाओं को व उनके आश्रितों को कार्यस्थल पर सुगमता व प्राथमिक सुविधाओं को उपलब्ध कराना भी इस अधिनियम का एक उद्देश्य है जिससे उन्हें करने में किसी प्रतिकूल परिस्थिति का सामना न करना पड़े।

13.2.11. श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम 1923 – सन् 1923 में श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम पारित होने के साथ–साथ, सामाजिक सुरक्षा की शुरूआत हुई। इसके अन्तर्गत कर्मचारियों और उनके आश्रितों को अपने सेवाकाल के दौरान किसी दुर्घटना (व्यवसायजन्य कुछ रोगों समेत) में मृत्यु या अपंग होने की स्थिति में

मुआवजा देने का प्रावधान है। यह अधिनियम रेलवे कर्मचारियों और अधिनियम की अनुसूची दो मैं निर्दिष्ट किसी पद पर कार्यरत व्यक्तियों पर लागू होता है। अनुसूची दो में कारखानों, खानों, बागान, मशीन से चलने वाले वाहनों के संचालन, निर्माण–कार्यो और जोखिम वाले कुछ अन्य व्यवसायों में कार्यरत व्यक्ति शामिल हैं। स्थायी व पूर्ण विकलांगता होने पर न्यूनतम मुआवजा राशि 90 हजार रूपये और मृत्यु होने पर 80 हजार रूपये निर्धारित की गई है। कर्मचारी की आयु और वेतन के हिसाब से, मृत्यु होने पर अधिकतम मुआवजा 4.56 लाख रूपये और स्थायी पूर्ण विकलांगता होने पर 5.48 लाख रूपये निर्धारित किया गया है।

इस कानून के बारे में मजदूरी की कोई सीमा नहीं है। किन्तु यह कानून उन व्यक्तियों पर लागू नही होता जो कर्मचारी बीमा अधिनियम (1948) के अधीन आते हैं।

13.2.12. खान अधिनियम, 1952 – खान अधिनियम, 1952 और इसके तहत निर्मित नियमों और विनियमों में खानों में काम करने वाले श्रमिकों की सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण का प्रावधान रखा गया है। इन प्रावधानों को श्रम मंत्रालय, खान सुरक्षा महानिदेशालय द्वारा लागू करता है। महानिदेशालय का मुख्यालय धनबाद में है और इसके आंचलिक, क्षेत्रीय और उप क्षेत्रीय कार्यालय देश के सभी खनन क्षेत्रों में फैले हुए हैं। इसके मुख्य कार्य हैं – खानों का निरीक्षण, स्थिति की गम्भीरता के अनुरूप सभी घातक और गम्भीर दुर्घनाओं की जॉच–पड़ताल, विभिन्न खानों के परिचालन के सम्बन्ध में कानूनी स्वीकृति, छूट और ढील देना, खान सुरक्षा उपकरणों, यंत्रों और सामग्रियों की स्वीकृति देना तथा संवैधानिक क्षमता प्रमाणपत्र प्रदान करने के लिए परीक्षण की व्यवस्था करना, सुरक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए राष्ट्रीय पुरस्कारों और राष्ट्रीय सुरक्षा सम्मेलनों आदि का आयोजन करना।

13.2.13. कारखाना अधिनियम (1948) – यह अधिनियम कारखाने में कार्यरत श्रमिकों को सुरक्षा स्वास्थ्य उसके कार्यस्थल पर उस समय उपलब्ध कराने हेतु है ज बवह मशीनों के साथ अथवा मशीनों पर कार्य कर रहे हों। यह अधिनियम श्रमिकों को कार्यस्थल पर कार्य करने के समय बेहतर वातावरण तथा कल्याण सुविधाओं को उपलब्ध कराता है। यह अधिनियम कार्य के घंटों को निश्चित करता है जिससे श्रमिकों का नियोक्ता द्वारा दोहन न किया जा सके। साथ ही कार्यावधि के अतिरिक्त कार्य करने पर श्रमिक को अतिरिक्त भुगतान भी दिलाता है। यह अधिनियम युवा पुरूषों व महिलाओं को रोजगार दिलाता है साथ ही मजदूरी भुगतान हेतु लिंग आधारित भेदभाव को भी रोकता है।

यह अधिनियम केवल कारखानों पर लागू होता है जहॉ कारखाना से अभिप्राय ऐसे परिसर से है जहॉ दस या अधिक कर्मकार काम कर रहे हो या पूर्ववर्ती बारह मास के किसी भी दिन काम कर रहे थे और जिसके किसी भाग में विनिर्माण प्रक्रिया, शक्ति की सहायता से की जा रही है या प्राय की जाती है अथवा ऐसे परिसर से है जहॉ बीस या उससे अधिक कर्मकार काम कर रहे है या पूर्ववर्ती बारह मास के किसी दिन काम कर रहे थे और जिसके किसी भाग में निर्माण प्रक्रिया शक्ति की सहायता के बिना की जा रही है या प्रायः की जाती है।

13.2.14. महिलाओं से सम्बन्धित अन्य सामाजिक अधिनियम:

दहेज प्रतिबन्ध अधिनियम (1961)

सती प्रथा निरोधक अधिनिय (1988)

अनैतिक देह व्यापार निरोधक अधिनियम (1956)

आवश्यक विवाह पंजीकरण अधिनियम

गर्भ परीक्षण रोक अधिनियम (1971)

राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम (1990)

भारतीय तलाक अधिनियम (1969)

13.2.15 बच्चों से सम्बन्धित कानून:

समाज में बच्चे अपनी एक अलगविषेश भूमिका का निर्वहन करते है तथा भविष्य की जिम्मेदारी इनके कन्धों पर होती है। इनकी सुरक्षा व शोषण को रोकने हेतु अनेक कानून व अधिकार इन्हें संविधान द्वारा प्रदत्त है। संविधान के विभिन्न मूल अधिकारों व राज्य नीति मे बच्चों हेतु निम्न प्राविधान है –

1. 14 वर्ष की आयु से कम का कोई भी बालक किसी कारखाने, खदान अथवा किसी अन्य जोखिम भरे कार्य में संलिप्त नहीं किया जा सकता।
2. 6 से 14 वर्ष की आयु के बीच के सभी बच्चों को अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना राज्य का महत्वपूर्ण कर्तव्य है।
3. राज्य अपनी नीतियों में इस बात का ध्यान रखे कि कर्मचारियों, पुरूषों और महिलाओं के स्वास्थ्य एवं शक्ति की सुरक्षा हो तथा धन की आवश्यकता के कारण अल्प आयु के बच्चों को ऐसे कार्य के लिये जबरदस्ती न की जाये जो उनके सामर्थ्य का न हो तथा उनके प्रतिकूल हो।
4. जब तक 14 वर्ष की आयु पूरी न हो जाये प्रत्येक बच्चें को निःशुल्क एवं अनिवार्य 10 वर्ष की शिक्षा प्रदान करना राज्य का कर्तव्य है।

बाल श्रम एक ऐसा सामाजिक मुद्दा है जिसके लिये राज्य व केन्द्र दोनो सरकार कानून बनाती व इसका क्रियान्वयन कराती है। अनेक कानून दोनो स्तरों पर बाल श्रम को रोकने हेतु बनाये व अपनाये गये है। उनमें से कुछ प्रमुख बच्चों हेतु कानून निम्नवत है –

13.2.16. बाल श्रम (प्रतिषेध एवं विनियमन) अधिनियम (1986) – यह अधिनियम 16 प्रकार के व्यवसायों व 65 प्रक्रियाओं हेतु बाल श्रम का प्रतिषेध करता है। इन सभी में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चें को काम करना प्रतिबन्धित है क्योंकि ये बच्चों के स्वास्थ्य व जिन्दगी के लिये खतरनाक है। ये सभी व्यवसाय व प्रक्रियायें अधिनियम में विस्तृत रूप में उल्लिखित हैं। अक्टूबर 2006 में सरकार ने बच्चों हेतु घरेलू कार्यो व सड़क के किनारे ढाबों व होटलों में श्रम कार्य करना भी बच्चों हेतु उल्लिखित खतरनाक कार्यो की सूची में शामिल किया है। इस अधिनियम के अनुसार यदि कोई नियोक्ता अपने यहॉ जोखिम भरे कार्यो में व अन्य ऐसे कार्यो जो कि बच्चों के स्वास्थ्य एवं जिन्दगी के लिये हानिकारक हो, में 14 वर्ष की आयु से कम उम्र के बच्चों को संलिप्त करते है तो उन्हें कानून द्वारा दण्ड देने का भी प्राविधान है। साथ ही जहॉ ऐसे बच्चे कार्य कर सकते है वहॉ भी सरकार द्वारा नियोक्ता को प्राथमिक सुविधाओं को उपलब्ध कराने हेतु व उनको किसी भी हालत में शोषित न किया जाय व उन्हें जबरन मजदूरी हेतु मजबूर न किया जाय, निर्देश समय–समय पर दिये जाते है। काम करने के घंटे, कार्यस्थल पर दी जाने वाली सुविधाओं, कार्यस्थल की स्थिति, काम करने की स्थिति, मतभेदों को दूर करने का कार्य, पंजिका बनाना व उसकों नियमित रखना जैसे प्राविधान भी इस अधिनियम में बालश्रम को रोकने के हर सम्भव उपाय हेतु समाहित है।

13.2.17. कारखाना अधिनियम (1948) – यह अधिनियम सभी ऐसे बच्चें जो 14 वर्ष की आयु से कम है, को कारखाने में श्रम करने हेतु प्रतिबंधित करता है तथा यदि किसी नियोक्ता द्वारा मनमाने ढंग से 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को जोखिम भरे काम में किसी कारखाने में श्रम कार्य कराता है तो उसे सरकार द्वारा इस अधिनियम में दण्ड देने का प्राविधान है। 15 से 18 वर्ष की आयु के बीच के वयस्क बच्चें कारखाने में कार्य कर सकते है परन्तु इस अधिनियम के अनुसार ऐसा तभी सम्भव है जब एक प्रमाणित चिकित्साधिकारी उसे स्वस्थ होने का प्रमाण पत्र प्रदान करें। इस अधिनियम में यह भी प्रावधान है कि 15 से 18 वर्ष की आयु के इन बच्चों से मात्र चार घण्टे 30 मिनट का कार्य ही नियोक्ता द्वारा लिया जा सकता है तथा रात में ये किसी भी हालत में काम नहीं करेगें और न ही नियोक्ता जबरदस्ती उनसे रात में श्रम करा सकता है। इसके साथ ही वह कार्यस्थल पर सुरक्षा व प्राथमिक

आवश्यकताओं जैसे स्वच्छता, हवा, पेयजल, प्राथमिक चिकित्सा आदि की भी उचित व्यवस्था करेगा जिससे किसी प्रकार की दुर्घटना न हो तथा यदि दुर्घटना हो भी जाय तो तुरन्त उपचार की व्यवस्था हो। वयस्कों को असुरक्षित मशीनों, धूल व धुएँ से भरी जगहो पर कार्य कराना प्रतिबंधित है। नियोक्ता द्वारा स्वयं अपने श्रमिकों की दशाओं में सुधार के लिये कदम उठाया जाना चाहिये। ऐसा न होने पर श्रमिकों द्वारा सामूहिक रूप से नियोजकों पर दबाव डालना चाहिये तथा सरकार को भी अवगत कराना चाहिये। साथ ही सरकार द्वारा भी श्रमिकों की दशा में मूलभूत व आवश्यक सुधार हेतु समय–समय पर कारखानों का निरीक्षण करके श्रमिकों की रक्षा व बाल श्रम को रोकने हेतु हस्तक्षेप किया जाना चाहिये। समय–समय पर कारखानों की स्थिति का ऑकलन व समाज की स्थिति व आवश्यकता को ध्यान में रखकर इस अधिनियम में बच्चों के कार्य करने हेतु आवश्यक बदलाव किये जाते रहते है।

13.2.18. खदान अधिनियम (1952) – खदान में कार्य करने हेतु यह अधिनियम 18 वर्ष से कम आयु के सभी बच्चों को प्रतिबंधित करता है। पुनः यह अधिनियम इस बात की स्वीकारोक्ति देता है कि कुशल देखरेख में 16 वर्ष की आयु से ऊपर के बच्चें कार्य कर सकते है। इस अधिनियम का उद्‌देश्य 18 वर्ष की आयु के कम बच्चों को सुरक्षा प्रदान करना है। 16–18 वर्ष की आयु के बच्चे जो कि एक प्रमाणित चिकित्साधिकारी से प्रमाण पत्र इस आशय का प्राप्त किये हुये हो कि वो पूर्ण रूप से स्वस्थ है, किसी कुशल प्रशिक्षक की देखरेख में खदान में कार्य सीख सकते है, परन्तु उन्हें पूर्ण रूप से 18 वर्ष से पूर्व श्रमकार्य में संलिप्त होना इस अधिनियम के अनुसार प्रतिबंधित है तथा किसी नियोक्ता द्वारा यदि ऐसा करता हुआ पाया जाता है तो इस कानून के तहत उसे दण्डित करने का प्राविधान है।

13.2.19. न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (1948) – इस अधिनियम में घरेलू मजदूरों सहित सभी क्षेत्रों में कार्यरत श्रमिकों हेतु एक न्यूनतम मजदूरी निश्चित की गयी है। इस नियत मजदूरी से कम पैसा देने पर नियोक्ता को दण्ड देने का प्रावधान है। केन्द्र और राज्य सरकारों को समय–समय पर यह अधिकार है कि वह इस अधिनियम के तहत न्यूनतम मजदूरी दर को पुनरीक्षित कर सके। आन्ध्र प्रदेश जैसे राज्य, जहॉ नियोक्ता बाल मजदूरी को बढ़ावा देकर, उनका शोषण करते है, वहॉ इस अधिनियम को बाल श्रम को रोकने हेतु एक कारगर हथियार लोग मानते है। आन्ध्र प्रदेश जैसे राज्य में बाल श्रम होता है तथा नियोक्ता उन्हें बहुत कम मजदूरी भी देते है। ज्यादातर नियोक्ता छोटे कार्यो हेतु अक्सर बाल श्रम का प्रयोग करते है। घरेलू कार्यो तथा होटलों एवं ढॉवों पर अक्सर यह देखा जाता है कि बाल

मजदूर काम करते है। ऐसा होने का एकमात्र उद्देश्य समान मजदूरी के लिये कम दाम ही होती है।

13.2.20. बच्चों हेतु निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009) – 6 से 14 वर्ष की आयु के बीच के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने हेतु यह अधिनियम बनाया व क्रियान्वित किया गया है। इस अधिनियम में यह भी प्रस्तावित है कि 25 प्रतिशत का आरक्षण प्रत्येक निजी विद्यालय में भी उन बच्चों हेतु होगा जो वंचित व शोषित वर्ग से ताल्लुक रखने वाले होगे। 6 से 14 वर्ष की आयु के बीच के बच्चों को अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराना, सरकार का कर्तव्य है तथा यदि इस वर्ग के बीच का कोई बच्चा अशिक्षित रह जाता है तो सरकार उसके लिये जवाबदेह है। प्रत्येक बच्चों को शिक्षा का अधिकार भारत में संविधान द्वारा प्रदत्त है तथा उसके इस अधिकार को उस तक पहुॅचने की जिम्मेदारी राज्य व केन्द्र सरकार की बनती है।

13.2.21. किशोर न्याय (देखभाल एवं सुरक्षा) अधिनियम (2000) – 18 वर्ष से कम आयु के किशोर बच्चों हेतु व उनके अधिकार को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से यह अधिनियम बनाया गया तथा 2002 में इस अधिनियम को पुनरीक्षित किया गया है। इस अधिनियम का भाग 26 किशोरों व अन्य बाल मजदूरों के शोषण से सम्बन्धित है तथा इस भाग में शोषण को रोकने हेतु बनाये गये नियम उल्लिखित है। इसमें इस बात का भी उल्लेख है कि यदि कोई नियोक्ता या व्यक्ति किशोर या बच्चें को खतरनाक व जोखिम भरे कार्यों में संलिप्त रखता है, उसे बंधक बनाकर रखता है व शोषण करता है, उसकी आय उससे छीन लेता है अथवा उचित मजदूरी का उसे भुगतान नहीं करता है तथा किशोर तथा बाल मजदूरी की मजदूरी का उपयोग स्वयं के हित में करता है तो उसे इस अधिनियम के अनुसार तीन वर्ष तक के कारावास अथवा अर्थदण्ड अथवा दोनो द्वारा दण्डित किया जा सकता है। कुछ राज्यों में जिनमें महाराष्ट्र व कर्नाटक शामिल है, इस अधिनियम का प्रयोग बहुत सारे नियोक्ताओं एवं व्यक्तियों को दण्डित करने का माध्यम बने है तथा उनकी गिरफ्त से बहुत सारे किशोरों एवं बाल मजदूरों को मुक्त कराया गया है एवं उन्हें दण्डित किया गया है। वे नियोक्ता ऐसे थे जिन्हें केवल इसी अधिनियम के अनुसार दण्डित किया जा सका और अन्य अधिनियमों की रूपरेखा व प्रावधानों की पकड़ से बाहर थे। इस प्रकार इसविषेश अधिनियम की सहायता से अनेक बाल मजदूरों एवं किशोरों को दासता से व शोषण से मुक्त कराकर उन्हें विकास, पुनर्वास हेतु सहायता प्रदान की गयी तथा उन्हें बेहतर जीवन यापन का वातावरण प्रदान किया गया। लक्ष्य समूह की देखभाल के साथ–साथ उन्हें समाज में सुरक्षा उपलब्ध

कराने के उद्‌देश्य से इस अधिनियम को बनाया गया है। बच्चों (18 वर्ष से कम) को बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य मिले तथा समाज में उनकों शोषित होने से बचाकर, बुराइयों से बचाकर समाज के विकास के लिये प्रोत्साहित किया जाये व प्रयोग किया जाय, इस अधिनियम का यही सार है।

13.2.22. बाल अधिकार (1989) – स्थानीय शासन का यह कार्य है कि वह जरूरत मन्द बच्चों के परिवार तक शासन द्वारा चलायी जा रही ऐसी सेवाओं एवं परियोजनाओं की जानकारी उपलब्ध कराये जो कि बच्चों को सर्वागीण विकास एवं सहायता उपलब्ध कराने हेतु है। इस अधिनियम के अन्तर्गत जरूरतमन्द बच्चों से अभिप्राय विकलांग बच्चों से है जो कि मानसिक अथवा शारिरिक विकलांगता से ग्रसित हो तथा जिसके कारण वो अपनी दैनिक क्रिया व अन्य आवश्यकताओं को पूरा न कर पाते हो तथा लम्बे समय तक यह स्थिति बने रहने की सम्भावना हो कि वो कार्य करने में स्वयं को अक्षम पाते हों। ऐसे बच्चों के जीवन के अनेक अवसर सहायता हेतु आशान्वित होते है तथा इन्हें हर सम्भव मदद देने हेतु सरकार प्रतिबद्ध है। स्कूल पश्चात देखरेख, छुटिटयों में देखभाल, अल्प कालिक देखभाल गृह, परिवार विघटन से बचाव, सामाजिक–सांस्कृतिक–मनोरंजनात्मक अथवा व्यवसायिक कार्यो हेतु सलाह, पर्यवेक्षण तथा यात्रा में सहायता आदि ऐसे माध्यम है जिसमें सहायता उपलब्ध कराकर इन बच्चों की सहायता की जा सकती है।

13.2.23. अभिभावक एवं संरक्षक अधिनियम (1890) – ऐसे बच्चे जिनके माता–पिता की मृत्यु उनके जन्म से 18 वर्ष के अन्दर की आयु में हो जाती है, उनकी व उनकी सम्पत्ति की सुरक्षा हेतु यह अधिनियम बनाया एवं क्रियान्वित किया जाता है।

13.2.24. बंधुआ मजदूर प्रथा (निवारक) अधिनियम (1976) – बच्चों को बाल श्रम के रूप में अनेक जगहों पर प्रयोग किया जाता है तथा समाज में अथवा कानून के पास जाकर वह सहायता न प्राप्त कर सके, इसलिये उन्हें घर में ही रखकर काम कराया जाता है तथा उन्हें खाना पीना भी घर में ही देकर, चहरदीवारी में कैद रखा जाता है। इस प्रकार के बंधुआ बाल–श्रामिकों को मुक्त कराने के उद्‌देश्य से यह नियम अस्तित्व में लाया गया है।

13.2.25. अनैतिक देह–व्यापार रोक अधिनियम (1986) – 18 वर्ष से कम आयु के बच्चों को धन प्राप्ति हेतु जवरदस्ती देह–व्यापार संलिप्त करना अवैध है। इसके अलावा इस आयु तक के बच्चो से जबरदस्ती अवैध शारिरिक सम्बन्ध बनाना, शारीरिक सम्बन्ध बनाने हेतु दबाव डालना, प्रताड़ित करना, उनका दैहिक शोषण करना जैसे कार्य इस अधिनियम के अनुसार अनैतिक है तथा प्रतिबंधित है। ऐसा

करने वाले को कारावास अथवा आर्थिक दण्ड अथवा दोनो द्वारा दण्डित किया जा सकता है।

13.2.26. बाल श्रम निरोधक अधिनियम (1986) – इस अधिनियम के अनुसार 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों द्वारा श्रम कार्य नहीं कराया जा सकता न ही उन्हें कार्य करने हेतु मजबूर तथा शोषित किया जा सकता है। राज्य सरकारों को समय–समय पर बच्चों की स्थिति को देखते हुए इस अधिनियम में बदलाव करने के अधिकार है।

13.2.27. बाल विवाह प्रतिबन्ध अधिनियम (2006) – इस अधिनियम के अनुसार 18 वर्ष से कम उम्र की लड़की तथा 21 वर्ष की आयु से कम के लड़के का विवाह प्रतिबन्धित है तथा ऐसा मामला संज्ञान में आने पर न्यायालय द्वारा उसे शून्य एवं अमान्य घोषित कर दिया जाता है तथा साथ हीवर के परिवार द्वारा 18 वर्ष की आयु पूर्ण करने तक वधु के भरण–पोषण का खर्च वहन किया जायेगा। शादी के समय लिया गया सारा उपहार लड़के बालों को बधु–पक्ष को वापस करना पडेगा।

13.2.28. बाल–अधिकारों की सुरक्षा हेतु आयोग (2005) – 18 वर्ष से कम आयु के बच्चों को भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त सभी अधिकारों की सुरक्षा को सुनिश्चित करने हेतु इस आयोग का गठन किया गया है जो समय–समय पर बच्चों की सामाजिक स्थिति व प्राथमिक आवश्यकताओं पर सर्वेक्षण करके आवश्यकतानुसार कानूनों में व सुविधाओं में बदलाव की अनुशंसा देता है।

13.2.29. किशोर न्याय अधिनियम (2000)– यह अधिनियम बच्चों को उचित देखभाल, सुरक्षा तथा कानून से उनके मतभेद को दूर करता है। बच्चों के सर्वागीण विकास हेतु यह उन्हें सजा (कठोर) से बचाने में तथा उनके पुनर्वसन में सहायता करता है। इस अधिनियम में किशोरों तथा बच्चों को न्याय–प्रक्रिया में देरी के कारण कोई नुकसान न हो जाय, इस कारण अलग से उनके मामले की सुनवायी हेतु व्यवस्था की गयी है। इस अधिनियम के अनुसार जब तक किसी की आयु 18 वर्ष पूरी न हो जाय तब तक उसे बच्चा ही समझा जाना चाहिये तथा न्याय–प्रक्रिया में उससे पूर्ण अपराधी की भाँति व्यवहार नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त सभी अधिनियम समाज में 18 वर्ष की आयु से कम के बच्चों की सुरक्षा हेतु सरकार व समाज द्वारा किये गये प्रबन्धों को दर्शाते है।

13.3 सार संक्षेप

इस इकाई में निहित तत्वों में भारतीय परिवेश में बच्चों एवं महिलाओं की सुरक्षा एवं देखरेख को ध्यान में रखते हुये क्रियान्वित किये जा रहे कानूनों का विस्तृत

उल्लेख है। बच्चों एवं महिलाओं को प्रत्येक दिन के जीवन, कार्य–स्थल, घरेलू परिस्थितियों आदि में हो रही विभिन्न समस्याओं की एक स्थिति स्पष्ट है, जिस पर ध्यान देकर केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा नियमित कानूनों व उनके प्रावधानों का उल्लेख विस्तृत किया जा चुका है। इन कानूनों को पढ़कर एक सामाजिक–कार्यकर्ता विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न कानूनों के माध्यम से बच्चों एवं महिलाओं के खिलाफ हो रहे अन्याय, शोषण आदि के विरूद्ध वकालत करके तथा उन्हें स्वयं कानूनों की जानकारी उपलब्ध कराकर उनकी सहायता कर सकता है।

13.4 अभ्यास प्रश्न

1. महिलाओं से सम्बन्धित कानून कौन है? विस्तृत उल्लेख करें।
2. भारतीय संविधान द्वारा बच्चों की सुरक्षा हेतु बनाये गये कानूनों की व्याख्या करें।

13.5 पारिभाषिक शब्दावली

Labour Welfare	श्रम कल्याण	Funds	निधियां
Legal	विधिक	Failure	असफलता
Component	तत्व, अंग	Labour Welfare Officer	श्रम कल्याण अधिकारी
Need	आवश्यकता	Management	प्रबन्ध
Recruitment	भर्ती	Organization	संगठन
Recreational	मनोरंजनात्मक	Qualification	योग्यता
Responsibility	उत्तरदायित्व	Assistant	सहायक
Social Attributes	सामाजिक गुण	Provision	उपबन्ध
Work Efficiency	कार्य क्षमता	Supervision	पर्यवेक्षण
Mental Peace	मानसिंक शांति	Monitoring	अवबोधन
Agencies	संस्थायें	Counseling	परामर्श
Trade Unions	श्रम संघ	Hormonious	सौहार्दपूर्ण
Mines	खान	Policies	नीतियां
Coal	कोयला	Amelioration	सुधार

Plantation	बगान	Poverty	गरीबी
Safety	सुरक्षा	Legislation	कानून
Women	महिला	Children	बच्चों
Juvenile	किशोर	Wage	भत्ता
Justice	न्याय	Domestic	घरेलू

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

डॉ0 परमार रविन्द्र सिंह, रिसर्च थीसिस ऑन चाइल्ड एब्यूस एण्ड मालट्रीटमेण्ट (2008)।

1. छठवॉ केन्द्रीय भुगतान आयोग रिपोर्ट, भारत सरकार, 11 सितम्बर (2008)।
2. डब्ल्यू0डब्ल्यू0डब्ल्यू0डाट टेलीग्राफाइण्डिया डाट कॉम।
3. डब्ल्यू0डब्ल्यू0डब्ल्यू0डाट महाराष्ट्र डाट जीओवी डाटइन।
4. गैरी, डेस्लर एण्ड बीजू वाक्के, हयूमन रिसोर्स मैनेजमेण्ट, इण्डियन एडैप्सन, पीयरसन एजुकेशन, ग्यारहवॉ संस्करण (2009)।
5. बीसनेस डाट जीओवी डाट इन/लीगल आस्पेक्ट्स/वेजेस।
6. प्लानिंग कमीशन डाट एन आई सी डाट इन।

इकाई – 14

सुरक्षा से सम्बन्धित सामाजिक विधान

Social Legislation pertaining to Security

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 परिचय

14.2 सामाजिक रक्षा से सम्बन्धित विधान

14.3 सामाजिक सुरक्षा से सम्बन्धित विधान

14.4 सामाजिक सहायता से सम्बन्धित विधान

14.5 विकलांगों से सम्बन्धित विधान

14.6 स्वास्थ्य सम्बन्धी अधिनियम

14.7 सार संक्षेप

14.8 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः –

- भारतीय नागरिकों को कानून के द्वारा प्रदत्त, सामाजिक रक्षा हेतु लागू प्रावधानों को लिख सकेंगे।
- सामाजिक सुरक्षा के लिये कानून के द्वारा किये गये उपायों व अनुच्छेदों को लिख सकेंगे।
- सामाजिक सहायता हेतु बनाये गये कानूनों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- विकलांगों हेतु उपलब्ध कानूनों के बारे में जान सकेंगे।
- भारतीय परिवेश में उपलब्ध स्वास्थ्य सम्बन्धी मुख्य विधानों को वर्णित कर सकेंगे।

14.1 परिचय

सामाजिक विधान तथा भारतीय संविधान दोनों ही भारत के नागरिकों की सामाजिक सुरक्षा हेतु बनाये व पारित किये गये हैं। व्यक्तियों को एक मानवविषेश रूप में पहचान देकर उनकी प्रतिष्ठा का सम्मान करना, उनके मूल अधिकारों की रक्षा करना तथा सभी के लिये विकास के समान अवसर उपलब्ध कराना इन दोनों के प्रमुख उद्देश्य हैं। भारत का प्रत्येक नागरिक इनका पालन करने हेतु प्रतिबद्ध है तथा इन्हें न मानने वाले व्यक्तियों को कानून व्यवस्था के माध्यम से दण्डित किये जाने का प्रावधान है। सामाजिक कानून के तहत समाज के सभी वर्गों हेतु अलग–अलग कानून की व्यवस्था प्रदान की गयी है। उदाहरणतः वृद्धों, महिलाओं, युवकों, श्रमिकों, अपंगों, बच्चों सभी के दोहन, उत्पीड़न को रोकने तथा सभी को समाज में समान रूप से जीवन यापन करने व समाज के सभी संसाधनों का समान रूप से प्रयोग करने हेतु अलग–अलग सामाजिक कानून की व्यवस्था की गयी है। सामाजिक कानून के तहत सभी को कानून तथा भारतीय संविधान के तहत अलग–अलग भागों में निहित अधिकारों एवं कर्तव्यों द्वारा समाज में एक अलग व्यक्ति के रूप में अपने हित व अपने विकास हेतु स्वतन्त्र रूप से कार्य करने का अधिकार प्राप्त है। वह अपने व अपने परिवार के उचित विकास व भविश्य को ध्यान में रखते हुये कुछ सीमाओं में कार्य करने व बेहतर जीवन यापन करने हेतु स्वतन्त्र है। इस सीमा का तात्पर्य इस बात से है कि वह अपने व अपने परिवार हेतु संसाधनों का प्रयोग करते समय इस बात का भी विशेश ध्यान रखे कि कहीं वह दूसरे की जीवन प्रणाली में किसी प्रकार हस्तक्षेप तो नहीं कर रहा है। उसे इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिये कि वह अपनी स्वतन्त्रता को पाने व इसका सुख प्राप्त करने में दूसरे की स्वतन्त्रता को बाधित न कर रहा हो।

14.2 सामाजिक रक्षा से सम्बन्धित विधान

सामाजिक रक्षा हेतु कुछ प्रमुख विधान निम्नवत् हैं :–

1. **किशोर न्याय (देखभाल व सुरक्षा) कियान्वयन अधिनियम (2000) :–** ऐसे वयस्क बच्चे जो गैर कानूनी कार्यो में संक्षिप्त है तथा जिन्हें उचित देखभाल, सुरक्षा व सामाजिक सहायता की आवश्यकता है, उन्हें उनकी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति, देखभाल व सहायता, मित्रवत व्यवहार के माध्यम से उपलब्ध कराने हेतु यह अधिनियम 1 अप्रैल 2001 का लागू हुआ। इस अधिनियम के माध्यम से बच्चों को उनके और बेहतर विकास हेतु समाज में उपस्थित अन्य विकास हेतु प्रयासरत

संस्थानों/इकाइयों/समितियों/योजनाओं के साथ समन्वय स्थापित कराकर उनके व्यवहार में सुधार लाने का प्रयास किया जाता है।

2. **अवलोकन गृह** – ऐसे बच्चे जिनकी आयु 18 वर्ष से कम है तथा किसी गैरकानूनी अथवा असामाजिक कार्य के कारण या तो उसे न्यायालय द्वारा दण्ड मिला है अथवा उसकी सजा न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है। सुनवायी की प्रक्रिया चल रही है, उन्हें ऐसे सुधार गृहों में रखा जाता है। इसके पीछे उद्देश्य यह होता है कि ऐसे बच्चों को जेल में न रखा जाय क्योंकि वहॉ पर उनके पेशेवर अपराधियों के सम्पर्क में आने के कारण उनके व्यवहार में विकृत परिवर्तन आने की सम्भावना है। उसी सोच के साथ उन्हें सुधार गृहों में पुनर्विस्थापन की आशा से रखा जाता है जहॉ उन्हें प्राथमिक सुविधाओं के साथ शिक्षा एवं रोजगार परक शिक्षा भी मुहैया करायी जाती है जिससे वो जब समाज में जायें तो अपने विकास एवं आजीविका के लिये आत्मनिर्भर हो तथा न्यायालय प्रक्रिया में लगा उनका समय व्यर्थ न होने पाये। साथ ही समाज में जाकर वा पुनः अपनी आजीविका हेतु गैर कानूनी व असामाजिक गतिविधियों में संक्षिप्त न हो जाये।

3. **बाल गृह** – 18 वर्ष से कम अम्र के वो बच्चें जिनके विरूद्ध कोई जॉच चल रही हो, जॉच पूरी होने तक वो बाल–गृह में रखे जाते है। ऐसे बच्चें जिन्हें इस प्रकार की देखरेख व सुरक्षा की आवश्यकता होती है उन्हें बाल कल्याण समिति के सम्मुख प्रस्तु किया जाता है तथा उसके बाद समिति की अनुशंसा पर इन बच्चों को बाल–गृह द्वारा स्वीकार किया जाता है। बच्चों को बाल गृहों में रहना, खाना, कपड़ा, विस्तर आदि सभी सुविधायें निःशुल्क रू॰ से बाल गृह प्रशासन द्वारा उपलब्ध करायी जाती है। इसके अतिरिक्त बाल गृह में ही बच्चों को शिक्षा, मनोरंजन, व्यवसायिक प्रशिक्षण एवं पुनर्वास जैसी सुविधायें भी उपलब्ध करायी जाती है।

4. **स्वास्थ्य संस्थान** :– अनाथ बच्चो एवं निराश्रित बच्चों की सुरक्षा व देखरेख प्रदान करने हेतु स्वैच्छिक संगठनों को स्वास्थ्य संस्थान के रूप में चिन्हित किया गया है। ये संगठन बिना किसी बाहरी सहायता से ऐसे बच्चों को सहायता उपलब्ध कराते हैं जो अनाथ तथा निराश्रित हैं।

5. **किशोरों हेतु विशेष पुलिस इकाई** :– जिला स्तर पर पुलिस निरीक्षक स्तर के अधिकारी को वरिष्ठ बाल–कल्याण अधिकारी के पद पर सृजित किया जाता है। जिले में उप निरीक्षक (पुलिस) स्तर के एक या दो अधिकारियों को पुलिस थानों में बाल कल्याण अधिकारी के पद पर रखा जाता है। जो ऐसे बच्चों की देखरेख सुनिश्चित करते हुए जिन्हें किशोर न्याय अधिनियम तथा व्यवस्था के अन्तर्गत सुधार गृहों व बाल–गृहों में भेजने हेतु संस्तुति दी जाती है।

6. महिलाओं हेतु घरेलू हिंसा संरक्षा अधिनियम (2006):– इस अधिनियम के माध्यम से महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाता है। घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं को निःशुल्क वैधानिक सलाह व सहायता, परामर्श तथा आवास की व्यवस्था की जाती है। कर्नाटक राज्य में अलग से जून 2007 से इस दिशा मे अधिनियम लागू किया गया है। जिससे घरेलू हिंसा से पीड़ित महिला को कर्नाटक वैधानिक सेवा प्राधिकरण द्वारा कानूनी, स्वास्थ्य से सम्बन्धित तथा अन्य सुविधायें उपलब्ध करायी जाती है जिससे ऐसी महिलाओं के अधिकारों (संविधान द्वारा प्रदत्त) की सुरक्षा करके महिलाओं में आत्म–निर्भरता एवं आत्म–विश्वास की भावना को जीवित रखा जा सके।

7. अनैतिक देह व्यापार (रोक) अधिनियम (1956):– इस अधिनियम के अन्तर्गत ऐसे व्यक्तियों को जो अनैतिक देह व्यापार के लिये स्थान उपलब्ध कराते हों, वेश्यावृत्ति के माध्यम से धन अर्जित करते हो, सम्पत्ति बनाई हो या वेश्यावृत्ति (अनैतिक)पर ही अपने खर्चो हेतु निर्भर हो, वेश्यावृत्ति में संलग्न लोगों को शरण देते हो, उनका कानून से बचाव कर रहे हो, अनैतिक देय–व्यापार हेतु किसी को मजबूर कर रहे हों, किसी का शोषण अथवा किसी पर दबाव बना रहे हों, सार्वजनिक स्थानों पर अनैतिक देय व्यापार कर रहे हों अथवा ऐसे कार्यो में सहयोग कर रहे हों, अनैतिक देह–व्यापार हेतु किसी को जबरदस्ती बंधक बना कर रखे हो अथवा इसमें प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सहयोग कर रहे हों, दोष की सिद्धि होने पर दण्ड दिये जाने का प्रावधान है। उपरोक्त सभी प्रकार से अनैतिक देह–व्यापार को चलाना, उसमें किसी रूप में सहयोग करना तथा किसी को इस हेतु उकसाना कानूनी रूप से अपराध घोषित है।

8. अनैतिक देह व्यापार के अधिनियम (1956) के अन्तर्गत राज्य गृह तथा स्वागत केन्द्र :– अनैतिक देह व्यापार के अन्तर्गत न्यायालयों द्वारा भेजी गयी महिलाओं एवं लड़कियों को इन केन्द्रों द्वारा स्वीकार किया जाता है। ये महिलायें व लड़कियॉ वो होती है जो स्वैच्छिक रूप से इस धंधे में संलिप्त होती है। इनको पुनर्वसन प्रदान करने तथा इनके व्यवहार में परिवर्तन लाकर समाज में समन्वय लाने के प्रयास के उद्देश्य से इन्हें न्यायालय द्वारा ऐसे केन्द्रों में भेजा जाता है, जहाँ इनकी सुरक्षा क साथ–साथ पूर्ण देख–रेख तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की जाती है जिससे इन केन्द्रों से निकलने के पश्चात ऐसी महिलायें व लड़कियॉ समाज में आत्म निर्भरता व आय उपलब्धि हेतु पुनः अनैतिक देह–व्यापार में संलग्न न होकर आय के अन्य साधनों को प्रयोग करें तथा सभ्य समाज में हिस्सेदारी दिखायें।

9. अपराधी बच्चों की परिवीक्षा का कियान्वयन अधिनियम (1958):– इस अधिनियम के माध्यम से प्रत्येक जिले में एक परिवीक्षा अधिकारी की नियुक्ति की जाती है। जो किशोर न्याय परिषद तथा बाल कल्याण प्राधिकरण द्वारा भेजे गये महिलाओं, बच्चों के आचरण में सुधार को परीक्षित करता है। साथ ही अनैतिक देह–व्यापार में न्यायालय द्वारा सुधार गृहों में स्थानान्तरित किये गये महिलाओं व बालिकाओं के अच्छे आचरण को भी निरीक्षित करता है। इस अधिनियम में अपराधी बच्चों को अच्छे आचरण की परिवीक्षा में रखे जाने का प्राविधान है जिससे यह पता लगाया जा सके कि सुधार प्रक्रिया के समय उनके व्यवहार में किस प्रकार का परिवर्तन हो रहा है साथ ही सुधारात्मक संगठन या इकाईयॉ सुधार प्रक्रिया में किस स्तर तक व किस प्रकार योगदान प्रदान कर रही है व उनकी भूमिका का बोध हो सके।

10. बाल विवाह रोक अधिनियम (2006) :– यह अधिनियम 01.10.2007 को कर्नाटका राज्य में लागू किया गया। इस अधिनियम का उद्देश्य बाल–विवाह को रोकना, ऐसे बचचे जिनकी जबरदस्ती शादी करायी जा रही है, को सुरक्षा प्रदान करना, तथा जो लोग जबरदस्ती बाल विवाह कराने हेतु या इस हेतु दबाव बनाने हेतु जिम्मेदार हैं, उन्हें दण्डित करने हेतु बनाया गया है। शादी के समय रजिस्टार के समक्ष अपना पंजीयन कराने व उम्र बताने को यह अधिनियम कहता है जिससे 18 वर्ष से कम उम्र की लड़की तथा 21 वर्ष से कम उम्र के लड़के की किसी भी परिस्थिति में विवाह पर प्रतिबन्ध लग सके।

14.3 सामाजिक सुरक्षा से सम्बन्धित विधान

1.कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम (1948) – कारखानों में तथा ऐसे अन्य प्रतिष्ठानों में कार्यरत कर्मचारियों एवं उनके आश्रितों को बीमारी, सन्तान प्राप्ति, अपंगता तथा चिकित्सा लाभ हेतु आर्थिक सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से यह अधिनियम 1948 में लागू हुआ। यह अधिनियम ऐसे कारखानों में लागू होता है जो वर्ष भर शक्ति का प्रयोग करके चलते है तथा उनमें 10 या उससे अधिक कर्मचारी कार्य करते है साथ ही यह उन कारखानों पर भी लागू होता है जो बीस अथवा इससे अधिक कर्मचारी कार्यरत रखते है भले ही वह शक्ति प्रयोग न करते हों। इस लाभ को प्राप्त करने हेतु कर्मचारी व कारखाने का मालिक दोनों योगदान देते है तथा अनेक प्रकार की सुविधायें योग्य कर्मचारियों को बिमारी, मातृत्व लाभ, अपंगता जैसी अवधियों के दौरान आर्थिक सहायता प्रदान करके की जाती है। सभी

चिकित्सा सुविधायें केवल चुनिन्दा कर्मचारी राज्य बीमा अस्पतालों, चिकित्सा इकाईयों एवं स्वतन्त्र चिकित्सा व्यवसायी द्वारा ही प्रदान की जाती है।

वर्तमान समय में इस अधिनियम में लक्ष्य की गयी मजदूरी सीमा रू0 7500 से बढाकर रू0 10,000 प्रति माह कर दी गयी है अर्थात् यह अधिनियम केवल उन्हीं कर्मचारियों पर लागू होता है जिनकी आय रू0 10,000 प्रति माह तक है।

5. मजदूरी भुगतान अधिनियम (1936) – यह अधिनियम प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मजदूरी के निश्चित एवं नियमित भुगतान हेतु लागू किया गया है। यह अधिनियम बनाने का उद्देश्य मनमाने ढंग से नियोक्ता द्वारा मजदूरी दर में अनुपयुक्त कटौती तथा/अथवा मजदूरी भुगतान में अनियमितता व देरी को रोकना है। इस अधिनियम को बनाने व लागू करने के पीछे मंशा नियोक्ता द्वारा किये जा रहे मजदूरों के शोषण को रोकना व मजदूरों को उनके अधिकार व इसके साथ ही पूरी मजदूरी को प्राप्त करने हेतु सक्षम बनाना है।

6. समान भुगतान अधिनियम (1976) – इस अधिनियम का उद्देश्य महिला कर्मियों को भी पुरूष कर्मियों के समान ही पारिश्रमिक दिलाना है। इस अधिनियम के अनुसार लिंग के आधार पर महिलाओं को पुरूषों से कम कजदूरी का भुगतान नहीं किया जाना चाहिये। भुगतान का आधार शारिरिक क्षमता व महिला–पुरूष न होकर एक व्यक्ति होना चाहियें तथा यह कदापि उचित नहीं कि औरतों को कम मजदूरी इस आधार पर दी जायेगी कि वो पुरूषों की अपेक्षा शारीरिक रूप से कमजोर होती है तथा कार्य करने का सामर्थ्य उनमें कम होता है। साथ ही वो पुरूषों की अपेक्षा कम कार्य निष्पादित कर पाती हैं।

7. न्यूनतम मजदूरी अधिनियम – भारत सरकार द्वारा 1944 में नियुक्ति श्रमिक जॉच समिति स्थायी श्रम समिति द्वारा तथा भारतीय श्रम सम्मेलन में देश के कुछ उद्योगों और नियोजनों में कानूनी तौर पर मजदूरी नियत करने के प्रश्न पर विस्तार से विचार विमर्श किये गये। समिति एवं सम्मेलन दोनो में कुछ नियोजनों में कानून के अन्तर्गत न्यूनतम मजदूरी की दरें नियत करने और इसके लिये मजदूरी नियतन संयंत्र की व्यवस्था की सिफारिश की ।इन अनुशंसाओं को ध्यान में रखते हुये भारत सरकार ने 1948 में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम बनाया, जो उसी वर्ष देश मे लागू हुआ। समय–समय पर इस अधिनियम में संशोधन भी हुये है।

8. असंगठित मजदूर सामाजिक सुरक्षा अधिनियम (2008) – केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय स्तर पर ऐसी महिलायें जो असंगठित मजदूरी तथा स्व–रोजगार के क्षेत्र में हैं, के लिए यह अधिनियम लागू किया गया है। इस अधिनियम के द्वारा ऐसी महिला कर्मियों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने का ध्येय है। स्थानीय, राज्य तथा केन्द्र

स्तर पर असंगठित महिला कर्मचारियों एवं स्व–रोजगार में संलिप्त महिलाओं के कल्याण को ध्यान में रखकर विभिन्न प्रकार की योजनायें चलायी जा रही है। उन्हीं में से एक असंगठित मजदूर सामाजिक सुरक्षा अधिनियम (2008) भी है जो विभिन्न आकास्मिक विपरीत परिस्थितियों के विरूद्ध महिलाओं को सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराती है।

9. घरेलू मजदूर अधिनियम 2008 (पंजीकरण, सामाजिक सुरक्षा एवं कल्याण) – घरेलू महिलाओं एवं अन्य घरेलू वयस्क महिला मजदूरों के दोहन को रोकने, काम करने की दशाओं में सुधार तथा उनकी मजदूरी के नियमित भुगतान हेतु यह अधिनियम अस्तित्व में लाया गया है। घरेलू महिला मजदूर असंगठित क्षेत्र में आती है अतः उन्हें व उनके श्रम की पहचान अब तक उपेक्षित है।

10. बागान श्रमिक अधिनियम (1951) – यह अधिनियम बागान श्रमिकों को सुरक्षा तथा कार्य करने की परिस्थितियों को सुगम एवं सृदृढ बनाये रखने के लिये बनाया गया है। इस अधिनियम को बागान श्रमिकों के कल्याण की भावना को ध्यान में रखकर व उनके सुरक्षित कार्य परिस्थिति को सुचारू व सतत् रखा जा सके, इस आशय से लागू किया गया।

बागान श्रमिक अधिनियम ऐसी भूमि पर लागू होता है जहॉ चाय, काफी, खर अथवा किसी और पौधे का उत्पादन 5 हेक्टेयर अथवा इससे अधिक क्षेत्रफल की जमीन पर व्यवसायिक रूप से किया जा रहा हो तथा साथ ही पूर्ववर्ती बारह महीनों के किसी भी दिन उस कार्य क्षेत्र में पन्द्रह अथवा इससे अधिक मजदूरों ने श्रम कार्य किया हो। यह अधिनियम इस बात पर भीविषेश ध्यान देता है कि मजदूरों के पारिश्रमिक का नियमित व पूरा भुगतान हो तथा भुगतान में श्रमिकों को अकारण विलम्ब न हो। नियोक्ता द्वारा श्रमिकों का दोहन न हो, पारिश्रमिक में लिंग आधारित भेदभाव न हो।

11. श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम (1923) – सन् 1923 में श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम पारित होने के साथ–साथ, सामाजिक सुरक्षा की शुरूआत हुई। इसके अन्तर्गत कर्मचारियों और उनके आश्रितों को अपने सेवाकाल के दौरान किसी दुर्घटना (व्यवसायजन्य कुछ रोगों समेत) में मृत्यु या अपंग होने की स्थिति में मुआवजा देने का प्रावधान है। यह अधिनियम रेलवे कर्मचारियों और अधिनियम की अनुसूची दो मैं निर्दिष्ट किसी पद पर कार्यरत व्यक्तियों पर लागू होता है। अनुसूची दो में कारखानों, खानों, बागान, मशीन से चलने वाले वाहनों के संचालन, निर्माण–कार्यो और जोखिम वाले कुछ अन्य व्यवसायों में कार्यरत व्यक्ति शामिल हैं। स्थायी व पूर्ण विकलांगता होने पर न्यूनतम मुआवजा राशि 90 हजार रूपये और

मृत्यु होने पर 80 हजार रूपये निर्धारित की गई है। कर्मचारी की आयु और वेतन के हिसाब से, मृत्यु होने पर अधिकतम मुआवजा 4.56 लाख रूपये और स्थायी पूर्ण विकलांगता होने पर 5.48 लाख रूपये निर्धारित किया गया है।

इस कानून के बारे में मजदूरी की कोई सीमा नहीं है। किन्तु यह कानून उन व्यक्तियों पर लागू नही होता जो कर्मचारी बीमा अधिनियम (1948) के अधीन आते हैं।

12. खान अधिनियम, (1952) – खान अधिनियम, 1952 और इसके तहत निर्मित नियमों और विनियमों में खानों में काम करने वाले श्रमिकों की सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण का प्रावधान रखा गया है। इन प्रावधानों को श्रम मंत्रालय, खान सुरक्षा महानिदेशालय द्वारा लागू करता है। महानिदेशालय का मुख्यालय धनबाद में है और इसके आंचलिक, क्षेत्रीय और उप क्षेत्रीय कार्यालय देश के सभी खनन क्षेत्रों में फैले हुए हैं। इसके मुख्य कार्य हैं – खानों का निरीक्षण, स्थिति की गम्भीरता के अनुरूप सभी घातक और गम्भीर दुर्घनाओं की जॉच–पड़ताल, विभिन्न खानों के परिचालन के सम्बन्ध में कानूनी स्वीकृति, छूट और ढील देना, खान सुरक्षा उपकरणों, यंत्रों और सामग्रियों की स्वीकृति देना तथा संवैधानिक क्षमता प्रमाणपत्र प्रदान करने के लिए परीक्षण की व्यवस्था करना, सुरक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए राष्ट्रीय पुरस्कारों और राष्ट्रीय सुरक्षा सम्मेलनों आदि का आयोजन करना।

13. कारखाना अधिनियम (1948) – यह अधिनियम कारखाने में कार्यरत श्रमिकों को सुरक्षा स्वास्थ्य उसके कार्यस्थल पर उस समय उपलब्ध कराने हेतु है ज बवह मशीनों के साथ अथवा मशीनों पर कार्य कर रहे हों। यह अधिनियम श्रमिकों को कार्यस्थल पर कार्य करने के समय बेहतर वातावरण तथा कल्याण सुविधाओं को उपलब्ध कराता है। यह अधिनियम कार्य के घंटों को निश्चित करता है जिससे श्रमिकों का नियोक्ता द्वारा दोहन न किया जा सके। साथ ही कार्यावधि के अतिरिक्त कार्य करने पर श्रमिक को अतिरिक्त भुगतान भी दिलाता है। यह अधिनियम युवा पुरूषों व महिलाओं को रोजगार दिलाता है साथ ही मजदूरी भुगतान हेतु लिंग आधारित भेदभाव को भी रोकता है।

यह अधिनियम केवल कारखानों पर लागू होता है जहॉ कारखाना से अभिप्राय ऐसे परिसर से है जहॉ दस या अधिक कर्मकार काम कर रहे हो या पूर्ववर्ती बारह मास के किसी भी दिन काम कर रहे थे और जिसके किसी भाग में विनिर्माण प्रक्रिया, शक्ति की सहायता से की जा रही है या प्राय की जाती है अथवा ऐसे परिसर से है जहॉ बीस या उससे अधिक कर्मकार काम कर रहे है या पूर्ववर्ती बारह

मास के किसी दिन काम कर रहे थे और जिसके किसी भाग में निर्माण प्रक्रिया शक्ति की सहायता के बिना की जा रही है या प्रायः की जाती है।

14.4 सामाजिक सहायता से सम्बन्धित विधान

1. **मातृत्व लाभ अधिनियम (1961)** – यह अधिनियम पूरे भारत वर्ष में महिला कर्मचारियों पर लागू होता है। यह अधिनिमय अधिकतम 12 सप्ताह का अवकाश उन महिलाओं को प्रदान करता है जो मातृत्व सुख प्राप्त करती है। यह लाभ प्राप्त करने वाली महिला माँ बनने के दिन के ठीक पहले 6 सप्ताह तथा माँ बनने वाले दिन के ठीक बाद 6 सप्ताह का अवकाश लाभ प्राप्त कर सकती है।

2. **कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम (1948)** – कारखनों में तथा ऐसे अन्य प्रतिष्ठानों में कार्यरत कर्मचारियों एवं उनके आश्रितों को बिमारी, सन्तान प्राप्ति, अपंगता तथा चिकित्सा लाभ हेतु आर्थिक सहायता प्रदान करने के उद्‌देश्य से यह अधिनियम 1948 में लागू हुआ। यह अधिनियम ऐसे कारखानों में लागू होता है जो वर्ष भर शक्ति का प्रयोग करके चलते है तथा उनमें 10 या उससे अधिक कर्मचारी कार्य करते है साथ ही यह उन कारखानों पर भी लागू होता है जो बीस अथवा इससे अधिक कर्मचारी कार्यरत रखते है भले ही वह शक्ति प्रयोग न करते हों। इस लाभ को प्राप्त करने हेतु कर्मचारी व कारखाने का मालिक दोनों योगदान देते है तथा अनेक प्रकार की सुविधायें योग्य कर्मचारियों को बिमारी, मातृत्व लाभ, अपंगता जैसी अवधियों के दौरान आर्थिक सहायता प्रदान करके की जाती है। सभी चिकित्सा सुविधायें केवल चुनिन्दा कर्मचारी राज्य बीमा अस्पतालों, चिकित्सा इकाईयों एवं स्वतन्त्र चिकित्सा व्यवसायी द्वारा ही प्रदान की जाती है।

3. **असंगठित मजदूर सामाजिक सुरक्षा अधिनियम (2008)** – केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय स्तर पर ऐसी महिलायें जो असंगठित मजदूरी तथा स्व–रोजगार के क्षेत्र में हैं, के लिए यह अधिनियम लागू किया गया है। इस अधिनियम के द्वारा ऐसी महिला कर्मियों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने का ध्येय है। स्थानीय, राज्य तथा केन्द्र स्तर पर असंगठित महिला कर्मचारियों एवं स्व–रोजगार में संलिप्त महिलाओं के कल्याण को ध्यान में रखकर विभिन्न प्रकार की योजनायें चलायी जा रही है।

4. **घरेलू मजदूर अधिनियम 2008 (पंजीकरण, सामाजिक सुरक्षा एवं कल्याण)** – घरेलू महिलाओं एवं अन्य घरेलू वयस्क महिला मजदूरों के दोहन को रोकने, काम करने की दशाओं में सुधार तथा उनकी मजदूरी के नियमित भुगतान हेतु यह अधिनियम अस्तित्व में लाया गया है।

5. श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम 1923 – सन् 1923 में श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम पारित होने के साथ–साथ, सामाजिक सुरक्षा की शुरूआत हुई। इसके अन्तर्गत कर्मचारियों और उनके आश्रितों को अपने सेवाकाल के दौरान किसी दुर्घटना (व्यवसायजन्य कुछ रोगों समेत) में मृत्यु या अपंग होने की स्थिति में मुआवजा देने का प्रावधान है। यह अधिनियम रेलवे कर्मचारियों और अधिनियम की अनुसूची दो मैं निर्दिष्ट किसी पद पर कार्यरत व्यक्तियों पर लागू होता है। अनुसूची दो में कारखानों, खानों, बागान, मशीन से चलने वाले वाहनों के संचालन, निर्माण–कार्यो और जोखिम वाले कुछ अन्य व्यवसायों में कार्यरत व्यक्ति शामिल हैं। स्थायी व पूर्ण विकलांगता होने पर न्यूनतम मुआवजा राशि 90 हजार रूपये और मृत्यु होने पर 80 हजार रूपये निर्धारित की गई है। कर्मचारी की आयु और वेतन के हिसाब से, मृत्यु होने पर अधिकतम मुआवजा 4.56 लाख रूपये और स्थायी पूर्ण विकलांगता होने पर 5.48 लाख रूपये निर्धारित किया गया है।

6. बाल श्रम (प्रतिषेध एवं विनियमन) अधिनियम (1986) – यह अधिनियम 16 प्रकार के व्यवसायों व 65 प्रक्रियाओं हेतु बाल श्रम का प्रतिषेध करता है। इन सभी में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चें को काम करना प्रतिबन्धित है क्योंकि ये बच्चों के स्वास्थ्य व जिन्दगी के लिये खतरनाक है। ये सभी व्यवसाय व प्रक्रियायें अधिनियम में विस्तृत रूप में उल्लिखित हैं। अक्टूबर 2006 में सरकार ने बच्चों हेतु घरेलू कार्यो व सड़क के किनारे ढाबों व होटलों में श्रम कार्य करना भी बच्चों हेतु उल्लिखित खतरनाक कार्यो की सूची में शामिल किया है। इस अधिनियम के अनुसार यदि कोई नियोक्ता अपने यहॉ जोखिम भरे कार्यो में व अन्य ऐसे कार्यो जो कि बच्चों के स्वास्थ्य एवं जिन्दगी के लिये हानिकारक हो, में 14 वर्ष की आयु से कम उम्र के बच्चों को संलिप्त करते है तो उन्हें कानून द्वारा दण्ड देने का भी प्राविधान है। साथ ही जहॉ ऐसे बच्चे कार्य कर सकते है वहॉ भी सरकार द्वारा नियोक्ता को प्राथमिक सुविधाओं को उपलब्ध कराने हेतु व उनको किसी भी हालत में शोषित न किया जाय व उन्हें जबरन मजदूरी हेतु मजबूर न किया जाय, निर्देश समय–समय पर दिये जाते है।

7. बच्चों हेतु निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009) – 6 से 14 वर्ष की आयु के बीच के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने हेतु यह अधिनियम बनाया व क्रियान्वित किया गया है। इस अधिनियम में यह भी प्रस्तावित है कि 25 प्रतिशत का आरक्षण प्रत्येक निजी विद्यालय में भी उन बच्चों हेतु होगा जो वंचित व शोषित वर्ग से ताल्लुक रखने वाले होगे। 6 से 14 वर्ष की आयु के बीच के बच्चों को अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराना, सरकार का कर्तव्य है

तथा यदि इस वर्ग के बीच का कोई बच्चा अशिक्षित रह जाता है तो सरकार उसके लिये जवाबदेह है। प्रत्येक बच्चों को शिक्षा का अधिकार भारत में संविधान द्वारा प्रदत्त है तथा उसके इस अधिकार को उस तक पहुँचने की जिम्मेदारी राज्य व केन्द्र सरकार की बनती है।

8. **अनैतिक देह–व्यापार रोक अधिनियम (1986)** – 18 वर्ष से कम आयु के बच्चों को धन प्राप्ति हेतु जवरदस्ती देह–व्यापार संलिप्त करना अवैध है। इसके अलावा इस आयु तक के बच्चो से जबरदस्ती अवैध शारिरिक सम्बन्ध बनाना, शारीरिक सम्बन्ध बनाने हेतु दबाव डालना, प्रताड़ित करना, उनका दैहिक शोषण करना जैसे कार्य इस अधिनियम के अनुसार अनैतिक है तथा प्रतिबंधित है। ऐसा करने वाले को कारावास अथवा आर्थिक दण्ड अथवा दोनो द्वारा दण्डित किया जा सकता है।

9. **कर्मकार क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923** में नियोजन के दौरान ओर नियोजन से उत्पन्न दुर्घटना के परिणामस्वरूप होनेवाली अशक्तता की स्थिति में क्षतिपूर्ति देने की व्यवस्था है। क्षतिपूर्ति देने का दायित्व नियोजकों पर है। स्थायी अशक्तता के लिए क्षतिपूर्ति एकमुश्त राशि में दी जाती ह, लेकिन अस्थायी अशक्तता की स्थिति में आवधिक भुगतान के रूप में। अधिनियम में उल्लिखित कुछ व्यावसायिक रोगों से उत्पन्न आशक्तता के लिए भी क्षतिपूर्ति देने की व्यवस्था है। क्षतिपूर्ति की मात्रा दुर्घटनाग्रस्त या व्यावसायिक रोगों के शिकार श्रमिक की मजदूरी से हुड़ी होती है। वर्तमान समय में पूर्ण स्थायी अशक्तता के लिए क्षतिपूर्ति की न्यूनतम राशि 90,000 हजार रूपये है। आंशिक स्थायी अशक्तता की स्थिति में क्षतिपूर्ति की राशि अर्जन–क्षमता में होनेवाली क्षति के अनुपात में कम कर दी जाती है। अधिनियम में विभिन्न आंशिक तथा पूर्ण अशक्तताओं और उनसे होनेवाली अर्जन–क्षमता में ह्रास की मात्रा का विस्तार से उल्लेख किया गया है। अस्थायी अशक्तता के लिए क्षतिपूर्ति आवधिक भुगतान के रूप में दी जाती है यह अधिकतम 5 वर्षो तक दी जा सकती है। जिन प्रतिष्ठानों में कर्मचारी राज्य बीमा–योजना लागू है, उनमें सामान्यतः यह अधिनियम लागू नहीं होता।

14.5 विकलांगों से सम्बन्धित विधान

1. **कर्मकार क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923** में नियोजन के दौरान ओर नियोजन से उत्पन्न दुर्घटना के परिणामस्वरूप होनेवाली अशक्तता की स्थिति में क्षतिपूर्ति देने की व्यवस्था है। क्षतिपूर्ति देने का दायित्व नियोजकों पर है। स्थायी अशक्तता के लिए क्षतिपूर्ति एकमुश्त राशि में दी जाती ह, लेकिन अस्थायी अशक्तता की स्थिति

में आवधिक भुगतान के रूप में। अधिनियम में उल्लिखित कुछ व्यावसायिक रोगों से उत्पन्न आशक्तता के लिए भी क्षतिपूर्ति देने की व्यवस्था है। क्षतिपूर्ति की मात्रा दुर्घटनाग्रस्त या व्यावसायिक रोगों के शिकार श्रमिक की मजदूरी से हुड़ी होती है। वर्तमान समय में पूर्ण स्थायी अशक्तता के लिए क्षतिपूर्ति की न्यूनतम राशि 90,000 हजार रूपये है। आंशिक स्थायी अशक्तता की स्थिति में क्षतिपूर्ति की राशि अर्जन–क्षमता में होनेवाली क्षति के अनुपात में कम कर दी जाती है। अधिनियम में विभिन्न आंशिक तथा पूर्ण अशक्तताओं और उनसे होनेवाली अर्जन–क्षमता में ह्रास की मात्रा का विस्तार से उल्लेख किया गया है। अस्थायी अशक्तता के लिए क्षतिपूर्ति आवधिक भुगतान के रूप में दी जाती है यह अधिकतम 5 वर्षो तक दी जा सकती है। जिन प्रतिष्ठानों में कर्मचारी राज्य बीमा–योजना लागू है, उनमें सामान्यतः यह अधिनियम लागू नहीं होता।

2. **कर्मचारी भविष्य–निधि तथा कोयला–खान भविष्य निधि अधिनियमों** के अन्तर्गत स्थायी अशक्तता की स्थिति में कर्मचारी के खाते में जमा भविष्य निधि की पूरी राशि सुदसहित दे दी जाती है। इन अधिनियमों में संशोधन कर स्थायी पूर्ण अपंगता पेंशन की भी व्यवस्था की गई है।

3. **उपदान भुगतान अधिनियम, 1972** के अधीन भी अशक्तता के कारण रोजगार की समाप्ति पर श्रमिकों को उपदान की पूरी राशि के भुगतान करने की व्यवस्था है।

4. **राज्य सरकारों की सार्वजनिक पेंशन–योजनाओं** में निर्धन अशक्तों के लिए आजीवन पेंशन देने के कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त दुर्घटनाओं से होने वाली अशक्तताओं के लिए सहायता देने की राज्य सरकारों और केन्द्र सरकार की अलग से योजनाएँ हैं।

भारत में जीवन की विभिन्न आकस्मिकताओं के लिए वर्तमान सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों का सारांश

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों के लिए बीमारी–हितलाभ देने की व्यवसथा की गई हैं। अधिनियम फिलहाल कारखानों में लागू है, लेकिन सरकार को इस अन्य प्रतिष्ठानों में भी लागू करने की शक्ति प्राप्त है। बीमारी हितलाभ बीमाकृत कर्मचारियों को बीमारी की निर्धारित अवधि के लिए सावधिक नकद भुगतान के रूप में दिया जाता है। बीमारी–हितलाभ के अधिकारी होने के लिए बीमाकृत को निर्धारित दर से तथा निर्धारित अवधियों के लिए अंशदान का चुकता कर देना आवश्यक होता है। बीमारी–हितलाभ की दर

केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित होती है। अधिनियम में कुछ विहित रोगो की स्थिति में विस्तारित बीमारी–हितलाभ तथा वर्धित बीमारी–हितलाभ देने की भी व्यवस्था है।

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अधीन ही बीमाकृत कर्मचारियों और उनके परिवार के आश्रित सदस्यों के लिए चिकित्सा–हितलाभ देने की व्यवस्था है। चिकित्सा–हितलाभ के लिए भी कर्मचारी द्वारा अंशदान–संबंधी शर्तो को पूरा करना आवश्यक होता है। कुछ स्थितियों में अंशदान की शर्त के पूरी नहीं होने पर भी चिकित्सा–हितलाभ दिया जा सकता है। चिकित्सा हितलाभ कई रूपों में दिया जा सकता है; जैसे –किसी औषधालय में बाह्य रोगी–उपचार, बीमा चिकित्सक की निदानशाला में उपचार, अन्य संस्थाओं में उपचार, बीमाकृत कर्मचारियों के घर जाकर, या किसी अस्पताल या अन्य संस्था में भरती करके उपचार कराने के रूप में । चिकित्सा–हितलाभ की व्यवस्था करने का मुख्य दायित्व राज्य सरकारों का है। लेकिन, कर्मचारी राज्य बीमा–निगम चिकित्सा पर होनेवाले व्यय का अधिकांश भार वहन करता है तथा सुसज्जित अस्पतालों की स्थापना और संचालन भी करता है।

जनसाधारण को मुफ्त चिकित्सा–सुविधाएँ प्रदान करने के लिए देशभर में स्वास्थ्य सेवाओं की व्यापक व्यवस्था की गई है। अधिकांश चिकित्सा–सुविधाएँ राज्य सरकारों द्वारा उपलब्ध कराई जाती है, लेकिन स्वास्थ्य– संबंधी कई महत्वपूर्ण कार्यक्रम केन्द्रीय सरकार के तत्वावधान में भी चलाए जाते है।

उपदायोजना – देश में कुछ नियोजक अपने कर्मचारियों को सेवानिवृत्ति, बुढ़ापा, इस्तीफा, सशक्तता या अन्य प्रकार से नियोजन की समाप्ति पर अदान देते आ रहे है, लेकिन इस संबंध में कानूनी तौर पर कम बहुत बाद में उठाए गए। देश में उपदान–संबंधी पता अधिनियम केरल औद्योगिक कर्मचारी उपदान भुगतान अधिनियम, 1970 था। इस तरह का दूसरा पश्चिम बंगाल में 1971में बनाया गया श्रमिकों के लिए उपदान की व्यवस्था–संबंधी केन्द्रीय अधिनियम के प्रश्न 1971 में श्रममंत्रियों के सम्मेलन तथा भारतीय श्रम सम्मेलन में विस्थर से विचार किया गया। दोनों सम्मेलनों के नियोजन की समाप्ति की विभिन्न स्थितियों में उपदान योजना संबंधी केन्द्रीय अधिनियम बनाने पर जोर दिया। इन अनुशंसाओं को ध्यान में रखकर भारत सरकार ने 1972 में उपदान भुगतान अधिनियम बनाया, जिसे उसी वर्ष सारे देश में लागू किया गया।

सार्वजनिक सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ – सार्वजनिक सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ नई योजनाएँ है। इनका प्रारंभ छिटपुट ढंग से 1960 से प्रारम्भ होनेवाले दशक के अंतिम भाग में हुआ। बाद में, इस प्रकार की योजनाएँ देश के कई राज्यों में शुरू की गई। सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों के अधीन सामान्यतः वृद्धों, विधवाओं तथा

अशक्तों के लिए पेंशन, कुछ श्रेणियों के शिक्षित बेरोजगारों के लिए अनियोजन–संकेतक भत्ता तथा दुर्घटना से उत्पन्न अशक्तता के लिए क्षतिपूर्ति सम्मिलित 1985 में भारत सरकार ने जारी कर कारखानों तथा अन्य औद्योगिक प्रतिष्ठानों में अनिवार्य भविष्य निधि योजना की स्थापना की । 1952 में अध्यादेश की जगह कर्मचारी भविष्यनिधि अधिनियम बनाया गया। 1976 में इस अधिनियम का नाम बदलकर कर्मचारी भविष्य निधि तथा विविध उपबंध अधिनियम रखा गया।

कर्मचारी भविष्य निधि तथा विविध उपबंध अधिनियम में समय–समय कई महत्वपूर्ण संशोधन किए गए। प्रारंभ में यह अधिनियम केवल 6 श्रेणियों के उद्योगों या नियोजनों में लागू था, लेकिन अब इसे लगभग 200 उद्योगों या स्थापनों में लागू किया गया है। अब यह अधिनियम ऐसे उद्योगों/प्रतिष्ठानों में लागू है जिनमें इनके स्थापित किए जाने की तिथि से तीन वर्ष की अवधि के बाद 20 या उससे अधिक कर्मकार नियोजित रहे हों। कर्मचारी भविष्य निधि योजना के अंतर्गत शामिल किए जाने के लिए वेतन की अधिकतम सीमा को समय–समय बढ़ाकर 2,500 रूपये, 3500 रूपये फिर 5000 रूपये (1994) तथा जून 2001 में बढाकर 6,500 रूपये प्रतिमाह कर दिया गया। अधिनियम के अंतर्गत वर्तमान समय में चलाई जानेवाली योजनाओं में मुख्य है – (1) कर्मचारी भविष्य निधि योजना, 1952 (2) कर्मचारी निक्षेप सहबद्ध बीमा योजना, 1976 और कर्मचारी पेंशन योजना, 1995।

1. **कर्मचारी भविष्य निधि योजना, 1952** – के अधीन कर्मचारियों के लिए अंशदान प्रारंभ में उनकी मजदूरी का 6 प्रतिशत की दर से था, जिसे बढ़ाकर 8.33 प्रतिशत और 1997 में 10 प्रतिशत कर दिया गया। केन्द्रीय सरकार का यह शक्ति प्रदान की गई है कि उचित समझने पर किसी उद्योग या प्रतिष्ठान के वर्ग के लिए अंशदान की दर को बढ़ाकर 12 प्रतिशत तक कर दे। अब तक केन्द्रीय सरकार ने उद्योगों या प्रतिष्ठानों की लगभग 180 श्रेणियों के लिए अंशदान की दर 12 प्रतिशत कर दी है। निधि में कर्मचारी के अंशदान की दर से नियोजन को भी अंशदान देना पड़ता है। कर्मचारियों और नियोजकों द्वारा दिए गए अंशदानों को कर्मचारी – भविष्य निधियों में जमा कर दिया जाता है।

योजना के अंतर्गत कर्मचारी की मृत्यु, स्थायी अशक्तता, कुछ तरह की बीमारियों, कार्य करने में शारीरिक या मानसिक अशक्तता, सेवा–निवृत्ति, छँटनी, विदेशों में प्रवास तथा 15 वर्ष की सेवा की समाप्ति के बाद कर्मचारी के खाते में जमा कर्मचारी और नियोजक के अंशदानों और सूद की पूरी राशि लौटाने की व्यवस्था है। भविष्य निधि से कई प्रयोजनों क लिए नावापसी ऋण भी लिए जा सकते है;

जैसे – जीवन–बीमा पालिसी के प्रीमियम, आवास के निर्माण या क्रय, चिकित्सा, विवाह आदि के लिए।

2. **कर्मचारी निक्षेप सहबद्ध बीमा योजना, 1976** – इस योजना के सदस्य वे सभी कर्मचारी है, जो भविष्य निधि के सदस्य है। इस योजना के अधीन सदस्यों को बीमा निधि के लिए अंशदान देना अपेक्षित नहीं है, लेकिन नियोजकों को कर्मचरियों के वेतन का 0.5 प्रतिशत की दर से बीमा हेतु अंशदान का भुगतान करना अपेक्षित है। पहले सरकार भी बीमा निधि में कर्मचारियों की मजदूरी के 0.25 प्रतिशत की दर से अंशदान देती थी, लेकिन 1995 से इसे बंद कर दिया गया। योजना के अधीन किसी कर्मचारी की सेवा में रहते हुए मृत्यु हो जाने पर, भविष्य निधि राशियों को प्राप्त करने के लिए पात्र व्यक्तियों को मृतक व्यक्ति के भविष्य निधि खाते में जमा राशि के बराबर एक अतिरिक्त राशि दी जाती है, जो अधिकतम 60 हजार रूपये है।

3. **परिवार पेंशन योजना 1971 तथा कर्मचारी पेंशन योजना 1995** – कर्मचारी परिवार पेंशन योजना, 1971 कर्मचारी पेंशन योजना, 1995 के लागू होने से समाप्त कर दी गई है। परिवार पेंशन योजना, 1971 उन सभी कर्मचारियों के लिए अनिवार्य रूप से लागू रही है, जो 1971 या उसके बाद भविष्य निधि के अंशदाता बने हो। इस योजना के लिए वित्तीय व्यवस्था कर्मचारियों के वेतन के 1 प्रतिशत और इस राशि के बराबर नियोजकों के अंशदानों को परिवार पेंशन निधि में जमा की जाती रही है। इस निधि में सरकार भी कर्मचारियों के वेतन का 1 1/6 प्रतिशत की दर से अंशदान देती रही है। योजना के अधीन कर्मचारी की मृत्यु की स्थिति में परिवार के अलग–अलग सदस्यों के लिए पेंशन की राशि निर्धारित की जाती रही है।

14.6 स्वास्थ्य सम्बन्धी अधिनियम

1. **मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम (1987)** – यह अधिनियम मानसिक रोग तथा मानसिक अनियमितताओं से ग्रसित व्यक्तियों को लक्ष्य करके बनाया गया है। मानसिक रोगियों की देखरेख व उन्हें सुरक्षा प्रदान करना इस अधिनियम का उद्देश्य है। ऐसे सभी व्यक्ति जो मानसिक असन्तुलन से ग्रसित है उन्हें स्वास्थ्य लाभ पाने व उचित उपचार पाने का पूर्ण अधिकार है तथा उन्हें उनके इस अधिकार से वंचित नही किया जा सकता।

2. **खाद्य पदार्थ मिलावट रोक अधिनियम (1954)** – इस अधिनियम का उद्देश्य जन स्वास्थ्य को हर हाल में सुरक्षित करना है। इस अधिनियम के अनुसार खाद्य पदार्थो में स्वास्थ्य के लिये किसी प्रकार के हानिकारक तत्व का मिश्रण करना

गैरकानूनी है तथा ऐसा करता हुआ यदि कोई पाया जाता है या मिश्रण का अपराध किसी के ऊपर सिद्ध होता है तो उसे दण्डित किये जाने का प्रावधान है। जन स्वास्थ्य के लिये हानिकारक तत्वों के मिश्रण युक्त खाद्य पदार्थ खरीदना, बेचना तथा उसे प्रोत्साहित करना सभी अपराध की संज्ञा में आते है।

3. **जन्म, मृत्यु एवं विवाह पंजीकरण अधिनियम (1886)** – किसी भी नवजात शिशु के जन्म के समय उसका पंजीकरण आवश्यक है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति की मृत्यु तथा विवाह का भी पंजीकरण आवश्यक है। प्रत्येक नागरिक को इस आशय का पंजीकरण कराना चाहिये तथा ऐसी संस्थायें जो जन्म, मृत्यु तथा विवाह का पंजीकरण करती है, को सहयोग प्रदान करना चाहिये। भारतीय परिवेश में यह अधिनियम शुरूआत में तो प्रभावी नहीं रहा परन्तु अब धीरे–धीरें यह प्रभावी रूप से स्वीकार किया जाने लगा है क्योंकि पंजीकरण प्रमाण पत्र के अभाव में कई आवश्यक सेवायें अब रोकी जाने लगी है।

4. **मानव अंगों का प्रतिरोपण (रोक) अधिनियम (1994)** – किसी भी व्यक्ति के अंगों का दूसरे व्यक्ति के अंगों से स्थानान्तरण तथा प्रतिरोपण इस अधिनियम के अनुसार अवैध है। सम्बन्धित व्यक्ति जिसका अंग प्रतिरोपित किया जा रहा है, उसकी व उसके परिवार की इच्छा के विरूद्ध ऐसा करना दण्डनीय अपराध है परन्तु यदि व्यक्ति की मृत्यु से पहले उसने स्वेच्छा से लिखित रूप से अपने अंगों या किसी एक अंग को दान कर दिया है तो उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके अंगों को प्रतिरोपित किया जा सकता है।

5. **भारतीय जन स्वास्थ्य अधिनियम (1954)** – भारतीय परिवेश में जन स्वास्थ्य की उचित देखरेख व उसे सुरक्षित रखकर सबके लिए उत्तम स्वास्थ्य की उपलब्धता को सुनिश्चित कराना इस अधिनियम का उद्देश्य है।

6. **गर्भावस्था का डाक्टरी समापन (रोक) अधिनियम (1975)** – गर्भ का चिकित्सकीय समापन कानूनी अपराध है तथा यह अधिनियम गर्भ समापन को निषिद्ध करता है। गर्भ में शिशु के लिंग की जॉच भी इस अधिनियम के अनुसार गैर कानूनी है तथा ऐसे सभी संस्था व व्यक्ति जो ऐसा करते है अथवा सहयोगी है, दण्ड के भागी है।

7. **जन्म पूर्व निदान तकनीक प्रयोग एवं दुरूपयोग रोक अधिनियम (1994)** – जन्म के पूर्ण शिशु की हत्या करने के उद्देश्य से की जाने वाली सारी चिकित्सकीय प्रक्रियायें इस अधिनियम के अनुसार निषिद्व है। जॉच प्रक्रियाओं का उपयोग गर्भाधान या भ्रूण–हत्या के उद्देश्य से प्रयोग में लाना अवैध है तथा ऐसा करने वाली या सहयोगी संस्था/व्यक्ति दण्ड के भागी होगे।

8. महामारी रोग अधिनियम (1897) – किसी भी महामारी को रोकना व उसे समाप्त करना सरकारों की जिम्मेदारी है। महामारी के प्रसार के पीछे निहित व्यक्ति/संस्था इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार दण्ड के भागी होगे।

9. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम (1986) – इस अधिनियम का उद्देश्य रोगियों के हितों की सुरक्षा करना है। किसी चिकित्सा संस्था द्वारा रोगियों का किसी भी प्रकार का शोषण न हो पाये, इस हेतु रोगी को उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम कई सहूलियतें प्रदान करता है जिससे रोगी को सस्ती व अच्छी चिकित्सा उपलब्ध हो सके।

10. सूचना का अधिकार अधिनियम (2005) – सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत रोगी व उसके परिजनों को चिकित्सा व उपचार से सम्बन्धित सभी सूचनायें प्राप्त करने का कानूनी हक है। किसी भी चिकित्सक अथवा चिकित्सा संस्था द्वारा रोगी व उसके परिजनों को बिना बताये इलाज नहीं किया जा सकता अर्थात रोगी को बिमारी का रूप, विस्तार, चिकित्सा प्रकार आदि सभी बातें रोगी व उसके सहयोगियों को बताना आवश्यक है।

11. भारतीय चिकित्सा परिषद अधिनियम (1956) – किसी भी चिकित्सा संस्था के लिये आवश्यक है कि वह भारतीय चिकित्सा परिषद के अधीन पंजीकृत हो तथा उसके द्वारा लागू किये गये मानकों को चिकित्सा प्रदान करने से पहले पूर्ण करता हो।

12. चिकित्सा विद्यालय स्थापना एवं उच्च पाठ्यक्रम नियमन अधिनियम (1993) – किसी चिकित्सा विद्यालय को इस अधिनियम के अन्तर्गत सभी प्रावधनों का पूर्ण पालन करना अनिवार्य है। साथ ही समय–समय पर चिकित्सा पाठ्यक्रम में परिस्थिति एवं आवश्यकताओं पर आधारित बदलाव हेतु यह अधिनियम निर्देशित करता है।

13. भारतीय केन्द्रीय दवा परिषद अधिनियम (1970) – दवा उपलब्ध कराने वाली संस्था को इस अधिनियम के अनुसार व्यवहारिक होना आवश्यक है।

14. केन्द्रीय आयुर्वेद परिषद् अधिनियम (1973) – आयुर्वेद आधारित उपचार पद्वति को लक्ष्य करके यह अधिनियम 1973 में बना तथा बाद में आवश्यकता आधारित सुधार इसमें कई बार किये गये है।

15. औषधालय अधिनियम (1948) – सभी औषधालय इस अधिनिमय के अधीन आते है। इस अधिनियम के अनुसार किसी भी औषधालय में कालातीत अवधि की दवा नहीं होनी चाहिये तथा न ही उसकों किसी रोगी को दी जानी चाहिये। ऐसा पाया जाने पर औषधालय का प्रमुख व जिम्मेदार व्यक्ति दण्डित किया जायेगा।

16. भारतीय उपचार परिषद अधिनियम (1947) – सभी उपचार उपलब्ध कराने वाली संस्थायें इस अधिनियम के अन्तर्गत आती है। यह अधिनियम सभी उपचार संस्थाओं के लिये कुछ नियम निर्देशित करता है जिनका पूर्ण रूप से पालन करना सभी उपचार संस्थाओं के लिये आवश्यक है। इस अधिनियम का उद्देश्य रोगी को अच्छी उपचार सुविधा की उपलब्धता को सुनिश्चित करना है जिससे रोगी को समय पर अच्छी उपचार प्राप्त हो सके तथा अकारण व अनिच्छित हानि को रोका जा सके।

17. भारतीय रेड–कास समिति अधिनियम (1920)

18. आखिल भारतीय चिकित्सा विज्ञान संस्थान अधिनियम (1956)

19. परास्नातक चिकित्सा शिक्षा एवं शोध संस्थान अधिनियम (1966)

20. भारतीय मानक ब्यूरों अधिनियम (1986)

21. भारतीय औषधि शिक्षा एवं शोध अधिनियम (1998)

22. उपचार घर पंजीकरण अधिनियम (14949)

15.7 सार संक्षेप

इस प्रकार उपरोक्त बातों से सामाजिक सुरक्षा, सामाजिक रक्षा, सामाजिक सहायता, विकलांगो तथा स्वास्थ्य से सम्बन्धित भारतीय परिवेश में बनाये व लागू किये गये सभी कानून स्पष्ट होते है। इन सभी क्षेत्रों में किस प्रकार समाज के सभी वंचितों को सुरक्षा व देखभाल प्रदान करने हेतु सरकारों ने विधान के माध्यम से कानूनी सहायता उपलब्ध कराकर व वंचितों का शोषण करने वालों को दण्डित करने का जो प्रावधान बनाया है, विस्तृत हुआ है। इन विधानों के अध्ययन से जहॉ हमे विभिन्न वांछित क्षेत्रों में किये जा रहे सरकारी प्रयास स्पष्ट हुये है वहीं आज के वर्तमान परिवेश में और कौन से परिवर्तन करके इन विधानों को और अधिक प्रभावकारी व इनका क्षेत्र विस्तृत किया जा सकता है ? इस ओर भी ध्यान आकृष्ट हुआ है।

14.8 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक रक्षा हेतु कानून के अन्तर्गत क्या सुविधाये भारतीय नागरिको को प्रदत्त हैं?
2. सामाजिक सुरक्षा हेतु कानून ने क्या उपाय प्रदान किये हैं?
3. सामाजिक सहायता उपलब्ध कराने हेतु कौन से कानून उत्तरदीय है? स्पष्ट करें।

4. विकलांग लोगों की सुरक्षा प्रदान करने हेतु कानून में कौन सी विधायें उपलब्ध है? उल्लिखित करें।
5. स्वास्थ्य सम्बन्धी कानून कौन से है? विस्तृत करें।

14.9 पारिभाषिक शब्दावलीः

Labour Welfare	श्रम कल्याण	Funds	निधियां
Legal	विधिक	Failure	असफलता
Component	तत्व, अंग	Agencies	संस्था
Labour Welfare Officer		श्रम कल्याण अधिकारी	
Need	टावश्यकता	Management	प्रबन्ध
Recruitment	भर्ती	Organization	संगठन
Recreational	मनोरंजनात्मक	Qualification	योग्यता
Responsibility	उत्तरदायित्व	Assistant	सहायक
Social Attributes	सामाजिक गुण	Provision	उपबन्ध
Work Efficiency	कार्य क्षमता	Supervision	पर्यवेक्षण
Mines	खान	Policies	नीतियां
Coal	कोयला	Amelioration	सुधार
Plantation	बगान	Poverty	गरीबी
Safety	सुरक्षा	Eradication	उन्मूलन
Social Defence	सामाजिक रक्षा	Social Security	सामाजिक सुरक्षा
Social Assistance	सामाजिक सहायता	Disability	विकलांग/अक्षम
Health	स्वास्थ्य	Legislation	विधान

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- सिद्धान्तालंकर एस0, समाज शास्त्र के मूल तत्व, देहरादून (1954)।
- सचदेवा डी0आर0 एवं विद्या भूषण, एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशियोलॉजी, किताब महल, संस्करण 42 (2008)।
- इण्डियन लेवर ईयर बुक, श्रम मंत्रालय, भारत सरकार (2004)।
- सिंह सुरेन्द्र एवं कृपाल सूदन, होरिज्वाएन्स ऑफ सोशल वर्क, ज्योत्सना पब्लिकेशन लखनऊ (1986)।
- शास्त्री वी0वी0, सोशल लेजिस्लेशन्स इन इण्डिया (1952)।